हिन्दुओं
के
व्रत
और
त्योहार
सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन

कृपया यह ग्रन्थ नीचे निर्देशित तिथि के पूर्व अथवा उक्त तिथि तक वापस कर दें। विलम्ब से लौटाने पर प्रतिदिन दस पैसे विलम्ब शुल्क देना होगा।

हिन्दुओं के व्रत और त्योहार

त्योहारों की उत्पत्ति, मनाने
की विधि, महत्व तथा संवद्ध
कथाओं पर प्रकाश

कुंवर कन्हैयाजू

१९७९

सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन

प्रकाशक
यशपाल जैन
मंत्री, सस्ता साहित्य मण्डल
नई दिल्ली

•

नवीं बार : १९७१
मूल्य : रु० ५.००

•

मुद्रक
अंकित प्रिंटिंग प्रेस,
रोहतास नगर, शाहदरा,
दिल्ली-३२

२९३

प्रकाशकीय

हमारे सामाजिक तथा राष्ट्रीय जीवन में त्योहारों और पर्वों का विशेष महत्व रहा है। आज भी है। सभी धर्मों और जातियों में विभिन्न उत्सवों और त्योहारों को बड़ी उमंग से मनाया जाता है और व्रतों को गहरी भावना के साथ रक्खा जाता है।

इस पुस्तक में उन व्रतों, त्योहारों तथा पर्वों का परिचय दिया गया है, जिनका समय-समय पर आयोजन किया जाता है और जो प्राचीन-काल से भारतीय समाज में प्रचलित और मान्य रहे हैं। प्रत्येक त्योहार की उत्पत्ति, उसके मनाने की विधि, उसका महत्व और उससे संबद्ध कथा पर धार्मिक तथा राष्ट्रीय दृष्टि से विचार किया गया है।

पुस्तक की भाषा बड़ी ही सरल और सुबोध है। सामान्य पढ़े-लिखे व्यक्ति भी इसे आसानी से समझ सकते हैं।

हमें पूर्ण विश्वास है कि भारतीय समाज में इस पुस्तक को यथेष्ट आदर मिलेगा और प्रत्येक परिवार के सदस्य इसे पढ़कर लाभान्वित होंगे।

—मंत्री

अनुक्रम

□□

हिन्दुओं के व्रत और त्योहार

१/मकर-संक्रान्ति

भारतीय ज्योतिष में बारह राशियाँ मानी गई हैं। उनमें से एक का नाम मकर राशि है। मकर राशि में सूर्य के प्रवेश करने को 'मकर-संक्रांति' कहते हैं। यों तो यह संक्रान्ति प्रत्येक मास में होती रहती है, पर मकर और कर्क राशियों का संक्रमण विशेष महत्व का होता है। ये दोनों संक्रमण छः-छः मास के अंतर से होते हैं। मकर-संक्रान्ति सूर्य के उत्तरायण होने और कर्क-संक्रान्ति सूर्य के दक्षिणायन होने को कहते हैं। उत्तरायण-काल में सूर्य उत्तर की ओर और दक्षिणायन-काल में सूर्य दक्षिण की ओर झुकता हुआ दीख पड़ता है। उत्तरायण की दशा में दिन बड़ा और रात छोटी होती है। इसके विपरीत दक्षिणायन की अवस्था में रात बड़ी और दिन छोटा होता है।

मकर-संक्रान्ति हिन्दुओं का बड़ा दिन है। कहते हैं, यशोदाजी ने इस दिन कृष्ण के जन्म के लिए व्रत किया था। मकर-संक्रान्ति-व्रत का विधान अत्यंत सरल है। पौराणिक ग्रंथों में लिखा है कि मकर-संक्रान्ति के पहले दिन एक समय भोजन करना चाहिए तथा मकर-संक्रान्ति के दिन प्रातःकाल तिलों से तैलाभ्यङ्ग स्नान करना चाहिए। इस दिन तिल का विशेष महत्व है। तिल के तेल से स्नान करना, तिल का उबटन लगाना, तिल से हवन करना, तिल का जल पीना, तिल का भोजन करना और तिल का दान देना—ये छः कर्म तिल से ही होने का विधान है। इसके अतिरिक्त चन्दन से अष्टदल का कमल बनाकर उसमें सूर्य

भगवान का आवाहन करना चाहिए और उसका यथाविधि पूजन करके सब सामान ब्राह्मण को देना चाहिए। इस मास में घी और कम्बल देने का विशेष माहात्म्य है।

मकर-संक्रान्ति को उत्तर प्रदेश के पूर्वी जिलों में 'खिचड़ी' कहते हैं। इस दिन लोग खिचड़ी ही खाते हैं और खिचड़ी तथा तिलवा का दान करते हैं। महाराष्ट्र में विवाहित लड़कियां पहले संक्रान्ति को तेल, कपास, नमक आदि सौभाग्यवती स्त्रियों को देती हैं। सौभाग्यवती स्त्रियां अपनी सहेलियों को हलदी, रोरी, तिल और गुड़ देती हैं। बंगाल में भी स्नान और तिल-दान की प्रथा है। पंजाब में यह त्योहार 'लोहड़ी' के रूप में मनाया जाता है। इस अवसर पर होली भी जलाई जाती है। गंगा-सागर में इस तिथि पर बड़ा भारी मेला लगता है।

२/मौनी अमावस्या

माघ मास की अमावस्या को मौनी अमावस्या कहते हैं। इस दिन मौन रहकर ही गंगा-स्नान का विधान है। यदि मौनी अमावस्या के दिन सोमवार हो तो उसका पुण्य और भी अधिक होता है। माघ मास त्रिवेणी-स्नान का बहुत ही बड़ा माहात्म्य है। बहुत से भक्त नर-नारी माघ के पूरे महीने तक प्रयाग में संगम के किनारे कुटिया बनाकर रहते हैं और 'कल्पवास' करते हैं। इस महीने में तीसों दिन व्रत रखने का भी विधान है। कुछ लोग एक ही समय फल अथवा अन्न खाकर रहते हैं। चटाई पर सोना, तेल न लगाना, किसी प्रकार का शृंङ्गार न करना तथा संयमपूर्वक रहना परम आवश्यक है। माघ मास के स्नान का सबसे अधिक महत्वपूर्ण पर्व मौनी अमावस्या ही है। इस पर्व पर संगम में नहाना विशेष फलदायक है। माघी पूर्णिमा के दिन स्नान करने का यही महत्व है।

३/वसन्त-पंचमी

माघ मास की शुक्ल पक्ष की पंचमी को वसन्त ऋतु के आगमन का सूचक माना जाता है। हमारे धार्मिक ग्रंथों में वसन्त को ऋतुराज अर्थात् सब ऋतुओं का राजा माना गया है। इस ऋतु में वन-वाटिकाओं में एक अपूर्व लावण्य तथा पक्षियों के कलरव और भौरों की गुंजार में एक मनोमुग्धकारी स्वर ध्वनित होने लगता है। खेतों में सरसों के फूलों की पीतिमा और अन्य शस्यों की हरियाली मन को अपनी ओर खींच लेती है।

वसन्त-पंचमी को विष्णु-पूजन का विधान है। इस दिन पूर्व विद्धा तिथि लेनी चाहिए और शरीर में उबटन-तेल आदि लगाकर स्नान करना चाहिए। तदनन्तर उत्तम वस्त्राभूषण धारण कर भगवान् विष्णु की पूजा विधिवत करनी चाहिए। इस दिन पितृ-तर्पण और ब्राह्मण-भोजन का भी विधान है।

वसन्त ही के दिन पहले-पहल गुलाल उड़ाई जाती है। लोग वसन्ती वस्त्र धारण कर गायन, वादन और वन-विहार आदि करते हैं। इसी दिन वसन्त के सहचर कामदेव तथा पतिव्रता-रत्न रति की भी पूजा का विधान है। इसी दिन वाणी की अधिष्ठात्री देवी, सरस्वती की भी पूजा होती है। ब्रह्मवैवर्त पुराण में लिखा है कि श्रीकृष्ण ने सरस्वती पर प्रसन्न होकर उन्हें यह वरदान दिया था। उसमें सरस्वती के पूजन का भी विधान है। सरस्वती के पूजन के लिए एक दिन पूर्व नियमपूर्वक रहे, फिर दूसरे दिन नित्य-कर्मों से निवृत्त होकर भक्तिपूर्वक कलश-स्थापन करे। पहले गणेश, सूर्य, विष्णु, शंकर आदि की पूजा करके 'सरस्वती' का पूजन करे। 'सरस्वती' के पूजन के पश्चात् ही गुलाल उड़ाने की प्रथा है। उत्तर प्रदेश के पूर्वी जिलों में इसी दिन से लोग फाग या होली गाते हैं। इस दिन से फागुन की पूर्णिमा तक होली खूब गाई जाती है।

वसन्त धनिकों का त्योहार है, पर किसान भी इसको कम महत्व

नहीं देते। इसी दिन वे नये अन्न में घी और गुड़ मिलाकर अग्नि तथा देव-पितरों को अर्पण करने के बाद स्वयं ग्रहण करते हैं। इस प्रकार यह हमारा सामाजिक त्योहार है। यह हमारे आनन्दातिरेक का प्रतीक है। इस समय मानव-हृदय में उल्लास और उछाह भरा रहता है। इसलिए इस उत्सव का मनाना हमारे लिए स्वाभाविक है।

४/शीतला-षष्ठी

माघ-शुक्ल षष्ठी को शीतला षष्ठी का व्रत होता है। पूर्वी जिलों में इसे 'बसियौरा' कहते हैं। इसका उद्देश्य सन्तान की कामना है। इस व्रत को करने के पूर्व स्नानादि से निवृत्त होकर शीतला देवी का पूजन षोडशोपचार द्रव्य से करना चाहिए और ठंडी वस्तुओं का भोग लगाकर बासी प्रसाद ही खाना चाहिए। भोजन करने के पश्चात् मंत्रों से भगवती शीतला का उद्यापन करना चाहिए। इसकी कथा इस प्रकार है—

कथा—एक ब्राह्मण-ब्राह्मणी के सात पुत्र थे। उनका विवाह हो चुका था, परन्तु किसी को भी सन्तान नहीं थी। एक दिन एक वृद्धा ने ब्राह्मणी को बहुओं से शीतला षष्ठी का व्रत कराने का उपदेश दिया। ब्राह्मणी ने श्रद्धापूर्वक सब बहुओं से यह व्रत कराया। इससे वर्ष भर के भीतर ही सब बहुओं ने पुत्र-प्रसव किया। एक बार उसने व्रत-विधान की उपेक्षा करके स्वयं गरम जल से स्नान किया और ताजा भोजन किया तथा अपनी बहुओं को भी ऐसा करने का आदेश दिया। उस दिन रात को ब्राह्मणी ने भयंकर स्वप्न देखा। वह चौंक पड़ी। उसने उठकर अपने पति को जगाया, पर वह मर चुके थे। इससे वह चिल्लाने लगी। उठकर जो पुत्रों और बहुओं को देखा तो उन्हें भी मरा पाया। अब तो वह

धाड़ मारकर रोने लगी। उसका रोना सुन सब पड़ोसी जाग उठे और उसके पास आये। उन लोगों ने कहा कि भगवती के कोप से ही यह अनिष्ट हुआ है। इतना सुनते ही वह पागल हो गई और वन की ओर चली गई। मार्ग में उसे एक वृद्धा मिली। वह अग्नि की ज्वाला से तड़प रही थी। पूछने पर ज्ञात हुआ कि उसके कारण ही वह दुःखी है। वह वृद्धा स्वयं शीतला देवी थीं। ज्वाला से पीड़ित भगवती शीतला देवी ने ब्राह्मणी से एक मिट्टी के पात्र में दही लाने के लिए कहा। ब्राह्मणी झटपट दही लाई। उसने भगवती के शरीर पर उसका लेप किया जिससे उनका शरीर शीतल हो गया। इसके पश्चात् उन्होंने ब्राह्मणी से मृतकों के माथे पर दही लगाने के लिए कहा। ब्राह्मणी ने घर जाकर तुरन्त सब मृतकों के माथे पर दही लगाया जिससे सब अंगड़ाई लेकर उठ खड़े हुए।

५/अचला सप्तमी

माघ शुक्ल सप्तमी को अचला सप्तमी का व्रत होता है। इसको सौर सप्तमी भी कहते हैं। वर्तमान समय में इस व्रत का विशेष महत्व नहीं है। यह स्त्रियों का व्रत है। भविष्योत्तर पुराण में इसका उल्लेख मिलता है। उसमें इसकी कथा इस प्रकार है—

कथा—एक समय महाराज युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण से पूछा—"भगवन ! कलियुग में स्त्री किस व्रत के प्रभाव से अच्छे पुत्रवाली हो सकती है ?" इसके उत्तर में श्रीकृष्ण ने कहा—"प्राचीन काल में इन्दुमती नाम की एक वेश्या महाराजा समर के पास रहती थी। उसने किसी समय वशिष्ठजी के पास जाकर कहा—भगवन् ! मुझसे आज तक कोई धार्मिक काम नहीं हुआ। इससे मुझे सदैव इस बात की चिन्ता रहती है कि मुझको निर्वाण की प्राप्ति किस प्रकार होगी ? वेश्या

के ऐसे विनीत वचन सुनकर वशिष्ठजी ने कहा कि स्त्रियों को मुक्ति, सौभाग्य और सौन्दर्य देनेवाला अचला सप्तमी से बढ़कर अन्य कोई व्रत नहीं है, अतः तुम माघ-शुक्ल सप्तमी के दिन अचला सप्तमी का व्रत करो। इससे तुम्हारा अवश्य ही कल्याण होगा। स्त्रियों के लिए अचला सप्तमी का व्रत अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

इन्दुमती ने जब विधिपूर्वक इस व्रत को किया तब व्रतके प्रभाव से वह अपने शरीर को छोड़कर स्वर्गलोक में गई और वहाँ संपूर्ण अप्सराओं की नायिका हुई।

वशिष्ठजी ने इन्दुमती को जो विधि बताई थी, वह इस प्रकार है—व्रत रखने वाली स्त्री छठ के दिन केवल एक बार भोजन करे और उसी दिन विधिवत् सूर्य भगवान का पूजन भी करे। सप्तमी के दिन प्रातःकाल किसी गहरे जलाशय पर जाकर मस्तक पर दीप धारण करे और सूर्य की स्तुति करे। स्नान करने के बाद सूर्य भगवान की अष्टदली प्रतिमा बनाकर बीच में शिव और पार्वती को स्थापित करे और फिर यथाविधि उनका पूजन करने के बाद तांबे के पात्र में चावल भरकर ब्राह्मण को दान करे। सूर्य का विसर्जन करके घर आये और ब्राह्मण-भोजन कराकर आप भी भोजन करे।

६/भीष्माष्टमी

माघ-शुक्ल अष्टमी को भीष्माष्टमी कहते हैं। इसी दिन बाल-ब्रह्मचारी भीष्म पितामह की मृत्यु हुई थी। इसलिए उनकी स्मृति में यह त्योहार मनाया जाता है। कहते हैं कि जो मनुष्य इस दिन भीष्म पितामह के निमित्त तिलों-सहित तर्पण और श्राद्ध करता है, वह शुभ संतान प्राप्त करता है। पद्मपुराण में तो यहाँ तक उल्लेख है कि जीवित पिता वाले पुत्र को भी इस तिथि पर भीष्म के लिए तर्पण करना चाहिए।

इसकी कथा इस प्रकार है—

कथा—कौरव और पाण्डव-वंश के मूल-पुरुष चंद्रवंशी राजा शांतनु की पटरानी का नाम गंगा था। गंगा के पुत्र का नाम भीष्म था। एक दिन राजा शांतनु शिकार खेलने के लिए गंगा नदी के उस पार बड़ी दूर तक चले गये। जब वह आखेट से लौटकर गंगा के किनारे आये तब हरिदास केवट की कन्या मत्स्यगंधा ने राजा को नाव में बिठाकर गंगा पार कराई। मत्स्यगंधा केवट की कन्या नहीं थी। वह किसी क्षत्रिय की कन्या थी और केवट के घर लालित-पालित हुई थी। राजा उसे देखते ही उस पर मोहित हो गया और केवट से उसका अपने साथ विवाह करने का प्रस्ताव किया। राजा के प्रस्ताव को अस्वीकार करते हुए केवट ने उत्तर दिया—"राजन् ! आपका ज्येष्ठ पुत्र भीष्म विद्यमान है। ऐसी दशा में मेरी कन्या का पुत्र राज्य का अधिकारी नहीं हो सकता। अतः मैं आपको कन्या-दान करना उचित नहीं समझता।" केवट की बात सुनकर राजा शांतनु घर आये और उदास रहने लगे। राजा को खिन्न देखकर एक दिन राजकुमार भीष्म ने पिता से खिन्नता का कारण पूछा। तब राजा ने समस्त वृत्तान्त भीष्म को सुना दिया। कुमार भीष्म अपने पिता की चिन्ता की निवृत्ति के लिए स्वयं हरिदास केवट के घर गये और गंगाजी में उतर कर आजीवन अविवाहित रहने की प्रतिज्ञा की। इस घटना के पूर्व उनका नाम गांगेय था, परन्तु भीष्म-प्रतिज्ञा करने के कारण उसी दिन से वह भीष्म के नाम से प्रसिद्ध हुए। भीष्म-प्रतिज्ञा का परिणाम यह हुआ कि हरिदास केवट ने अपनी कन्या मत्स्यगंधा का विवाह राजा शांतनु के साथ कर दिया। राजा अपने पुत्र की पितृ-भक्ति से परम संतुष्ट हुए और वरदान दिया कि तुम्हारी इच्छा के बिना तुम्हारी मृत्यु न होगी। इस वरदान को पाकर भीष्म पितामह बहुत प्रसन्न हुए। उसी दिन से भीष्म ने मरण-पर्यन्त अपने प्रण को निबाहा।

भीष्म पितामह दुर्योधन के पास रहते थे। इसलिए कौरव-पाण्डव

युद्ध में उन्होंने दुर्योधन का साथ नहीं छोड़ा। जिस समय दुर्योधन की लगातार हार होने लगी, उस समय उसके दुःखोद्गारों को सुनकर एक दिन उन्होंने कृष्ण को भी हथियार उठाने के लिए विवश करने की प्रतिज्ञा की। उस दिन अत्यन्त भयंकर युद्ध हुआ, जिसे देखकर अर्जुन ने श्रीकृष्ण से स्पष्ट शब्दों में कहा कि यदि भीष्म का वेग न रोका जायगा, तो पाण्डव-कुल का सर्वनाश हुए बिना न रहेगा। यह सुनकर श्रीकृष्ण ने भी अपने मन में निश्चय कर लिया कि बाल-ब्रह्मचारी, पितृ-भक्त और अपनी इच्छा से मृत्यु को प्राप्त होने वाले भीष्म पर विजय प्राप्त करने का इसके सिवाय अन्य कोई उपाय नहीं है कि मैं स्वयं प्रतिज्ञा-भ्रष्ट होकर भीष्म का प्रण-पालन करूं। यह निश्चय करके उन्होंने तुरन्त सुदर्शन चक्र हाथ में उठा लिया।

श्रीकृष्ण भगवान् की प्रतिज्ञा भंग होते ही भीष्म ने युद्ध बन्द कर दिया और स्वयं बाणों की सेज पर लेट गये। कुछ काल में जब महाभारत का युद्ध समाप्त होने पर युधिष्ठिर राजा हो गये और सूर्य दक्षिणायन से उत्तरायण हुए, तब भीष्म ने अपनी इच्छा से शरीर त्याग किया। जिस दिन भीष्म का देहावसान हुआ, उस दिन माघ-शुक्ल अष्टमी थी और आज तक उन्हीं की स्मृति में यह व्रत और उत्सव मनाया जाता है।

७/महा शिवरात्रि

फाल्गुन-कृष्ण त्रयोदशी को शिवरात्रि का व्रत होता है। यही शिवजी का अत्यन्त महत्वपूर्ण व्रत है और इसीलिए इसे महा शिवरात्रि भी कहते हैं। संपूर्ण भारत में इसका प्रचार है। कहीं-कहीं यह फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशी को भी मनाया जाता है। इस व्रत के विधान में प्रातः-काल स्नानादि से निवृत्त होकर अनशन व्रत रखा जाता है और मिट्टी

के बर्तन में जल भरकर ऊपर से बेलपत्र, आक-धतूरे के फूल, अक्षत, आदि डालकर शिवजी को चढ़ाया जाता है। यदि आस-पास शिव-मूर्ति न हो तो शुद्ध गीली मिट्टी से ही शिवलिंग बनाकर उसे पूजने का विधान है। रात को जागरण करके शिव-पुराण का पाठ सुनना-सुनाना, प्रत्येक व्रती का धर्म माना जाता है। दूसरे दिन प्रातःकाल जौ, तिल, खीर तथा बेलपत्र का हवन करके व्रत समाप्त किया जाता है। इसकी कथा लिंग-पुराण में इस प्रकार है—

कथा—एक बार कैलास पर बैठी हुई पार्वती ने शिवजी से पूछा कि ऐसा कौन-सा व्रत है जिसके करने से मनुष्य आपके सायुज्य को प्राप्त हो जाता है? यह सुनकर महादेवजी ने कहा कि फाल्गुन-कृष्ण चतुर्दशी को व्रत रहकर प्रदोष-काल में मेरा पूजन करके रात्रि को जो मनुष्य जागरण करता है, वह अनायास ही मेरे सायुज्य को प्राप्त हो जाता है। इतना कहने के पश्चात् उन्होंने पार्वती जी को निम्न कथा सुनाई—

प्रत्यंत देश में एक बहेलिया रहता था। वह प्रति दिन जीवों को मारकर अपने कुटुम्ब का पालन किया करता था। समय पर रुपया न दे सकने के कारण एक दिन साहूकार ने उसे एक शिव-मठ में बन्द कर दिया। उस दिन फाल्गुन-कृष्ण त्रयोदशी थी, इसलिए मन्दिर में धर्म और व्रत सम्बन्धी कथा-वार्ता हो रही थी। बहेलिया ध्यान देकर कथा-वार्ता सुनता रहा। उसने चतुर्दशी के दिन होने वाले शिवरात्रि-व्रत की कथा भी सुनी। उसी दिन सायंकाल साहूकार ने उसे छोड़ दिया और अगले दिन रुपया अदा करने का उससे वचन ले लिया। चतुर्दशी को प्रात काल नियमानुसार बहेलिया अपने नगर से दक्षिण दिशा की ओर एक गहन वन में पशु मारने के लिए चला गया। परन्तु उस दिन कोई पशु उसे नहीं मिला। तब उसने दिन भर की भूख-प्यास से व्याकुल होकर एक जलाशय पर रात बिताने का निश्चय किया। एक जलाशय देखकर उसके किनारे वह अपने छिपने के लिए जगह बनाने लगा। जलाशय के

समीप ही एक बेल का पेड़ था और उसी के नीचे एक शिवलिंग स्थापित था। बहेलिया उस पेड़ पर चढ़कर बैठ गया और अपनी सुविधा-योग्य स्थान बनाने के लिए बेल के पत्ते तोड़-तोड़कर नीचे डालने लगा। नीचे गिरे हुए बिल्व-पत्रों से शिवलिंग ढंक गया। बहेलिया दिन भर भूखा रहने के कारण एक प्रकार से शिवरात्रि का व्रत कर चुका था, और शिवजी पर बेलपत्र भी चढ़ा चुका था।

बहेलिया को पेड़ पर बैठे-बैठे जब एक पहर रात बीत गई, तब एक गर्भवती हिरणी उसको सामने से आती दीख पड़ी। उसे देखते ही उसने उसे लक्ष्य करके धनुष पर बाण चढ़ाया। हिरणी भयभीत हो उठी और बोली—"मैं गर्भिणी हूं। मेरा प्रसूति-काल समीप है। यदि आप मुझे इस समय छोड़ देंगे, तो मैं अपने बालक को जन्म देकर तुरन्त यहाँ लौट आऊंगी। यदि मैं तुरन्त आपके पास न आऊं तो कृतघ्न को जो शाप लगता है वह मुझको लगे।" हिरणी का इतना कहना था कि बहेलिया ने धनुष पर से बाण उतार लिया और हिरणी को वापस आने की प्रतिज्ञा पर छोड़ दिया। उस हिरणी के चले आने पर बहेलिया शिव-शिव करता हुआ किसी अन्य जानवर के आने की प्रतीक्षा करने लगा। आधी रात हो जाने पर एक दूसरी हिरणी सामने से आती हुई उसे दिखाई दी। बहेलिया ने फिर धनुष पर बाण चढ़ाया। हिरणी निवृत्त ऋतु वाली थी। पति से उसका संयोग नहीं हुआ था। इसलिए उसने भी उससे प्रार्थना की और दूसरे दिन आने का वचन दिया। बहेलिया मान गया। हिरणी कूदती-फांदती आगे निकल गयी।

दूसरी हिरणी के चले जाने पर रात्रि के तीसरे पहर में बहेलिया ने कुछ देर और बेलपत्र तोड़कर नीचे डाले, जो शिवजी के शीश पर चढ़ गये। इसके बाद वह शिव-शिव कहता हुआ किसी अन्य जन्तु के आने की प्रतीक्षा करने लगा। तीसरा पहर व्यतीत होते-होते एक तीसरी हिरणी तीन-चार छोटे-छोटे बच्चों को लिए हुए उसी जलाशय पर आ पहुंची। बहेलिया उसे देखते ही प्रसन्न हो गया और अपने

धनुष पर बाण चढ़ाने लगा। हिरणी कांप उठी और विनीत स्वर में अनाथ बच्चों की दुहाई देने लगी। वहेलिया द्रवीभूत हो गया। उसने उससे दूसरे दिन आने का वचन लेकर उसे भी छोड़ दिया।

प्रातःकाल से कुछ ही पूर्व एक बड़ा और बलिष्ठ मृग उसी जलाशय पर आ पहुंचा। उसे देखते ही बहेलिया ने फिर धनुष पर बाण चढ़ाया। यह देखकर हिरण बड़ी सरलता से बोला, "हे व्याध! यदि मेरे प्रथम आने वाली तीनों हिरणियों को आपने मार डाला है तो कृपाकर आप मुझे भी शीघ्र ही मार डालिए, जिससे उन मृत हिरणियों का दुःख मुझको न हो।" बहेलिया ने हिरण की प्रेम एवं पांडित्यपूर्ण वाणी सुनकर रात की हिरणियों वाली सब घटना कह सुनाई, जिसे सुनकर हिरण बोला—"आप व्याध हैं, मैं हिरण हूं। अतः मेरा आपका सम्बन्ध अवश्य है, परन्तु वे तीनों हिरणियां मेरी भार्या थीं और वे मेरी ही खोज में फिर रही थीं। यदि आप मुझको मार डालेंगे, तो वे जिस उद्देश्य से आपसे प्रतिज्ञा करके गई हैं, वह सब विफल हो जायगा। अतः जिस धार्मिक भाव से आपने उनकी शपथ को सत्य मानकर उनको छोड़ दिया है, उसी भाव से थोड़ी देर के लिए मुझको भी आज्ञा दीजिए। मैं उन सबसे मिलकर और उन सबको साथ लेकर इसी स्थान पर चला आऊंगा।" शिवरात्रि-व्रत के प्रभाव से बहेलिया का हृदय विशेष कोमल और शुद्ध हो गया था, अतः उसने हिरण को भी चले जाने दिया। हिरण के चले जाने पर सवेरा होते ही वह बेल के वृक्ष से नीचे उतरा। उतरने में कुछ और भी विल्व-पत्र शिवजी पर आप ही आप चढ़ गये, जिससे प्रसन्न होकर शिवजी ने उसके हृदय को ऐसा निर्मल और पवित्र कर दिया कि वह अपने पूर्वकृत हिंसात्मक कर्मों पर पश्चात्ताप करने लगा। थोड़ी देर बाद हिरण अपनी तीनों हिरणियों के साथ वहां आ पहुंचा, परन्तु शुद्धात्मा बहेलिया ने उन्हें मारने से इन्कार कर दिया। इस प्रकार अहिंसा की चरम सीमा पर पहुंचे हुए बहेलिया को देखकर शिवजी ने एक विमान व्याध के लिए और एक हिरण-हिरणियों के

लिए भेजा और उन सबको अपने लोक में बुला लिया। यह है महाशिव-रात्रि के अनायास व्रत का प्रभाव ! जो लोग इच्छापूर्वक सायुज्यता के हेतु इस व्रत को करते हैं, वे निःसन्देह स्वर्गलोक को प्राप्त करते हैं। महा-शिव-रात्रि भगवान शंकर का परम दिन है। यह अपनी आत्मा को पवित्र करने का शुभ अवसर है।

८/होलिका-दहन

होली अथवा होलिकोत्सव हमारा सामाजिक त्योहार है। इसे स्त्री-पुरुष, बालक, वृद्ध, सब बड़े उत्साह से मनाते हैं। इसके समान आनन्द और प्रसन्नता देने वाला कोई दूसरा त्योहार नहीं है। इस त्योहार में न तो वर्ण-भेद है और न जाति-भेद। यह हमारा राष्ट्रीय त्योहार है। यह फाल्गुन मास की पूर्णिमा को मनाया जाता है। इस अवसर पर लकड़ी और घास-फूस का बड़ा भारी ढेर लगाकर वेद-मंत्रों से विस्तार के साथ होलिका-दहन किया जाता है। इसी दिन हर महीने की पूर्णिमा के हिसाब से इष्टि (छोटा-सा यज्ञ) भी होता है। इस कारण भद्रा-रहित समय में होलिका-दहन होकर इष्टि यज्ञ भी हो जाता है। पूजन के बाद होली भस्म शरीर पर लगाई जाती है।

होली के लिए प्रदोष अर्थात् सांयकाल-व्यापिनी पूर्णिमा लेनी चाहिए और उसी रात्रि में भद्रा-रहित समय में होली प्रज्वलित करनी चाहिए। भद्रा में होली को प्रज्वलित करने से राष्ट्र में विद्रोह होता है और नगर में शांति नहीं रहती। प्रतिपदा, चतुर्दशी, भद्रा और दिन में होली जलाना सवथा त्याज्य है। यदि पहले दिन प्रदोष के साथ भद्रा हो और दूसरे दिन सूर्यास्त के पहले पूर्णिमा समाप्त होती हो तो भद्रा के समाप्त होने की प्रतीक्षा करके सूर्योदय होने के पूर्व होली जला देना चाहिए। ब्रह्म-पुराण में लिखा है कि फाल्गुन की पूर्णिमा के दिन जो मनुष्य चित्त को एकाग्र

करके हिंडोले में झूमते हुए श्री गोविंद पुरुशोत्तम का दर्शन करता है, वह निश्चय ही बैकुण्ठ जाता है। यह दोलोत्सव होली होने के दूसरे दिन होता है। यदि पूर्णिमा की पिछली रात्रि में होली जलाई जाय, तो यह उत्सव प्रतिपदा को होता है और इसी दिन अबीर-गुलाल की फाग होती है। फाल्गुनी पूर्णिमा के दिन चतुर्दश मनुओं में से एक मनु का जन्म भी है। इस कारण यह मन्वादि तिथि भी है। अतः उसके उपलक्ष्य में भी उत्सव मनाया जाता है। संवत् के आरम्भ एवं वसन्तागमन के निमित्त जो यज्ञ किया जाता है, और उसके द्वारा अग्नि के अधिदेव-स्वरूप का जो पूजन होता है, वही पूजन अनेक शास्त्रकारों ने इस होलिका का माना है। इसी कारण कोई-कोई होलिका-दहन को संवत् के आरम्भ में अग्नि स्वरूप परमात्मा का पूजन मानते हैं।

होलिका-दहन का स्थान शुद्ध होना चाहिए और काष्ठ, पुआल, उपले आदि का संग्रह करके उसमें आग लगाना चाहिए। सायं-काल सब पुरवासियों के साथ उस स्थान पर जाना चाहिए और पूर्व या उत्तर की ओर मुख करके बैठना चाहिए। इसके पश्चात् होलिका पूजन का संकल्प करके पूर्णिमा तिथि के होने पर किसी वृत्तिका के घर से बालकों द्वारा आग मंगाकर होली जलानी चाहिए। इसके बाद गेहूं, चने और जौ की बाल को होली की ज्वाला में भूनना चाहिए और यज्ञ-सिद्ध नवान्न तथा होली का भस्म लेकर घर आना चाहिए। घर के आंगन में गोबर का चौका लगाकर अन्नादि का स्थापन करना चाहिए।

कथा—भविष्य पुराण में नारदजी ने राजा युधिष्ठिर से होली के सम्बन्ध में जो कथा कही है, वह इस प्रकार है—

नारदजी बोले—"हे नराधिप! फाल्गुन की पूर्णिमा को सब मनुष्यों के लिए अभय-दान देना चाहिये, जिससे समस्त प्रजा भय रहित होकर हँसे और क्रीड़ा करे। डंडे और लाठी लेकर बालक शूर-वीरों की तरह गांव के बाहर जाकर होली के लिए लकड़ी और कंडों का संचय करें। उस होलिका में विधिवत हवन किया जाय। अट्टहास, किल-किलाहट

और मन्त्रोच्चारण से पापात्मा राक्षसी नष्ट हो जाती है। इस व्रत की व्याख्या से हिरण्य-कश्यपु की भगिनी अर्थात् प्रह्लाद की बुआ, जो प्रह्लाद को अग्नि में लेकर बैठी थी, प्रति वर्ष होलिका नाम से आज तक जलाई जाती है।

हे राजन्! पुराणान्तर में ऐसी व्याख्या है कि ढुंढला नामक राक्षसी ने शिव-पार्वती का तप करके यह वरदान पाया था कि जिस किसी बालक को वह पाये, खाती जाय। परन्तु वरदान देते समय शिवजी ने यह युक्ति रख दी थी कि जो बालक वीभत्स आचरण एवं राक्षसी वृत्ति में निर्लज्जता-पूर्वक फिरते हुए पाये जायंगे, उनको वह न खा सकेगी। अतः उस राक्षसी से बचने के लिए बालक नाना प्रकार के वीभत्स और निर्लज्ज स्वांग बनाते और अंट-संट बकते हैं।

हे राजन्! इस हवन से संपूर्ण अनिष्टों का नाश होता है और यही होलिका-उत्सव है। होली की ज्वाला की तीन परिक्रमा करके फिर हास-परिहास करना चाहिए।"

६/भैया-दूज

होलिका-दहन के बाद चैत्र बदी द्वितीया और दीवाली के बाद कार्तिक बदी द्वितीया, इन दोनों तिथियों को भैया-दूज कहते हैं; क्योंकि साल में दो बार इन्हीं दोनों पर्वों पर बहिन भाइयों को आमन्त्रित करती है।

भैया-दूज के दिन मध्याह्न के पूर्व ही पूजन होता है। जो स्त्रियां बाहर नहीं निकल सकतीं, वे अपने घर के द्वार के पास भाई-भौजाई की प्रतिमा-सूचक गेरू से दो पुतलियां लिखती हैं और रोली अक्षत से उनकी पूजा करके पकवान का भोग लगाती हैं। इसके पश्चात् द्वार की पूजा होती है। मकान के प्रवेश-द्वार की देहली के नीचे बाहरी

ओर गोबर की चौकोर वेदी बनाई जाती है। गोबर की चार पुतलियां उसके चारों कोनों पर और एक पुतली बीच में रखी जाती है। गृहस्थी सम्बन्धी और बहुत-सी सामग्री जैसे चूल्हा, चक्की, हांडी इत्यादि गोबर की बनाकर उसी में इधर-उधर सजाई जाती हैं। फिर द्वार के पास भाई-भौजाई की प्रतिमाएं लिखी जाती हैं। पहले रोली, अक्षत, धूप-दीप, नैवेद्यादि से वेदी की पूजा करके, भाई-भौजाई की पूजा की जाती है और कहानी कही जाती है। कहानी पूरी होते ही स्त्रियां मूसल चला-चला कर कहती हैं—जो कोई हमारे भाई को देखकर जले-वले, उसका मुंह इस तरह मूसल से तोड़ूं-फोड़ूं।

इसके बाद जिन स्त्रियों के भाई निकट होते हैं, वे उनको भोजन कराती हैं। बहन भाई का टीका करती हैं और भाई बहन के चरण छूकर जो कुछ देना चाहता है, वह देता है। फाग की दूज को भाई का टीका गुलाल से किया जाता है और दीपावली की दूज को हल्दी का टीका किया जाता है।

कथा—सात बहनों का एक दुलारा भाई था। वह अपने मां-बाप का इकलौता बेटा और सात बहनों का छोटा भाई होने के कारण बड़े ही लाड़-प्यार से पला था। कभी किसी ने उसे भूलकर भी दुर्वचन नहीं कहा था। जब वह बड़ा हुआ, तब उसकी सगाई हो गई। लग्न का समय पास आने पर उसकी माता ने उससे अपनी बहनों को बुला लाने के लिए कहा।

उसकी बड़ी बहनें बहुत दूर-दूर थीं। वे समय पर न आ सकती थीं। सबसे छोटी बहन जो पास ही थी, उसको लाने के लिये वह उसके घर गया।

जिस दिन वह अपनी बहन के घर पहुंचा, उस दिन भाई दूज थी। बहन दरवाजे के बाहर दूज की पूजा कर रही थी। जब बहन पूजा कर चुकी, तब उसने भाई को बुलाकर उसका आदर-सत्कार किया। भाई को ठहरा कर वह पड़ोस की स्त्रियों से पूछने दौड़ी गयी कि अपने

सबसे प्यारे भाई को क्या खिलाना चाहिये । स्त्रियों ने कह दिया कि घी में चावल पकाकर खिलाना चाहिये । वह घी में चावल पकाने लगी, पर चावल पके नहीं; जल कर कोयला हो गये । तब उसने दूध में चावल पकाकर खीर बनाई, पूड़ियां बनाईं और भाई को भोजन कराया । भोजन करने के बाद भाई ने कहा—"मेरा विवाह है, इसलिए मैं तुमको विदा कराने आया हूं । तुम मेरे साथ चलो ।" इस पर बहन ने जवाब दिया—"अभी तुम आराम करो । मैं तुमको रास्ते के लिए खाना बना देती हूं । चलो, मैं पीछे चली आऊंगी ।"

बहन रात्रि को अंधेरे में आटा पीसने लगी । उसमें वह धोखे से सर्प की हड्डियों का ढांचा पीस गई । दूसरे दिन उसने उसी आटे की पूड़ियां बनाईं और जब भाई चलने लगा, तब रात की बनाई पूड़ियां उसने उसे रास्ते के लिए देकर विदा कर दिया । भाई के चले जाने पर जब उसने एक पूड़ी कुत्ते को दी तो कुत्ता उसे खाते ही मर गया । तब बहन सब काम छोड़कर भाई के पीछे-पीछे दौड़ी । कुछ दूर जाकर उसने देखा कि भाई एक वृक्ष के नीचे पड़ा सो रहा है और जो खाना उसने उसे दिया था वह वृक्ष की डाल से टंगा हुआ है । उसने तुरन्त उस भोजन को पृथ्वी में गाड़ दिया । जब भाई सोकर उठा, तब बहन ने उसे अपने पास से खाने को दिया । खाना खाकर भाई ने पानी मांगा ।

बहन अपने भाई के लिए पानी लाने चली गई । वह इधर-उधर जलाशय खोजती हुई एक बावली पर पहुंची । वहां उसने देखा कि एक बढ़ई साही के कांटे बटोर रहा है । यह देखकर उसने उस बढ़ई से उसका रहस्य पूछा । बढ़ई ने कहा कि यह सात बहनों के भाई की अलाय-बलाय है । यदि इन कांटों को ले जाकर गालियां देते हुए उन्हें उसके मुंह में दे देगा, तो वह सब बलाओं से बच जायेगा, अन्यथा उसकी अकाल मृत्यु हो जायगी । जहां वह ब्याहने जायगा, वहां का द्वार फिसलकर उस पर गिर पड़ेगा । यदि कोई बारात आने के दिन द्वार पर सोने की ध्वजा चढ़ा देगा, तो द्वार नहीं गिरेगा । दूसरी विपत्ति उसके भांवरों के समय

है। ठीक भांवरों के समय एक सिंह आयेगा और उसे उठा ले जायगा। यदि कोई हरे जौ का पूला उसके सामने डाल देगा और एक कांटा मंडप में खोंस देगा तो सिंह भाग जायेगा।

वढ़ई की बातें सुनकर बहन ने कहा कि जिसके लिए तुम यह सब कर रहे हो वह मेरा ही छोटा भाई है। यदि तुम ये कांटे मुझे दे दो, तो मैं स्वयं अपने भाई की रक्षा के लिए उपाय करूंगी। वढ़ई ने तीन कांटे उसे दे दिये। कांटे पाते ही वह गालियां देती हुई अपने भाई के पास गई और एक कांटा उसने उसके मुंह में छुआ दिया। उसकी गालियाँ सुनकर वह आश्चर्य में पड़ गया। उसने अपनी बहन से पूछा भी, परन्तु उसने किसी बात का ठीक उत्तर नहीं दिया। भाई उसे पागल समझ कर अपने घर ले गया।

जब लग्न चढ़ने का समय आया तब वह भाई को बुरी तरह कोसने और गालियां देने लगी। वह बोली—"माता का पूत मरे, भावज का पति मरे, बहन का बीरन मरे, पहले मेरे हाथ पर लग्न रखी जायगी, तब इसके हाथ में लग्न रखना।" पगली की जिद के कारण लोगों को पहले उसी के हाथ पर लग्न रखनी पड़ी। उसने हाथ पर लग्न रखकर उसमें कांटा खोंस दिया। तदनन्तर भाई के हाथों पर लग्न रखी गई। इसी तरह ब्याह के प्रत्येक नेग के समय बहन आप आगे होकर पहले अपना नेग कराती, पीछे भाई के नेग-चार होते थे।

जब बरात की तैयारी हुई, तब भी बहन सबसे आगे बरात में जाने को तैयार हो गई। भाई की ससुराल में पहुंचकर उसने तुरंत ही ससुर के द्वार पर सोने की ध्वजा चढ़वाई। जब भांवरों का समय आया, तब बहन डेरे में सो रही थी। दूल्हा मंडप में गया। वहां ज्यों ही भांवरें पड़ने लगीं, त्यों ही वह मूर्च्छित हो गया। उसे मूर्च्छित देखकर लोग उसकी बहन को बुलाने दौड़ गये। उन लोगों के साथ बहन गालियां देती हुई ब्याह के घर की ओर चली। वह मंडप में पहुंची ही थी कि उधर से एक भयानक सिंह आ पहुंचा। बहन ने उसके सामने जौ का

पूला डाल दिया और मंडप में कांटा खोंस दिया। सिंह चला गया। सकुशल भांवरें पड़ गईं। विवाह के सब नेग पूरे हो जाने पर भाई अपनी नई दुलहिन को लिवाकर घर आया।

ग्राम-देवताओं का पूजन होने के बाद जब सोनारे के नेग का समय आया, तब भी बहन मचल गई कि भाई-भौजाई के साथ मैं भी सोऊंगी। सब लोग मना करने लगे; पर वह कब किसी की सुनती थी। वह एक ओर भाई को और दूसरी ओर भौजाई को लिटाकर बीच में स्वयं लेट रही। भाई-भावज दोनों सो गये। कोठे के बाहर स्त्रियां गाने-बजाने में लगी हुई थीं। ठीक आधी रात के समय ऊपर से सर्प उतरा। बहन जागती थी। उसने सर्प को मारकर एक कपड़े के नीचे ढांक दिया और आप गाती हुई बाहर निकल आई। भाई-भावज दोनों आनन्द से रात भर सोते रहे।

बहन भी सब कामों से निश्चिन्त होकर सो गयी और दोपहर तक सोती रही। भाई के जगाने पर भी वह नहीं उठी। अंत में उसकी माता ने खीजकर उसे उसके ससुराल भेजना ही उचित समझा। भाई बाजार से बहन के लिए कपड़े आदि ले आया। उसी समय बहन जाग उठी। सबको यह देखकर आश्चर्य हुआ कि वह बिलकुल स्वस्थ थी। स्त्रियों के बार-बार पूछने पर वह उठी और जहां भाई-भावज रात में सोए थे वहां वह गयी। वहां से वह मरा हुआ सर्प उठा लाई और उसे सबको दिखाकर कहा कि भाई की रक्षा के लिए ही मैं पगली बनी थी। कुछ दिनों तक वह अपने भाई के पास रहकर अपने ससुराल चली गयी। भाई-भावज भी आनन्द से रहने लगे। दूज की पूजा तो सनातन से चली आती है, परन्तु भाई को आमंत्रित करने की परंपरा इसी समय से चली है।

१०/तिसुआ सोमवार

चैत्र मास के चारों सोमवारों को तिसुआ सोमवार कहते हैं। इन

सोमवारों में श्री जगदीश के पट और बेंतों की पूजा होती है। तिसुआ सोम .ार का व्रत और पूजन उसी के यहां होता है, जो श्री जगदीश के दर्शन कर आया हो या जिसके घर में कोई जगदीश-यात्रा कर चुका हो।

यह पूजा मध्याह्न के समय होती है। जब तक पूजा नहीं हो जाती, जगदीश का जानेवाला या घर का प्रमुख व्रत रहता है। पूजन के समय जगदीश के पट, पटा पर पधारे जाते हैं और बेंतों को धोकर उसका पानी बरतन में रख लेते हैं। उसी बरतन में बेंत खड़े करके दीवार से टिका देते हैं। चन्दन, चावल, धूप, दीप, नैवेद्यादि से विधिवत पट और बेंतों का पूजन किया जाता है। पुष्प-मालादि के साथ जौ की बाल, आम का बौर और तिसुआ (टेसू) के फूल चढ़ाना आवश्यक समझा जाता है। नैवेद्य के अनुपात में यह विशेषता है कि पहले सोमवार को गुरधानी (भुने हुए गेहूँ और गुड़) का भोग लगता है। तीसरे सोमवार को पंचमेल और चौथे सोमवार को गंज-भोग अर्थात् कच्चा-पक्का सब तरह का पकवान बनाकर भोग लगाया जाता है। भोग लगाने के बाद कथा कही जाती है। कथा हो चुकने पर बेंतों पर अक्षत छोड़ते हैं, फिर भोग बांटकर पूजन और विसर्जन होता है। पूजन करने वाले के लिए भोजन की कोई विशेष विधि नहीं है।

कथा—एक था भाट, एक थी भाटिन। भाट का नाम था कुदरती। वह बहुत गरीब था। एक दिन भाटिन ने अपनी लड़की और दामाद को खिलाने की इच्छा प्रकट की। भाट राजी हो गया। वह कई गांव से भिक्षा मांगकर लाया। खूब सामान मिला। भाटिन ने अच्छा-अच्छा भोजन बनाया। भोजन बनाकर वह हाथ-पैर धोने बाहर गई। भाट ने घर में जाकर रसोई देखी, तो वहां केवल एक बड़ी और एक छोटी, दो ही रोटियाँ थीं। भाट-भाटिन यह देखकर बहुत दुःखी हुए। उन्होंने दामाद को बड़ी रोटी परोसी और लड़की को छोटी रोटी खिलाकर दोनों को विदा किया। भाट ने उसी समय श्री जगदीश के दर्शनों के लिए यात्रा की।

भाट घर से चलकर रास्ते में जा रहा था। उसने देखा कि बहुत से

आदमी पत्ते तोड़-तोड़ कर दोने-पत्तलें बना रहे हैं। लोगों से पूछने पर उसे ज्ञात हुआ कि राजा के यहां जगदीश का भंडारा है। तब वह भी उन्हीं लोगों के साथ काम करने लगा। शाम को सब लोगों के साथ भाट भी राजा के महल में गया। पत्तल वाले पत्तलें देकर भोजन करने बैठ गये। भाट भी एक जगह बैठ गया। उसने एक पत्तल में भोजन किया और दूसरा पत्तल बांधकर एक मटकी में रख दिया। सायंकाल छाछ बेचने वाली स्त्रियां नगर से अपने गांव को जा रही थीं। उन्हीं में भाट के गांव की स्त्रियां भी थीं। उसने उनमें से एक को वह मटकी दे दी।

छाछ बेचने वाली भाट की सौगात लेकर थोड़ी ही दूर चली होगी कि उसके सिर का बोझ भारी होने लगा। उसने बोझ को सिर से उतार कर भाट की पठौनी देखने की इच्छा से मटकी मटके में जो हाथ डाला तो वह उसी में फंस गया। बहुत उपाय करने पर भी हाथ नहीं निकला। तब उन्होंने जगदीश का स्मरण करके कहा—"भाट की सौगात भाट के यहां जाय, हमारा हाथ छूट जाय।" इतना कहते ही हाथ बाहर निकल आया।

घर आकर उस स्त्री ने अपनी सास से कहा कि इस मटकी को देखना नहीं। भाटिन को बुलाकर उसे दे देना, पर सास नहीं मानी। उसने मटकी खोलकर जो देखी तो उसमें जवाहरात भरे हुए थे। उसने सोचा कि मटको भर गेहूं भाटिन को दे दूं और ये जवाहरात अपने घर में रख लूं। परन्तु जब उसने गेहूं निकालने के लिए कच्ची कोठार का छेद खोला तब उसमें से कीड़े निकलने लगे। यह देखकर सास ने कहा—"भाट की सौगात भाट के यहां जाय, हमारे गेहूं के गेहूं हो जायं।" इतना कहते ही कोठार के गेहूं ज्यों के त्यों हो गए। सास ने उस भाटिन को बुलाकर बन्द मटकी उसे दे दी। भाटिन ने मटकी को घर ले जाकर खोला। उसमें बहुमूल्य हीरे जवाहरात भरे निकले। उसमें से उसने एक अंश पुण्य कार्यों के लिए संकल्प कर दिया और शेष से वह अपने खाने-पीने का काम चलाने लगी।

भाट जगदीशजी की यात्रा करने चला गया। मार्ग में उसे एक साधु मिला। साधु ने उससे कहा कि यदि सचमुच तुझे जगदीश की छड़ी लगी है तो तू हमारी धूनी में धंस जा, शीघ्र ही जगदीशजी पहुंच जायगा। जब भाट धूनी में धंसने लगा तब साधु ने उसे मना करके एक अन्ध कूप में गिरने के लिए कहा। भाट उसमें भी कूदने को तैयार हो गया। यह देखकर साधु ने उससे भड़भूजे की भाड़ में सर देने के लिए कहा। भाट भाड़ में सर देने को भी तैयार हो गया। इस प्रकार उसे सब परीक्षाओं में उत्तीर्ण पाकर साधु संतुष्ट हो गया।

रात्रि में साधु ने उसे एक दाल, एक चावल और एक चुकटी आटा देकर भोजन पकाने के लिए कहा। एक हांड़ी में अदहन रखकर दाल-चावल के दाने उसमें डाल दिये और आटा गूंध कर ढांक दिया। आंच लगते ही खिचड़ी हांड़ी से ऊपर उबल आई। भाट ने उफान में आए हुए पानी को पी लिया और उसी से संतुष्ट हो गया। थोड़ी देर में रसोई भी तैयार हो गयी। उसने साधु से भोजन करने के लिए कहा। रसोई जूठी हो चुकी थी। इसलिए साधु ने भोजन नहीं किया। भाट ने यात्रियों को खूब भोजन कराया, फिर भी भंडार में बहुत-सा भोजन बच गया। यह देखकर उसने साधु से कहा—"बस, मैं समझ गया, तुम्हीं स्वामीजी हो, क्योंकि ऐसी सिद्धि और किसी में नहीं है। मैं आपकी परीक्षा लेने योग्य नहीं हूं। मैं तो अल्पज्ञ हूं और आप सर्वज्ञ हैं। जैसे आपने कृपा करके मार्ग में दर्शन दिये, वैसे ही दर्शन पुरी में दीजिए।" साधु ने कहा—"जहां हम हैं, वहीं पुरी है। तू इस भ्रम में न पड़। जो तेरी इच्छा हो सो कह।" वह बोला—"महाराज। मैं बहुत ही दरिद्र हूं, मुझको भर पेट खाने को नहीं मिलता। इसलिए मेरी दरिद्रता दूर कीजिए।"

साधु ने कहा कि पुरी के समीप ही बेंत की झाड़ी का वन है। तू उस झाड़ी से पांच बेंत तोड़ ला। भाट झाड़ी में जाकर ज्योंही अच्छे-अच्छे बेंत तोड़ने लगा, त्योंही उसकी मुशकें बंध गईं। यह देख कर साधु ने कहा—

"तू बड़ा लोभी है। तुझे असंतोष तो है ही, तृष्णा भी अधिक है। इसी से तेरा यह हाल हो रहा है। तू इन बातों को त्यागने का संकल्प करके सिर्फ पांच वेंत लेकर चला आ।" भाट ने वैसा ही किया। वह पांच बेंत लेकर साधु के पास आ गया। साधु ने एक पीतल की बटलोई उसे देकर कहा कि चैत्र मास से प्रति सोमवार को इन वेंतों की पूजा किया करना। चौथे सोमवार को हमारे नाम से भंडारा देना। यदि तूं ऐसा करेगा तो इस बटलोई से छप्पन प्रकार के भोजन तुझको मिला करेंगे।"

बटलोई लेकर भाट घर वापस आया। मार्ग में एक जगह जब वह पानी पीने लगा तब उसके चुल्लू में पानी के साथ टेसू का फूल आ गया। उस फूल को देखकर उसे याद आया कि आज तो चैत्र का पहला सोमवार है, साधु की पूजा करनी है, और कथा कहनी है। पास कुछ कृषक ही खेतों में लगी दांवर चला रहे थे। उसने उनसे कहा कि मेरी कथा सुन लो, तो मैं इसी जगह पूजन कर लूं, परन्तु उन्होंने उसकी बात पर ध्यान नहीं दिया। वह आगे बढ़ा। उसके जाते ही किसानों का गल्ला आप-से-आप जलने लगा। यह देखकर वह भाट को वापस बुला लाये। भाट ने वेंतों की पूजा करके साधु की कथा कही। इसके बाद वह आगे चला गया। दूसरे सोमवार को उसे भेड़ें चराते हुए एक गड़रिया मिला। उसने उससे भी कथा सुनने के लिए प्रार्थना की, पर गड़रिये ने भी उसकी बात पर ध्यान नहीं दिया। सहसा उसकी भेड़ें बिला गईं। तब उसने भाट को बुलाकर कथा सुनी, कथा पूरी होते-होते उसकी भेड़ें दुगनी-तिगुनी होकर चरती हुई दिखाई देने लगीं।

भाट के दो लड़कियां थीं। पहली लड़की किसी बड़े अमीर के घर ब्याही थी और दूसरी उसी गांव के पास एक निर्धन के यहां ब्याही थी। तीसरे सोमवार को भाट पहली लड़की के घर पहुंचा। उसने उससे कथा सुनने के लिए कहा, पर उसने उसकी बात पर ध्यान नहीं दिया। तब वह वहां से अपनी गरीब लड़की के घर गया। गरीब लड़की उससे बड़े प्रेमभाव से मिली। उसने बाप के आदेशानुसार पूजा के लिए चौका लगा

दिया। बाप पूजा करने लगा, तब तक लड़की घर में से सन की अंटी लेकर बनिये के यहां से पूजा के लिए घी-गुड़ लाई और उसी घी-गुड़ से साधु के नाम का होम करके प्रेम से कथा सुनी। इसके बाद जब उसने साधु की दी हुई बटलोई में बेंत डालकर खटखटाया तब कच्चे पक्के सब प्रकार के छप्पन व्यंजनों के ढेर लग गए। गांव के जो लोग प्रसाद लेने आये, उन्हें भाट ने खूब भोजन कराया। लड़की और दामाद ने भी खूब भोजन किया। चलते समय भाट ने अपनी लड़की को श्री स्वामीजी का स्मरण करने का आदेश दिया। लड़की भी श्री स्वामीजी का स्मरण करने लगी और उसके घर में भी धनधान्य की बढ़ती होने लगी।

अपनी छोटी लड़की के यहां से भाट अपने गांव के पास पहुंचा। वहां उसे कुछ विशेष चमत्कार दिखाई दिया। गांव के बाहर नये-नये बाग-बगीचे, मंदिर, तालाब, आदि देखकर वह दंग रह गया। यह सब उसी का था। जिस दिन वह अपने घर पहुंचा, उस दिन सोमवार था। भाट ने गांव भर को न्यौता दिया और बेंतों की पूजा करने के बाद बटलोई में बेंत खटखटाया। तुरन्त छप्पन व्यंजनों के ढेर लग गये। गांव के छोटे-बड़े सभी लोग भाट के यहां भोजन करने आये और भोजन करके चले गये। भाट ने राजा के यहां भी प्रसाद भेजा।

राजा को नाई से सब हाल पहले ही मालूम हो चुका था कि भाट की बटलोई में करामात है। राजा ने यह बात मंत्रियों से कही और यह भी कहा कि किसी युक्ति से भाट के पास से वह बटलोई ले लेनी चाहिए। इस पर मंत्रियों ने सलाह दी कि राजकुमार को भाट के घर भेजना चाहिए। वह जिद करके उससे बटलोई ले लेगा। यदि वह उनको न दे, तो फिर बल-प्रयोग करके उससे बटलोई छीन ली जायगी।

दूसरे दिन कुछ लोग राजकुमार को भाट के घर लिवा लाये। राजकुमार ने जब भाट से बटलोई मांगी, तब उसने खुशी से बटलोई राजकुमार को दे दी। बटलोई पाकर राजा ने नगर-भोज ठान दिया। परन्तु बटलोई में बेंत डालकर उसने खटखटाया तब उसमें से कुछ भी नहीं

निकला। जो लोग न्योते हुए आये थे, वे भूखे बैठे थे। कोठार में गल्ला भी नहीं था। राजा ने असंतुष्ट होकर भाट को पकड़ने के लिए सिपाही भेजे, परन्तु वह पहले ही चंपत हो गया था।

कुदरती भाट घवड़ाया हुआ श्रीस्वामीजी की ओर भागता जाता था। मार्ग में उसे कहीं दो आम के वृक्ष, कहीं दो पोखरे, कहीं कई स्त्रियां, कहीं एक सांप, कहीं एक बिना सवार का घोड़ा मिला। उसने कहा, भाई! मेरा संदेश स्वामीजी से कहना कि मैं मुद्दत से सजा-सजाया फिर रहा हूं? कोई मुझ पर सवारी नहीं करता। वह और भी आगे चला तो कहीं नदी, कहीं एक गाय और कहीं एक अधबने मकान का मालिक मिला। सब दु खी थे। भाट सबके सन्देश लेता हुआ जब जगदीशपुरी के समीप पहुंचा तब पुनः स्वामीजी ने उसे साक्षात् दर्शन दिया। स्वामीजी का दर्शन पाकर उसने बटलोई की घटना उन्हें बता दी और अपने बड़े दामाद का हाल भी सुना दिया। स्वामीजी ने कहा कि वापस जाकर राजा-रानी से अपनी बटलोई ले ले और दामाद को कथा सुना दे।

भाट स्वामीजी को दण्डवत् करके घर की ओर भागा। जितने पग वह घर की ओर उठाता था, उतना ही वह बहरा होता जाता था। अंत में घवड़ा कर वह फिर स्वामीजी की ओर चला। वहां पहुंच कर उसने सब के सन्देशे कह सुनाये। तब श्री स्वामीजी ने प्रकट होकर कहा कि वे दोनों आम के वृक्ष उस जन्म के मामा-भानजे हैं। मामा ने भानजे की धरोहर खाई थी, इस पाप से उनकी यह दशा हुई। तुम पांच-पांच आम दोनों पेड़ों में से खाना, तब सब उनके फल खाने लगेंगे। दोनों पोखरी उस जन्म की देवरानी-जेठानी हैं। हमेशा कलह करती रही हैं, कभी मिल कर नहीं रहीं। इसी कारण कोई उनका जल नहीं पीता। यदि तुम पांच-पांच चुल्लू जल दोनों पोखरियों में से पी लोगे, तो सब लोग उसका जल पीने लगेंगे। बोझ वाली स्त्री स्वार्थिन है। उसने उस जन्म में दूसरों से अपने बोझ तो उतरवाये, परन्तु उनके बोझ नहीं उतारे। इसी कारण उसको यह दण्ड मिला है। यदि तुम उसके बोझ

को छू दोगे, तो वह सिर पर से उतर जायगा। सिर पर बड़ा तवा लिये फिरने वाली ऐसी स्त्री है, जिसने सास-ननद की ओट करके चूल्हे पर तवा चढ़ाया और खाने बैठ गई। यदि तुम उसके तवे को छू दोगे, तो उसका पाप दूर हो जायगा। चूतड़ पर पीढ़ा लिये फिरने वाली अभिमानिनी स्त्री है। उसकी सास-ननद जब जमीन पर बैठती थीं तब वह पीढ़े पर बैठती थी। इसी कारण अब वह पीढ़ा उसके चिपका फिरता है। यदि तुम उसे छू दोगे तो वह गिर जायगा। आधा बांबी में आधा बाहर जो सर्प है, वह उस जन्म का प्रधान है। उसने औरों की विद्या तो ली; परन्तु अपनी विद्या किसी को नहीं दी। तुम्हारे छूने से वह भी चलने लगेगा। वह जो गाय है, उस जन्म की स्त्री है। उसने अपनी सौत और उसके पुत्र में झगड़ा लगाया था। इस कारण अब उसको मां-बेटे का वियोग हुआ है। तुम उनको इकट्ठा कर देना। वह जो घोड़ा है, वह अपने स्वामी को रण में जुझा कर भाग आया था। तुम उस पर सवार होकर पांच कदम चलना, तब सब उस पर सवारी करेंगे। महल की बाबत साहूकार से कहना कि उसके नगर में कोई कन्या क्वांरी है। उसके मां-बाप गरीब हैं। यदि उसको खोजकर साहूकार उसका ब्याह करा दे, तो उसका महल उठ जायगा और उसकी सब इच्छाएं पूरी होंगी।

सब के संदेश भुगतान करता हुआ जब भाट अपने घर पहुंचा, राजा ने बुलाकर उसका बड़ा आदर किया और उसकी बटलोई उसे लौटा दी। इसके बाद उसने फिर स्वामीजी की पूजा की और लड़की तथा दामाद को बुलाकर कथा सुनाई। इससे उनकी सम्पत्ति जैसी-की-तैसी हो गई।

कहा जाता है कि तिसुआ सोमवार की पूजा इसी कुदरती भाट की यात्रा के समय से चली है। टेसू के फूल से प्रथम पूजन भी तभी से आरम्भ हुआ है। इसी कारण यह तिसुआ सोमवार कहा जाता है।

११/अरुन्धती-व्रत

अरुन्धती महर्षि वशिष्ठ की पत्नी और प्रजापति कर्दभ ऋषि की पुत्री थीं। सप्त ऋषियों में वशिष्ठजी के साथ अरुन्धती को भी स्थान मिला है और उन्हीं के नाम पर अरुन्धती-व्रत की परंपरा चली है। यह व्रत चिर सौभाग्य के लिए किया जाता है। इससे बाल-वैधव्य दोष का परिहार होता है। यह चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से आरम्भ होकर तृतीया को समाप्त होता है। प्रतिपदा के दिन किसी नदी अथवा घर में स्नान कर इस व्रत का संकल्प किया जाता है। दूसरे दिन द्वितीया को धान पर कलश स्थापित कर उसके ऊपर अरुन्धती, वशिष्ठ और ध्रुव की तीन स्वर्ण-मूर्तियां स्थापित की जाती हैं। गणपति के पूजन के पश्चात् उनका पूजन होता है। तृतीया को शिव-पार्वती की पूजा करके इस व्रत की समाप्ति होती है। स्वर्ण-प्रतिमाएं किसी ब्राह्मण को दान कर दी जाती हैं। आजकल इस व्रत का प्रचार बहुत कम हो गया है। इसकी कथा इस प्रकार है—

कथा—प्राचीन काल में सर्व-शास्त्र-निष्णात् एक ब्राह्मण था। उसकी एक अत्यन्त सुन्दरी कन्या बाल्यावस्था ही में विधवा हो गई थी! एक दिन वह कन्या यमुना के किनारे तप कर रही थी। दैवात् वहां पार्वती-सहित महादेव आ गए। पार्वती ने उस कन्या का वृत्तांत जानकर महादेवजी से उसके बाल्य-काल ही में विधवा हो जाने का कारण पूछा। महादेवजी ने उत्तर दिया कि प्राचीन समय में यह ब्राह्मण था। उसने एक कुल-शील वाली सवर्णा और समान-वयस्का कन्या के साथ विवाह किया था। विवाह करके वह ब्राह्मण सदैव के लिए परदेश चला गया और वहां जाकर उसने पर-स्त्री के साथ प्रीति कर ली। उसी पाप के कारण उस ब्राह्मण को दूसरे जन्म में कन्या का शरीर मिला और अब उसे बाल वैधव्य का दुख भोगना पड़ रहा है। अपनी कुलीन और निर्दोष स्त्री को छोड़कर जो मनुष्य सदैव के लिए देशान्तर को चला जाता है, वह अन्धे पुरुष की भांति, महासागर में डूब जाता है। जो

पुरुष निज स्त्री को छोड़कर पर-स्त्री से प्रीति करता है अथवा पर-स्त्री को घर में डाल लेता है, वह जन्म-जन्मान्तर स्त्री होकर बाल-वैधव्य का दुःख भोगता है। जो स्त्री एकान्त में अन्य पुरुष के साथ व्यभिचार करती है, वह भी उस पाप के कारण बाल-वैधव्य का असाध्य दुःख भोगती है।

इस प्रकार का उपदेश सुनकर पार्वती ने शिवजी से पूछा कि इस वैधव्य-दुःख की निवृत्ति का क्या कोई ऐसा उपाय भी है, जिससे पुनः इस पाप के फलों को न भोगना पड़े। इसके उत्तर में महादेवजी ने अरुन्धती-व्रत का विधान बतला कर कहा कि जो स्त्री विधिपूर्वक इस व्रत को करेगी, उसको बाल-वैधव्य का असह्य दुःख न भोगना पड़ेगा।

१२/गनगौर-व्रत

गनगौर व्रत चैत्र शुक्ल तृतीया को किया जाता है। यह हिन्दू-स्त्री-मात्र का त्यौहार है। देश-भेद से पूजन और उत्सव की विधि में भले ही थोड़ा बहुत अन्तर हो, परन्तु मूल आशय एक ही है। कहा जाता है कि इसी तिथि को शिवजी ने पार्वती को और पार्वतीजी ने सम्पूर्ण स्त्रियों को सौभाग्य-वर दिया था। इस तिथि पर सौभाग्यवती स्त्रियां मध्याह्न तक व्रत रखती हैं। पूजन के समय रेणुका की गौर स्थापित करके उस पर सौभाग्य-सम्बन्धी सब चीजें चढ़ाई जाती हैं—जैसे कांच की चूड़ी, महावर, सिन्दूर और नवीन वस्त्र। चन्दन, अक्षत, धूप-दीप, नैवेद्य दि से विधिवत पूजन होने के बाद सुहाग की सामग्री अर्पण होती है। तब भोग लगता है। भोग के बाद कथा कही जाती है। कथा पूरी होने के बाद व्रत रखनेवाली सौभाग्यवती स्त्रियां गौर का चढ़ा हुआ सिंदूर अपनी-अपनी मांग में लगाती हैं। फिर केवल एक बार भोजन करके व्रत को समाप्त करती हैं। गनगौर का प्रसाद पुरुषों को नहीं

दिया जाता है। इस व्रत के सम्बन्ध में जो लौकिक कथा प्रचलित है, वह इस प्रकार है—

कथा—एक समय महादेवजी नारदजी के साथ देश-पर्यटन को निकले। उनके साथ पार्वतीजी भी हो गयीं। तीनों चलते हुए एक गांव में पहुंचे। उस दिन चैत्र शुक्ला तृतीया थी। गांव के लोगों ने जब सुना कि साक्षात् शिव-पार्वती पधारे हैं तब सब स्त्रियां उनका पूजन करने के लिए रुचिकर भोजन बनाने लगीं। इसी में उनको देर हो गई। परन्तु नीच कुल की स्त्रियां जो जहां जैसे बैठी थीं, वैसे ही हल्दी-चावल थालियों में रखकर दौड़ी हुई शिव-पार्वती के समीप जा पहुंचीं। उनकी पत्र-पुष्प-पूजा अंगीकार करके पार्वतीजी ने उनके ऊपर सुहाग-रस (सौभाग्य का टीका लगाने को हल्दी) छिड़क दिया। वे अटल सौभाग्य पाकर चली गईं। इसके पश्चात् उच्च कुल की महिलाएं आईं। वे सोलहों शृङ्गार, बारहों आभूषणों से सजी हुई नाना प्रकार से पकवान और पूजा की सामग्रियां चांदी-सोने के थालों में सजा कर ले आईं। उनको देखकर शिवजी ने कहा—"गौरी! तुमने संपूर्ण सुहाग-रस तो साधारण स्त्रियों में वितरण कर दिया। अब इनको क्या दोगी?"

पार्वतीजी बोलीं—"आप इसकी चिन्ता न करें। उनको ऊपरी पदार्थों से बना हुआ रस दिया गया है, इस कारण उनका सुहाग धोती से रहेगा, परन्तु मैं इन लोगों को अपनी उंगली चीरकर आधे रक्त का सुहाग-रस देती हूं। जिस किसी के भाग में मेरा दिया यह सुहाग-रस पड़ेगा वह मेरी तरह तन-मन से सौभाग्यवती होगी।" निदान जब स्त्रियां पास आईं और पूजा कर चुकीं, तब पार्वतीजी ने अपनी उंगली चीरकर उन पर छिड़की। उंगली में से जो किंचित् रक्त निकला, उसी का एक-एक दो-दो छींटा किसी-किसी पर पड़ा। मतलब यह कि जिस पर जैसे छींटे पड़े, उसने वैसा ही सुहाग पाया। इस काम से निवृत्त होकर पार्वती जी ने शिवजी की आज्ञा से नदी के किनारे जाकर

स्नान किया। फिर बालू के महादेव बनाकर वह उनका पूजन करने लगीं। पूजन के बाद बालू के ही पकवान बनाकर उन्होंने शिवजी को भोग लगाया, परिक्रमा की और नदी के किनारे की मिट्टी का टीका माथे पर लगाकर दो कण बालू का प्रसाद पाया। इसके बाद वह शिवजी के पास चली गईं।

विधिवत् षोड़षोपचार-पूजन करने में पार्वतीजी को नदी के किनारे बहुत देर लग गई। इसलिए जब वह शिवजी के समीप गईं तब उन्होंने उनसे पूछा कि तुम्हें इतनी देर क्यों लगी ? पार्वतीजी ने उत्तर दिया कि वहां मेरे भाई-भावज आदि मायके से आ गये थे, इसी कारण देर हो गई। शिवजी ने फिर पूछा कि तुमने पूजन के बाद क्या प्रसाद चढ़ाया और स्वयं क्या पाया ?

पार्वतीजी ने कहा कि हमारी भावजों ने हमको दूध-भात खिलाया है। उसे खाकर मैं चली आ रही हूं। पार्वतीजी की बातें सुनकर शिवजी भी दूध-भात खाने के लिए वहां चल पड़े। उन्हें चलते देखकर पार्वतीजी बड़े असमंजस में पड़ गयीं। उन्होंने शिवजी का ध्यान धरकर प्रार्थना की कि यदि मैं तुम्हारी अनन्य दासी हूं तो हे प्रभु ! तुम्हीं इस समय मेरी लज्जा रक्खो। ऐसा संकल्प करके वह भी शिवजी के पीछे-पीछे चलने लगीं। अभी वे थोड़ी ही दूर चले होंगे कि नदी के किनारे एक सुन्दर माया का महल दिखाई देने लगा। जब वह उस महल के भीतर गये तब वहां शिवजी के साले और सरहज आदि सभी परिवार के लोग मौजूद थे। उन्होंने बहन-बहनोई का बड़े प्रेम से स्वागत किया। दो दिन तक अच्छी तरह मेहमानदारी होती रही। तीसरे दिन सवेरे पार्वती-जी ने शिवजी से चलने के लिए कहा, परन्तु वह राजी नहीं हुए। अन्त में पार्वतीजी रूठकर चल दीं। तब तो शिवजी को भी उनका साथ देना पड़ा। आगे शिवजी, उनके पीछे पार्वतीजी, और उनके पीछे नारद-जी। तीनों यात्री चलते-चलते बहुत दूर निकल गये। जब सन्ध्या होने का समय आया, तब शिवजी बोले कि मैं तुम्हारे मायके में अपनी माला

भूल आया हूं। उसके लाने का क्या उपाय है? पार्वतीजी वहां जाकर माला लाने के लिए तैयार हुईं, पर शिवजी के आग्रह से वह न जा सकीं। नारदजी वहां गये।

नारदजी ने उक्त स्थान पर जाकर देखा तो वहां न कोई महल था, न मनुष्य के रहने का संकेत। घोर सघन जंगल में असंख्य हिंसक पशु फिर रहे थे, महान् अन्धकार छाया हुआ था, बादल उमड़े हुए थे और बिजली चमक रही थी। नारद अन्धकार में भूलते-भटकते फिर रहे थे। इतने में बिजली चमकी और शिवजी की माला उनको एक वट-वृक्ष की शाखा में टंगी दिखाई दी। नारदजी माला लेकर वहां से भागे और शिवजी के पास आकर अपनी कष्ट-कथा सुनाने लगे। उस समय शिवजी ने हंसते हुए कहा कि यह पार्वतीजी की लीला है।

गौरी पार्वती ने विनती की और कहा कि यह सब आपकी कृपा का प्रभाव है। मैं किस योग्य हूं। शिव-पार्वती की बातें सुनकर नारदजी ने दोनों को साष्टांग प्रणाम किया और कहा—"माता! आप पतिव्रताओं में अग्रगण्य, सदैव सौभाग्यवती, आदि शक्ति हैं। यह सब आपके पतिव्रत का प्रभाव है। जब स्त्रियां तुम्हारे नाममात्र के स्मरण से अटल सौभाग्य प्राप्त कर पतिव्रत में लीन हों, संसार की सम्पूर्ण सिद्धियों को बना और मिटा सकती हैं, तब आपके लिए यह कोई बड़ी बात नहीं है।"

१३/शीतला-अष्टमी

चैत्र कृष्ण अष्टमी को शीतला-अष्टमी कहते हैं। इस तिथि पर स्त्रियां भगवती का पूजन करके उनकी मढ़ी या देवालय में जाती हैं। पूजन की विधि में कोई विशेषता नहीं है। किन्तु इस पूजन के बाद सम्पूर्ण ठंडी वस्तुओं का भोग लगाया जाता है। इस दिन जो पकवान बनाया जाता है, वह सब सप्तमी का बना हुआ होता है। एक दिन पहले के बने हुए कच्चे-पक्के सब प्रकार के व्यंजन पूजा में रखे जाते हैं।

घर की अधिष्ठात्री या पूजा करने वाली इस दिन बासी अन्न खाती हैं।

स्त्री हो या पुरुष, जो शीतला-अष्टमी का व्रत करता है, वह मध्याह्न में भगवती का पूजन करके बासी अन्न केवल एक बार भोजन करता है। मढ़ी में पूजा हो चुकने के बाद कथा कही जाती है, जो इस प्रकार है—

कथा—किसी राजा के पुत्र को शीतला (चेचक) निकली थी। उसी नगर में एक काछी के लड़के को भी शीतला निकली थी। काछी बहुत गरीब था, परन्तु भगवती का उपासक था। वह शीतला-सम्बन्धी उन सब नियमों को भली-भांति मानता था, जो धार्मिक दृष्टि से आवश्यक समझे जाते हैं—जैसे शीतला वाले के पास खूब सफाई रखना, वहां की जमीन को प्रतिदिन लीपना, शुद्ध अवस्था ही में छूना, भगवती की पूजा करना, नमक न खाना, घर में तरकारी न बघारना, न कोई चीज भूनना, कड़ाही न चढ़ाना, कोई गरम चीज न आप खाना, न शीतला वाले को खिलाना, सदैव शीतल वस्तुओं का व्यवहार करना इत्यादि। इससे उसका लड़का शीघ्र ही चंगा हो गया।

राजा के यहां राजकुमार को शीतला निकलने के कारण भगवती के मंडप में शतचंडी का पाठ बैठा था। नित्य हवन और बलिदान होते थे। राज-पुरोहित भगवती की पूजा करते थे। परन्तु राजघर में नित्य कड़ाही चढ़ती थी, अनेक प्रकार के गरम, पुष्ट और स्वादिष्ट व्यंजन बनते थे, हर तरह की तरकारियों के साथ मांस भी पकता था। उन व्यंजनों की गंध पाकर राजकुमार मनमानी चीजें खाने को मांगता था। और सब चीजें उसे खाने को दी जाती थीं। इस कारण राजकुमार पर शीतला का अधिकाधिक प्रकोप होता जाता था। उसके शरीर में बड़े-बड़े फोड़े निकल आये थे, खुजली होती थी और सर्वाङ्ग में जलन पैदा होती थी। राजा-रानी ज्यों-ज्यों शीतला की शान्ति के उपाय करते थे, त्यों-त्यों उसका प्रकोप अधिक होता जाता था।

जब राजा को यह समाचार मिला कि राजकुमार के साथ ही एक

काछी के लड़के को भी शीतला निकली थी और वह बिल्कुल अच्छा हो गया है तब राजा के मन में एक प्रकार की ईर्ष्या उत्पन्न हुई। वह अपने मन में सोचने लगा कि भगवती क्यों ऐसा अन्याय कर रही हैं। मैं हजारों रुपये प्रतिदिन खर्च कर रहा हूं, पर मेरा लड़का तो दिन-दिन विशेष व्यथित होता जाता है और जो गरीब काछी किसी तरह भी भगवती की सेवा-पूजा मेरे मुकाबिले में नहीं कर सकता, उसका लड़का विना प्रयास चंगा हो गया है। इस प्रकार का तर्क-वितर्क करते हुए जब राजा को नींद आ गई तब शुक्लाम्बर-धारिणी भगवती ने उसे स्वप्न में दर्शन देकर कहा कि मैं तुम्हारी सेवा से प्रसन्न हूं। यही कारण है कि अब तक तुम्हारा पुत्र जीवित है। वास्तव में तुम स्वयं तो उन नियमों का पालन नहीं करते, जो शीतला के समय जरूरी हैं और मुझको दोष देते हो। ऐसी दशा में सदा ठण्डी वस्तुओं का प्रयोग होना चाहिए। नमक खाना इसलिए मना है कि उससे खुजली पैदा होती है। घर में वघार लगाना इस कारण मना है कि उसकी गंध पाकर बीमार आदमी उसे खाने के लिए लालायित हो उठता है। किसी के पास जाना-आना और मिलना-मिलाना इस कारण मना है कि यह रोग दूसरे को न लग जाय। दूसरों की कुशल चाहने से अपनी कुशल होती है।

भगवती की बातें सुनकर राजा ने विनती की और कहा—"हे माता ! अब मुझे जो आज्ञा हो वह करूं, परन्तु पुत्र की रक्षा कीजिये।"

भगवती ने कहा—"आज से तुम कड़ाही न चढ़ने दो, शीतल पदार्थ राजकुमार को खिलाओ और इसी प्रकार शीतल पदार्थ का मुझे भोग लगाओ।" यह कहकर देवी अन्तर्द्धान हो गई। राजा ने सवेरे ही विधिवत भगवती का पूजन आरम्भ किया। दैवयोग से उसी समय से राजकुमार की तवियत ठीक होने लगी। कुछ दिनों के बाद राजकुमार विल्कुल अच्छा हो गया।

जिस दिन भगवती ने राजा को स्वप्न में दर्शन दिये थे, उस दिन चैत्र कृष्ण सप्तमी थी। राजा ने नगर में ढिंढोरा पिटवा दिया कि

अष्टमी को सब लोग बासी अन्न और शीतल पदार्थों का भोग लगाकर भगवती की पूजा करें और अष्टमी को शीतलाष्टमी कहा जाय। उसी समय से सर्वसाधारण में शीतलाष्टमी की पूजा का प्रचार हुआ है।

अधिकांश देखा गया है कि चैत्र और वैशाख में ही शीतला का प्रकोप अधिक होता है। अस्तु, शीलता-अष्टमी की पूजा आमतौर से यह शिक्षा देती है कि शीलता के रोग के समय किस विधि से रहना चाहिए और कैसे भगवती की पूजा करनी चाहिए।

१४/नव संवत्सर-प्रतिपदा

हमारे देश में वर्ष का आरंभ चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से होता है। इसलिए इसको 'संवत्सर-प्रतिपदा' कहते हैं। ब्रह्मपुराण में लिखा है कि ब्रह्मा ने इसी तिथि पर सृष्टि की रचना की थी। उसके अनुसार इस तिथि से देवी-देवताओं ने सृष्टि-संचालन कार्यारंभ किया था। अथर्ववेद में इसका उल्लेख है। अन्तर केवल इतना है कि जहां पुराण में ब्रह्मा की मूर्ति के पूजन का विधान है वहां वेद में संवत्सर रूप प्रजापति की प्रतिभा का पूजन लिखा है। इसके अतिरिक्त 'शतपथ ब्राह्मण' में इसका उल्लेख मिलता है। तात्पर्य यह है कि यह पर्व अत्यन्त प्राचीन है। 'स्मृतिकौस्तुभ' के रचनाकार का कहना है कि चैत्र शुक्ल प्रतिपदा रेवती नक्षत्र के विष्कम्भ योग में दिन के समय भगवान ने मत्स्य रूप अवतार लिया था। इन सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि यही दिन भारत के सम्राट विक्रमादित्य के संवत्सर का प्रथम दिन है। इसी तिथि से रात्रि की अपेक्षा दिन बड़ा होने लगता है। ईरानियों में इसी तिथि पर नौरोज मनाया जाता है। इस प्रकार इस तिथि का महत्व ऐतिहासिक एवं धार्मिक, दोनों दृष्टियों से है।

नव संवत्सर-प्रतिपदा के दिन प्रातःकाल स्नान करके हाथ में गंध, अक्षत, पुष्प और जल लेकर संकल्प करना चाहिए। फिर नई बनी हुई

चौकी अथवा बालू की वेदी पर स्वच्छ श्वेत वस्त्र बिछाकर उस पर हल्दी अथवा केसर में रंगे हुए अक्षत का अष्टदल कमल बनाना चाहिए। अष्टदलकमलपर सोने की मूर्ति स्थापित करके "ॐ ब्रह्मणनमः" से ब्रह्मा का आवाहन कर पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य से उनका पूजन करना चाहिए। पूजा के अन्त में ब्रह्मा से अपने लिए संपूर्ण वर्ष कल्याणकारी होने की प्रार्थना करनी चाहिए। इस दिन नए वस्त्र धारण करने, घर को ध्वजा, पताका और तोरण से सजाने, नीम के कोमल पत्तों को खाने, प्याऊ की स्थापना करने तथा ब्राह्मणों को भोजन कराने का भी विधान है।

१५/रामनवमी

हमारे यहां वर्ष में दो नवरात्र होते है—एक आश्विन मास की शुक्ल प्रतिपदा से नवमी तक और दूसरा चैत्र मास की शुक्ल प्रतिपदा से नवमी तक। पहला शारदीय नवरात्र के नाम से प्रसिद्ध है और दूसरा वासन्तीय। वासन्तीय नवरात्र को रामनवमी भी कहते हैं। कहा जाता है कि चैत्र शुक्ल नवमी को भगवान रामचन्द्र का जन्म हुआ था। इस-लिए यह प्रत्येक हिन्दू के लिए पुण्य का पर्व माना जाता है।

रामनवमी के व्रत में मध्याह्न-व्यापिनी तिथि लेनी चाहिए। अर्थात् जिस दिन दोपहर को नवमी पड़े, उसी दिन रामनवमी माननी चाहिए। अगस्त संहिता में लिखा है कि यदि चैत्र शुक्ल नवमी पुनर्वसु नक्षत्र से युक्त हो और मध्याह्न-व्यापिनी हो तो उसको महापुण्य वाली जाननी चाहिए। विष्णु भक्तों को अष्टमी विद्धा नवमी कभी न माननी चाहिए। नवमी को उपवास और दशमी को पारण करना चाहिए। नवमी की रात्रि में व्रती को रामायण की कथा सुननी चाहिए और दशमी को प्रातः-काल राम का पूजन करना चाहिए। इसके पश्चात् ब्राह्मणों को भोजन कराना और उन्हें गौ, भूमि, सुवर्ण, तिल, वस्त्र, अलंकार, आदि दक्षिणा

में देना चाहिए।

रामनवमी हमारा राष्ट्रीय पर्व है। यह संस्कृति का स्मारक और हमारे विस्मृत आदर्शों का परिचायक है। दक्षिण भारत में यह पर्व बड़ी धूम-धाम से मनाया जाता है। अयोध्या में भी इस तिथि पर बड़ा भारी मेला लगता है और दूर-दूर के लोग रामचन्द्र के मंदिर में भगवान का दर्शन करने जाते हैं।

१६/पजूनो-पूनो-व्रत

चैत्र-शुक्ला पूर्णिमा को पजूनो-पूनो भी कहते हैं। इस तिथि पर व्रत नहीं होता, केवल पजनकुमार का पूजन होता है। पूजन उसी घर में होता है जिसमें कोई लड़का होता है। यदि लड़का नहीं होता, लड़कियां ही होती हैं, तो पूजा नहीं होती।

किसी के यहां पांच मटकियां पुजती हैं, किसी के यहां सात। जहां पांच पुजती हैं, वहां चार मटकियां और एक करवा होता है। इसी तरह सात में एक करवा होता है। मटकियां चूना या खड़िया मिट्टी से रंगी जाती हैं। करवा पर हल्दी से पजनकुमार और उसकी दोनों माताओं की प्रतिमाएं लिखी जाती हैं। शुद्ध जगह लीपकर और चौक पूर कर बीच में पजनकुमार का करवा और उसके चारों ओर अन्य मटकियां रक्खी जाती हैं। ये सब मटकियां विविध प्रकार के पकवानों से भरी जाती हैं। बीच वाली मटकियों में अधिकांश लड्डू ही रखे जाते हैं। चन्दन, अक्षत, धूप-दीप, नैवेद्यादि से मटकियों की पूजा करके कथा कही जाती है। एक स्त्री कथा कहती है। बाकी स्त्रियां अक्षत हाथ में लेकर बैठ जाती हैं। कथा समाप्त होते ही वे सब मटकियों पर अक्षत छोड़ती हैं और मटकियों को दण्डवत करती हैं। तब लड़का सब मटकियों को हिला-हिलाकर यथास्थान रख देता है। पजनकुमार की

मटकी में से लड़का लड्डू निकालकर मां की झोली में डालता है। तब मां लड़के को लड्डू या और पकवान देती है, और फिर सब घर के लोगों में मटकियों का पकवान प्रसाद की तरह वितरण किया जाता है। प्रसाद बांटते समय कहा जाता है—

पजन के लडुवा पजनैं खायं।
दौर-दौर वही कोठरी में जायं॥

कथा—किसी समय वासुकदेव नाम का एक राजा था। उसके दो रानियां थीं। बड़ी रानी का नाम था सिकौली और छोटी का रूपा। दोनों रानियों में से सन्तान एक के भी नहीं थी। छोटी रानी रूपा राजा को अत्यन्त प्रिय थी और सिकौली पर उनकी सास-ननद का अधिक प्रेम था। रूपा पति की प्यारी होने से सास ननद की नाराजगी की कुछ भी परवा नहीं करती थी। परन्तु उसको पुत्र की बड़ी लालसा थी। इस कारण उसने एक दिन वृद्धा स्त्रियों से कोख चलने का उपाय पूछा। उन स्त्रियों ने कहा कि सन्तान तो सास-ननद के आशीर्वाद से हो सकती है। रानी ने कहा कि वे तो मुझसे नाराज हैं। इसलिए यह सम्भव नहीं कि वे मुझको आशीर्वाद दें। इस पर स्त्रियों ने सिखाया कि तुम ग्वालिन का भेष धारण कर अपनी सास-ननद के पास जाओ और उनके पैर पड़ो। वे आशीर्वाद देंगी तो अवश्य तुम्हारे सन्तान होगी।

एक दिन रूपा रानी ग्वालिन के भेष में सास-ननद के महलों में गई। उसने दूध-दही की मटकियां सर पर से उतार कर सास-ननद के पैर छुए। तब उन्होंने उसे पुत्रवती होने का अशीर्वाद दिया। इस प्रकार सास-ननद का आशीर्वाद लेकर वह चली आई। भगवान् की कृपा से उसको गर्भ रह गया। अब उसको सास-ननद के न आने-जाने की चिन्ता हुई। उसने एक दिन अपने जी की बात राजा से कही। राजा ने कहा कि इस बात की तुम कोई चिंता न करो। मैं आज ही तुम्हारे महल में एक घण्टी बंधवाए देता हूं। जब तुम्हारे लड़का होने लगे अथवा तुमको और कोई संकट हो तब तुम डोरी खींचना। घण्टी बजते ही मैं तुरन्त दौड़ा आऊंगा। यह

कहकर राजा ने रानी के महल में घण्टियों का प्रबन्ध करा दिया। एक दिन रानी ने घण्टी खींचकर राजा की परीक्षा ली। उस समय राजा दरबार में बैठे थे। घण्टी बजते ही वह रनिवास में गये। उन्हें जब मालूम हुआ कि घण्टी परीक्षा लेने के लिए बजी थी, तब उन्हें बहुत क्रोध आया। वह बिगड़कर चले गये। ऐसी दशा में रूपा रानी को विवश होकर सास-ननद की शरण में जाना पड़ा। उसने उनसे कहा कि मेरे प्रसव के दिन निकट हैं। ऐसा उपाय बताइए, जिससे यह सब काम सुख से हो जाय। ननद ने उसे धैर्य बंधाते हुए कहा कि जब तुम्हारे पेट में दर्द हो, तब तुम कोने में सिर डालकर ओखली पर बैठ जाना। रूपा रानी कुछ सीधे स्वभाव की थी। उसने ननद की बात को सच मान कर अक्षरशः पालन किया। प्रसव के समय वह ओखली पर बैठ गयी। बालक पैदा होकर ओखली में गिर गया और रोने लगा। उसका रोना सुनकर सास-ननद दौड़ी आईं। उन्हीं के साथ रूपा की सौत सिकौली रानी भी आईं। उसने नवजात बालक को उठाकर घूरे पर फिकवा दिया और ओखली में कंकड़-पत्थर डाल दिये। सास-ननद ने आकर रूपा से कहा कि तूने तो कंकड़-पत्थर जाये हैं।

जब राजा को यह समाचार मिला तब वह भी दौड़े आये। और कंकड़-पत्थरों को देखकर आश्चर्य में रह गये। वह माता या बहन से न तो कुछ कह सके और न पूछ सके। परन्तु अपने मन में समझ गये कि यह एक असम्भव-सी बात है। स्त्री के गर्भ से कंकड़-पत्थर पैदा नहीं हो सकते। ऐसा सोच-विचार कर राजा चुपचाप बाहर चले गये।

जिस दिन रूपा रानी के गर्भ से लड़का जन्मा, उस दिन चैत्र सुदी पूर्णिमा थी। जिस घूरे पर लड़का डाला गया था, उसी घूरे पर एक कुम्हारिन कूड़ा डालने आई। उसने देखा कि एक सुन्दर बालक घूरे की राख में पड़ा खेल रहा है। वह उसे उठाकर अपने घर ले गई। उसके कोई सन्तान नहीं थी। इसलिए वह बड़े लाड़-प्यार से उसका लालन-पालन करने लगी। लड़का जब बड़ा हुआ; तब कुम्हार ने उसके खेलने के

लिए एक मिट्टी का घोड़ा बना दिया। लड़का उस घोड़े को लेकर नदी के किनारे जाता और उसका मुंह पानी में लगाकर कहा करता—मिट्टी के घोड़े पानी पी, चें चें चें।

नदी के उस तट पर रनिवास की स्त्रियां नहाने आती थीं। लड़के का चरित्र देखकर एक दिन एक स्त्री ने कहा—"ओ कुम्हार के छोकरे! तू पागल है क्या? कहीं मिट्टी का घोड़ा पानी पीता है?"

लड़के ने उत्तर दिया—"मैं पागल नहीं हूं, दुनिया पागल है। क्या यह भी संभव है कि रानियों के गर्भ से कंकड़-पत्थर पैदा हों।"

लड़के की बात सुनते ही स्त्रियों ने समझ लिया कि हो न हो, यही वह लड़का है। उन्होंने महलों में जाकर रानी सिकौली को यह समाचार सुनाया कि तुम्हारी सौत का बालक अमुक कुम्हार के घर में है। रानी ने वहां भी उस बालक को मरवाने का निश्चय करके मान ठान दिया। वह कोप-भवन में मलिन बसन पहनकर लेट रही। जब राजा ने उसके पास जाकर मान का कारण पूछा, तब उसने कहा कि जब तक अमुक कुम्हार का बालक जान से न मार डाला जायगा, तब तक मैं अन्न-जल ग्रहण नहीं करूंगी।

राजा ने पूछा—"उसका ऐसा अपराध क्या है?"

रानी ने कहा—"वह हमारी दासियों को चिढ़ाता है।"

राजा ने कहा—"यह अपराध जीव-हत्या के योग्य नहीं है। हां, यदि चाहो तो उसे इस गांव से या देश से निकाला जा सकता है।"

रानी राजी हो गयी। राजा ने कुम्हार के बालक को गांव से निकलवा दिया। कुछ दिनों में कुम्हार का बालक और भी बड़ा हो गया। तब वह अच्छे-अच्छे कपड़े पहनकर राजा के दरबार में आने लगा। राजा समझता था कि वह किसी राजकर्मचारी का लड़का है और राजमंत्री समझते थे कि वह किसी राजा का सगा-सम्बन्धी राजकुमार है। इसी कारण उससे कोई कुछ नहीं पूछता था। वह नित्य दरबार में बैठकर राज-काज की सब बातें ध्यान में रखता था। राजदरबार के सभी लोग

उसके आचरण से प्रसन्न थे ।

एक वर्ष राजा वासुकदेव के राज में जल नहीं बरसा । तब पंडितों ने सलाह दी कि यदि ऐसा रथ चलाया जाय, जिसमें राजा-रानी कंधा देकर बैल की तरह चलें और कोई चैत्र सुदी पूर्णिमा का उत्पन्न हुआ द्विजातीय बालक रथ को हांके, तो जल बरसेगा । उस समय अवसर पाकर राजकुमार ने कहा कि मैं पूर्णिमा को उत्पन्न हुआ हूं । मैं रथ भी चला सकता हूं । युवक की बातें सुनकर रथ चलाने की सब तैयारियां की जाने लगीं । इस बीच राजकुमार ने अपनी मां के पास जाकर कहा कि जब तुमसे रथ के सम्बन्ध में कोई काम करने को कहा जाय तब तुम कहना कि पहले हमारी जेठानी करें, तब हम करेंगी । इस तरह हर काम में तुम उसी को आगे रखना । रूपा रानी राजी हो गयी ।

जब रथ चलने का समय आया तब पजनकुमार की मां रूपा रानी से कहा गया कि जगह लीपो । वह बोली कि पहले जेठानी लीपें, तब मैं लीपूंगी । राजा की आज्ञा से पहले सिकौनी रानी ने लीपा, तब पीछे से रूपा ने भी लीप दिया । जब रथ में कन्धा देने का समय आया, तब भी रूपा रानी ने कह दिया कि पहले जेठानी कन्धा दें, तब मैं दूंगी । लाचार सिकौनी रानी ने रथ में कन्धा दिया । उस समय खूब धूप निकली हुई थी । राजकुमार ने जमीन में गोखरू कांटे बिखेर दिये थे । एक ओर उसके पांव में कांटे धंसते थे, दूसरी ओर राजकुमार उसकी पीठ पर छड़ियां मारता था । इस प्रकार जब रथ सीमा तक पहुंच गया तब वह उससे अलग हुई ।

अब रूपा रानी की बारी आई । उसने ज्योंही कन्धा दिया त्योंही आसमान में बादल घिर आये और मार्ग से गोखरू हट गये । इसलिए रूपा रानी को कुछ भी कष्ट नहीं हुआ । रथ चलाने का काम पूरा होते ही जल बरसने लगा । सबको बड़ी प्रसन्नता हुई । उसी समय पजन-कुमार ने अपनी माता के पास जाकर उसके चरण छुए । तब सबने जान लिया कि यही पजनकुमार है । राजा ने भी अपने पुत्र को पहचान कर

उसे गले से लगा लिया।

बाहर सबसे मिल-मिलाकर राजकुमार रनिवास में गया। उसने अपनी आजी (दादी) से कहा—"दादी ! हम आये, क्या तुम्हारे मन भाये ?"

इस पर बुढ़िया ने जवाब दिया—"बेटा ! नाती-पोते किसे बुरे लगते हैं !"

पजनकुमार ने कहा—"तुमने मेरे मन की बात नहीं कही। तुम्हारी बात निरर्थक और अधूरी है। इस कारण मैं शाप देता हूं कि तुम अगले जन्म में देहली होगी।

फिर वह बुआ के पास गया और बोला—"बुआ री बुआ ! हम आये, तुम्हारे मन भाये या न भाये ?"

उसने कहा—"भतीजे किसे बुरे लगते हैं !"

कुमार ने कहा—तुमने भी मेरे मन की बात नहीं कही। तुमने ऊपर से सफाई दिखाई। पर तुम्हारा दिल मेरी ओर से साफ नहीं है। इस कारण तुम पुताड़ी (चौका लगाने का मिट्टी का बर्तन) होगी।"

इसके बाद वह सौतेली मां के पास गया और बोला—"माता ! हम आये, क्या तुम्हारे मन भाये ?"

उसने जवाब दिया—"आये सो अच्छे आये, जेठी के हो या लहुरी के, आखिर हो तो लड़के ही।"

तब राजकुमार ने कहा—"तुमने भी मेरे मन की बात नहीं कही। तुमने दो-रुखी बातें कहीं। इस कारण तुम घुंघची (गूंजा) होगी, जो आधी काली आधी लाल होती है।"

अन्त में राजकुमार अपनी मां के पास गया और बोला—"माता, हम आये, तुम्हारे मन भाये कि न भाये ?"

उसने जवाब दिया—"बेटा ! भले आये, हमने न पाले न पोसे, न खिलाये न पिलाये, हम क्या जानें कैसे आये ?"

उसी समय वह किशोर-वय राजकुमार नवजात शिशु के रूप में

होकर 'कहां-कहां' रुदन करने लगा। मां उसको गोद में लेकर दूध पिलाने लगी। जब राजा को यह समाचार मिला, तब उन्होंने शिशु को देखकर प्रसन्नता प्रकट की। आप-से-आप तोपें दगने लगीं और सारे राज में आनन्द-बधाई बजने लगी। कहते हैं, पजूनो-पूनो की पूजा का प्रचलन लोक में उसी दिन से हुआ है।

१७/अक्षय तृतीया-व्रत

वैशाख मास के शुक्ल पक्ष की तीज को अक्षय तृतीया कहते हैं। इसमें पूर्वाह्न व्यापिनी अर्थात् दोपहर के पूर्व जो तिथि हो उसे ही लेना चाहिए। जो मनुष्य वैशाख शुक्ल तृतीया का पराह्न व्यापिनी लेता है उसके हव्य और कव्य को पितर ग्रहण नहीं करते। यह दिन अत्यन्त पवित्र है। इस दिन होम, जप, तप, दान, स्नान आदि अक्षय रहते हैं। इसीलिए इसे अक्षय-तृतीया कहते हैं। जो मनुष्य इस दिन लड्डू और पंखा दान करता है वह स्वर्गलोक प्राप्त करता है और जो मनुष्य इस दिन गंगा-स्नान करता है वह अवश्य ही सब पापों से मुक्त हो जाता है।

कथा—एक समय राजा युधिष्ठिर ने भगवान् श्रीकृष्ण से पूछा—"हे भगवन्! कृपाकर आप अक्षय तृतीया का माहात्म्य वर्णन कीजिए।"

श्रीकृष्ण भगवान् बोले—"हे राजन्! सुनो। इस पुण्य-तिथि में पूर्वाह्न में स्नान, जप, तप, होम, स्वाध्याय, पितृ-तर्पण और दान आदि जो कुछ भी किया जाता है, वह अक्षय पुण्यफल का दाता होता है। इस तृतीया को 'युगादि तृतीया' भी कहते हैं, क्योंकि इसी दिन से सतयुग का आरम्भ होता है।

"हे युधिष्ठिर! पूर्वकाल में एक अत्यन्त निर्धन, सत्यवादी, व्रती और देव ब्राह्मणों का पूजन करने वाला तथा श्रद्धालु वैश्य था। वह बहु-कुटुम्बी होने के कारण सदैव व्याकुल-चित्त रहा करता था।

उसने वैशाख शुक्ल पक्ष की अक्षय तृतीया के माहात्म्य में सुना कि इस तिथि में दान, जप, हवन, और स्नानादि से महत्फल प्राप्त होता है। उस वैश्य ने अक्षय तृतीया के दिन प्रातःकाल गंगाजी में स्नान करके विधिपूर्वक देवताओं और पितरों का पूजन किया। पुनः घर आकर उसने ओले के लड्डू, पंखा, जल भरे हुए घट, जौ, गेहूं और लवण आदि तथा सत्तू, दही, चावल और गुड़ आदि खाद्य पदार्थों का और स्वर्ण, वस्त्रादि, दिव्य पदार्थों का भक्तिपूर्वक दान किया। स्त्री के निषेध करने पर, कुटुम्ब-चिंता से चिंतित होने और वृद्धावस्था के कारण अनेक रोगों से ग्रसित होने पर भी वह धर्म-कर्म से पराङ्मुख नहीं हुआ। इस कारण हे राजन् ! समय पाकर उस वैश्य का आगामी जन्म कुशावती नगरी में एक क्षत्रिय के घर में हुआ। पूर्व संचित पुण्य के प्रभाव से वह बड़ा धनाढ्य और प्रतापी हुआ। सब प्रकार का वैभव पाकर भी उसकी बुद्धि धर्म से विचलित नहीं हुई। प्रत्युत उसने और भी अधिक धर्म संचय किया। यह सब अक्षय तृतीया का ही प्रभाव था।"

१८/आसमाई का पूजन

वैशाख, आषाढ़ और माघ, इन्हीं तीनों महीनों की किसी तिथि में रविवार के दिन आसमाई की पूजा होती है। यह पूजा किसी कार्य की सिद्धि के लिए की जाती है। किसी-किसी के यहां साल में एक दो अथवा तीन वार भी पूजा होती है। बाराजोत (बारह आदित्य) और आसमाई (आशा पूर्ण करने वाली शक्ति) की पूजा एक साथ होती है। प्रायः लड़के की मां यह व्रत करती हैं। वह व्रत के दिन अलोना भोजन करती है।

एक पान पर सफेद चन्दन से एक पुतली लिखी जाती है। उसी पर चार गंठीली कौड़ियां रखकर उसकी पूजा की जाती है। चौक पर कलश की स्थापना की जाती है। उसी के समीप एक पटा पर ऊपर

कहे अनुसार आसमाई की स्थापना की जाती है। पंडित पंचांग-पूजन करा-कर कलश का तथा आसमाई का विधिवत् पूजन कराता है। पूजन के अंत में पंडित बारह गांठवाला एक गंडा व्रत वाली को देता है। उसी गंडे को हाथ में पहनकर आसमाई और बाराजोत को भोग लगाया जाता है। पूजा के अंत में जब पूजा की सब सामग्री जल में सिराई जाती है, तब उक्त गंडा भी सिरा दिया जाता है। लेकिन पूजावाली कौड़ियां रख ली जाती हैं। वे ही फिर पूजा के काम आती हैं। यदि उनमें से कोई कौड़ी खो जाय तो उसके बजाय नई कौड़ी पूजा में रख दी जा सकती है। इस पूजन के सम्बन्ध में जो कथा कही जाती है, वह इस प्रकार है—

कथा—एक राजा था। उसके एक ही राजकुमार था। माता-पिता का बहुत लाड़ला होने के कारण वह बहुत ऊधम मचाया करता था। प्रायः कुओं और पनघटों पर बैठ जाता और जब स्त्रियां जल भर-कर घर को चलने लगतीं तब गुलेल का गुल्ला मारकर उनके घड़े फोड़ डालता था। लोगों ने राजा के पास जाकर राजकुमार के आचरण की शिकायत की। राजा ने यह आज्ञा निकाल दी कि कोई मिट्टी का घड़ा लेकर पानी भरने न जाया करे। स्त्रियां तांबे-पीतल के घड़े से पानी ले जाने लगीं। यह देखकर राजकुमार मिट्टी के बजाय लोहे और शीशे के गुल्ले मार-मार कर उनके घड़े फोड़ने लगा। ऐसी दशा में लोगों ने एकत्र होकर राजा से फिर शिकायत की।

राजा ने सोचा कि यदि प्रजा भाग जायगी तो मैं राज किस पर करूंगा। कुंवर चला जायगा तो और हो जायगा। इसलिए प्रजा को रखकर कुंवर को निकाल देना उचित है। यह सोचकर राजा ने प्रजा को समझा-बुझाकर शान्त किया।

एक दिन राजकुमार शिकार खेलने गया। अवसर पाकर राजा ने अपने हस्ताक्षर-सहित एक आज्ञा-पत्र ड्योढ़ी के सिपाहियों को देकर कहा कि जब राजकुमार शिकार से लौटकर महल में जाने लगे, तब

यह पर्चा तुम उसको दिखा देना। इसके कुछ देर बाद राजकुमार लौटा। उस समय सिपाहियों ने उसे देश-निकाले की आज्ञा का पर्वाना दिया। पर्वाना पाकर वह उल्टे पैरों राज-द्वार से जंगल की ओर चला गया।

राजकुमार घोड़ा बढ़ाता हुआ चला जा रहा था कि उसे कुछ दूरी पर चार बुढ़िया सामने मार्ग में बैठी हुई दिखाई दीं। उसी समय अनायास राजकुमार का चाबुक गिर गया। उसे उठाने के लिए वह घोड़े पर से उतरा और फिर सवार होकर आगे बढ़ा। बुढ़ियों ने समझा कि इस पथिक ने घोड़े से उतरकर हम लोगों का अभिवादन किया है। इसलिए जब वह उनके पास पहुंचा तब उन्होंने उससे पूछा—"यात्री ! सच बताओ, तुमने हम लोगों में से किसको घोड़े से उतरकर प्रणाम किया था ?"

राजकुमार बोला कि तुम सबमें जो बड़ी है, मैंने उसी को प्रणाम किया था। उन्होंने कहा कि तुम्हारा यह उत्तर ठीक नहीं है। हम सब समान आयु की हैं। अपने-अपने स्थान पर सब बड़ी हैं। तुमको किसी एक को बतलाना चाहिए।

राजकुमार ने पहले उनका नाम पूछा।

एक बुढ़िया ने कहा—"मेरा नाम भूखमाई।"

राजकुमार ने कहा—"तुम्हारी एक स्थिति नहीं है। तुम्हारा कोई मुख्य उद्देश्य या लक्ष्य भी नहीं है। किसी की भूख जैसे अच्छे भोजनों से शान्त होती है, वैसे ही रूखे-सूखे टुकड़ों से भी शान्त हो जाती है। इसलिए मैंने तुमको प्रणाम नहीं किया।"

दूसरी ने कहा—"मेरा नाम प्यासमाई है।"

राजकुमार ने जवाब दिया—"जो हाल भूखमाई का है, वही तुम्हारा भी है। तुम्हारी शान्ति जैसे गंगाजल से हो सकती है वैसे ही पोखरे के गन्दे जल से भी हो सकती है। इसलिए मैंने तुमको भी प्रणाम नहीं किया।"

तीसरी बोली—"मेरा नाम नींदमाई है।"

राजकुमार ने कहा—"तुम्हारा प्रभाव या स्वभाव भी उक्त दोनों

की तरह लक्ष्यहीन है। पुष्पों की शैया पर जैसे नींद आती है, वैसे ही खेत के ढेलों पर भी आती है। इसलिए मैंने तुमको भी प्रणाम नहीं किया।"

अन्त में चौथी बुढ़िया ने कहा—"मेरा नाम आसमाई है।" तब राजकुमार बोला—"जैसे ये तीनों मनुष्य को विकल कर देने वाली हैं, वैसे ही तुम उसकी विकलता को नाश कर उसे शान्ति देनेवाली हो। इसलिए मैंने तुम्हीं को प्रणाम किया है।"

इससे प्रसन्न होकर आसमाई ने राजकुमार को चार कौड़ियां देकर आशीर्वाद दिया कि "जब तक ये कौड़ियां तुम्हारे पास रहेंगी, तब तक कोई भी तुमसे युद्ध में या जुए में न जीत सकेगा। तुम जिस काम में हाथ लगाओगे, उसी में तुमको सिद्धि प्राप्त होगी। तुम्हारी जो इच्छा होगी या यत्न करते हुए तुम जिस वस्तु की प्राप्ति की आशा करोगे, वही तुमको प्राप्त होगी।" यह सुनकर राजकुमार वहां से चल दिया।

राजकुमार चलता-चलता कुछ दिनों के बाद एक राजा के नगर में पहुंचा। उस राजा को जुआ खेलने का व्यसन था। इस कारण उसके नौकर-चाकर, प्रजा-परिजन सभी को जुआ खेलने का अभ्यास पड़ गया था। राजा के कपड़े धोनेवाला धोबी भी जुआरी था। वह नदी के जिस घाट पर कपड़े धो रहा था, उसी घाट पर राजकुमार अपने घोड़े को नहलाने गया। धोबी उससे बोला—"यात्री! पहले मेरे साथ दो हाथ खेल लो। जीत जाओ तो घोड़े को पानी पिलाकर चले जाना और राजा के सब कपड़े जीत में ले लेना और जो हार जाओ तो घोड़ा देकर चले जाना। फिर मैं इसे पानी पिलाता रहूंगा।"

राजकुमार को तो आसमाई के वरदान का बल था। वह घोड़े की बाग थामकर खेलने बैठ गया। थोड़ी ही देर में राजकुमार ने राजा के सब कपड़े जीत लिये। उसने सब कपड़े तो न लिये, पर घोड़े को पानी पिलाकर वह चला गया।

धोबी शाम को जब महल में गया तब उसने राजा से कहा कि एक ऐसा खिलाड़ी यात्री इस नगर में आया है, जसा आज तक मैंने न देखा, न सुना। कोई उससे जुए में जीत ही नहीं सकता' यह सुनकर राजा ने

उस यात्री के साथ जुआ खेलने की इच्छा प्रकट की। दूसरे दिन धोवी राजकुमार को राजा के पास लिवा ले गया। दोनों खेलने लगे। थोड़ी ही देर में राजकुमार ने राजा का राज-पाट सब जीत लिया। राजा ने हार स्वीकार कर ली। तब अपने मन्त्री, मित्र मुसाहब सबको इकट्ठा करके राजा ने सलाह ली कि अब क्या करना चाहिए ? किसी ने कहा कि उसे मार डालना उचित है। किसी ने कहा कि राज्य का एक अंश देकर उसे राज़ी कर लेना चाहिए। राजा के पिता के समय का एक पुराना मंत्री था। वह प्रायः घर में रहता था। उसने जब यह समाचार सुना तब वह विना वुलाये ही दरबार में गया। राजा ने एकान्त में बैठकर उसका मत लिया। वृद्ध ने कहा कि विजयी यात्री को अपनी वेटी व्याह दीजिए। वह आपका लड़का हो जायगा। तब आप ही राज्य पर दावा न करेगा। यदि वह रह जायगा और योग्य होगा तो उसे प्रजा आपका उत्तराधिकारी मान लेगी। यदि अयोग्य होगा, तो जैसा होगा वैसा व्यवहार उसके साथ किया जायगा।

राजा ने वृद्ध की बात मानकर राजकुमार को अपनी वेटी व्याह दी। राजकुमार कोई साधारण मनुष्य तो था नहीं। वह भी राजा का लड़का था। उसके आचरण से राजा को बड़ी प्रसन्नता हुई। राजा ने सलाह देने वाले वृद्ध को वहुत इनाम दिया। विवाह हो जाने के बाद राजकुमार को अलग महल में डेरा दिया गया। राजा की कन्या भी अपने पति के साथ उस महल में रहने लगी। वह वड़ी ही सदाचारिणी और विनयशीला थी। उस घर में सास-ननदें तो कोई थीं नहीं, जिनकी आज्ञा का वह पालन करती। इस कारण उसने कपड़े की गुड़ियां वनाकर रख लीं। जब वह शृङ्गार करके निश्चिन्त होती, तब ही उन गुड़ियों को सास-ननद मानकर उनके पैर पड़ती और आंचल पसार कर उनका आशीर्वाद लेने के बाद पति के समीप जाती थी।

एक दिन राजकुमार ने उसे गुड़ियों के पैर पड़ते देख लिया। उसने पूछा कि तुम क्या करती हो ? राजकुमारी ने उत्तर दिया कि मैं स्त्री-

धर्म का निर्वाह करती हूं। यदि मैं आपके घर में होती तो नित्य सास-ननद के पैर पड़ती और उनसे आशीर्वाद लेती। परन्तु यहां सास-ननद कोई नहीं है, इसलिए मैं इन गुड़ियों को सास-ननद मानकर अपना धर्म-निर्वाह करती हूं। यह सुनकर राजकुमार ने कहा कि यदि ऐसी बात है तो गुड़ियों के पैर पड़ने की क्या आवश्यकता है? तुम्हारे परिवार में तो सभी हैं। यदि तुम्हारी यही इच्छा है तो अपने घर चलो। राजकुमारी तैयार हो गयी। राजा को जब यह समाचार मिला तब उन्होंने उनकी यात्रा का सब प्रबन्ध करके बेटी को विदा कर दिया। राजकुमार नई बहू लेकर, भीड़-भाड़ के साथ कुछ दिनों में अपने पिता की राजधानी के पास पहुंचा। इधर जिस दिन से राजकुमार चला गया था, उसी दिन से राजा-रानी दोनों उसके बिछोह में रोते-रोते अन्धे हो गए थे। राजकुमार की सेना देखकर लोगों ने राजा को सूचना दी कि कोई बड़ा राजा चढ़ आया है। राजा गले में अंगोछी डालकर उससे मिलने के लिए तैयार हो गया। इसी समय राजकुमार ने महल के द्वार पर आकर राजा को अपने आने की सूचना दी। राजकुमार के आने की सूचना पाकर राजा-रानी प्रसन्न हो गये। उन्होंने कुलाचार के अनुसार पहले अपनी बहू को महल में बुलाया। महल में आकर बहू ने सास के पैर छुए। सास ने आशीर्वाद दिया। कुछ दिन बाद उस राज्य-कन्या के गर्भ से एक अति सुन्दर बालक उत्पन्न हुआ। इसी बीच राजा-रानी की दृष्टि भी ठीक हो गई। इस प्रकार जिस परिवार में अंधकार छाया हुआ था, उस परिवार में आसमाई की कृपा से आनन्द की वर्षा होने लगी। कहते हैं, उस समय से लोक में आसमाई की पूजा का रिवाज चला।

१६/नृसिंह चतुर्दशी

बैशाख शुक्ल चतुर्दशी को भगवान् नृसिंह का जन्म हुआ था। इस-

लिए इस तिथि को नृसिंह चतुर्दशी कहते हैं। इस दिन प्रदोष व्यापी व्रत करना चाहिए। यदि दैवयोग से किसी दिन पूर्व विद्धा में शनि, स्वाति, सिद्ध और वणिज हो तो उसी दिन व्रत करना उत्तम होता है। इसे सब वर्णों के लोग कर सकते हैं। व्रती को मध्याह्न होने पर स्वच्छ जल में वैदिक मंत्रों से स्नान करना चाहिए। इसके पश्चात् नृसिंह का स्मरण करके गोवर से पृथ्वी को शुद्ध करना चाहिए। फिर एक कलश में तांबा और रत्न डालकर उस पर अष्ट दल कमल बनाना चाहिए। कलश पर चावलों से भरकर एक डलिया रखनी चाहिए और नृसिंह की स्वर्णमूर्ति को पंचामृत में स्नान कराकर उस पर स्थापन एवं पूजन करना चाहिए। ब्राह्मणों को पृथ्वी, गाय, तिल, स्वर्ण और वस्त्रों सहित शैया दान में देना चाहिए। जो मनुष्य इस प्रकार नृसिंह का व्रत करता है, उसके संपूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं।

कथा—नृसिंह भगवान् शक्ति और पराक्रम के प्रतीक हैं। विजय-नगर के परम पराक्रमी राजाओं ने नृसिंह की मूर्ति को ही अपना राज्य-चिह्न बनाया था। कहते हैं, प्राचीन काल में कश्यप नाम के एक राजा थे। उनकी पत्नी का नाम था दिति। दिति के दो पुत्र हुए—एक हिरण्याक्ष और दूसरा हिरण्यकशिपु। दोनों बड़े पराक्रमी थे। हिरण्याक्ष को बारह अवतार धारण कर भगवान् विष्णु ने मारा था। इससे क्रुद्ध होकर भाई की मृत्यु का बदला लेने के लिए हिरण्यकशिपु ने ब्रह्मा और महादेव की पूजा की। उसकी पूजा से प्रसन्न होकर ब्रह्मा ने उसे अजेय होने का वरदान दिया। ऐसा वरदान पाकर वह अत्याचार करने लगा। कालान्तर में उसकी पत्नी, जम्भासुर की कन्या कायुध के गर्भ से अनुह्लाद, संह्लाद, प्रह्लाद नामक छः पुत्र हुए। प्रह्लाद भगवान् का भक्त था। उसने अपने पिता का कहना नहीं माना। अपने पिता के अत्याचारों से दुःखी होकर उसने अपनी रक्षा के लिए भगवान् से प्रार्थना की। नृसिंह के रूप में भगवान् ने उसके पिता हिरण्यकशिपु का वध किया। पिता की मृत्यु के पश्चात् प्रह्लाद ने भगवान् से प्रार्थना की और पूछा

कि मेरी प्रीति आप में कैसे हुई ? नृसिंह भगवान ने कहा कि प्राचीन काल में तुम वासुदेव नाम के ब्राह्मण थे और एक वेश्या से प्रेम करते थे। वह वेश्या चतुर्दशी का व्रत करती थी। अतः उसी की संगति से तुमने भी मेरा व्रत किया और इसी कारण तुम्हारी प्रीति मुझमें हुई। जो मनुष्य मेरे व्रत को करते हैं वे पाप मुक्त होकर वैकुण्ठवास के अधिकारी हो जाते हैं।

२०/वट-सावित्री-व्रत

ज्येष्ठ कृष्ण तेरस को प्रातःकाल स्वच्छ दातून से दन्त-धावन कर उसी दिन दोपहर के बाद नदी या तालाब के विमल जल में तिल और आमले के कल्क से केशों को शुद्ध करके स्नान करे और जल से वट के मूल का सेवन करे। सूत-रोगिणी और ऋतु-मती स्त्री ब्राह्मण के द्वारा भी समग्र व्रत का यथाविधि कराने से उसी फल को प्राप्त होती है। यह व्रत त्रयोदशी से पूर्णिमा अथवा अमावश्या तक करना चाहिए।

वट के समीप जाकर जल का आचमन लेकर कहे—"ज्येष्ठ मास कृष्ण पक्ष त्रयोदशी अमुक वार में मेरे पुत्र और पति की आरोग्यता के लिए एवं जन्म-जन्मान्तर में भी विधवा न होऊं इसलिए सावित्री का व्रत करती हूं। वट के मूल में ब्रह्मा, मध्य में जनार्दन, अग्रभाग में शिव और समग्र में सावित्री हैं। हे वट ! अमृत के समान जल से मैं तुमको सींचती हूं।" ऐसा कहकर भक्तिपूर्वक एक सूत के डोरे से वट को बांधे और गंध, पुष्प तथा अक्षत से पूजन करके वट एवं सावित्री को नमस्कार कर प्रदक्षिणा करे और घर पर आकर हल्दी तथा चन्दन से घर की भीत पर वट का वृक्ष लिखे। हस्तलिखित वट के समीप बैठकर पूजन करे और संकल्पपूर्वक प्रार्थना करे—"तीन रात्रि तक लंघन करके, चौथे दिन चन्द्रमा को अर्घ देकर तथा सावित्री का पूजन कर, यथाशक्ति

मिष्ठान्न से मैं ब्राह्मणों को भोजन करा कर पुनः भोजन करूंगी। अतः हे सावित्री ! तू मेरे इस नियम को निर्विघ्न समाप्त कर।"

वट तथा सावित्री का पूजन करने के बाद सिन्दूर, कुमकुम और ताम्बूल आदि से प्रतिदिन सुवासिनी स्त्री का भी पूजन करे। पूजा के समाप्त हो जाने पर व्रत की सिद्धि के लिए ब्राह्मण को फल, वस्त्र और सौभाग्य द्रव्यों को बांस के पात्र में रखकर दे और प्रार्थना करे।

कथा—मद्रदेश में अश्वपति नामक एक ज्ञानी राजा था। समग्र वैभव होने पर भी राजा संतानहीन था। इस कारण दम्पति ने पुत्र के लिए सावित्री का जप किया। उस जप-यज्ञ के प्रभाव से स्वयं सावित्री ने शरीर धारण कर राजा और रानी को दर्शन दिया और आशीर्वाद देते हुए कहा कि तुम्हारे भाग्य में पुत्र तो नहीं है, पर दोनों कुलों की कीर्ति-पताका फहराने वाली एक कन्या अवश्य होगी। उसका नाम मेरे नाम पर रखना। यह कहकर सावित्री अन्तर्द्धान हो गई।

कुछ काल के उपरान्त रानी के गर्भ से साक्षात् सावित्री का जन्म हुआ और नाम भी उसका सावित्री ही रखा गया। जब सावित्री युवती हुई, तब राजा ने सावित्री से कहा कि अब तुम विवाह के योग्य हो गई हो। अपने योग्य वर तुम स्वयं खोज लो। मैं तुम्हारे साथ अपने वृद्ध सचिव को भेजता हूं। जब सावित्री वृद्ध सचिव के साथ वर खोजने गई हुई थी, तब एक दिन मद्राधिपति से मिलने अकस्मात नारदजी आये। इतने में ही वर पसन्द करके सावित्री भी आ गई और नारदजी को देखकर प्रणाम करने लगी। कन्या को देखकर नारदजी ने राजा से पूछा कि सावित्री के लिए अभी तक आपने वर ढूंढ़ा या नहीं ?

राजा ने कहा कि वर के लिए मैंने स्वयं सावित्री को भेजा था और वह वर को पसन्द करके ही आयी है। वह सुनकर नारदजी ने सावित्री से पूछा कि तुमने किस वर से विवाह करना निश्चय किया है ?

सावित्री हाथ जोड़कर अति नम्रता से बोली कि द्युमत्सेन का राज्य रुक्मी ने हरण कर लिया है, और वह अन्धा होकर रानी के साथ वन

में रहता है। उसके इकलौते पुत्र सत्यवान को ही मैंने अपना पति स्वीकार किया है।

सावित्री के वचन सुनकर अश्वपति से नारदजी ने कहा कि आपकी कन्या ने बड़ा परिश्रम किया है। सत्यवान वास्तव में बड़ा गुणवान और धर्मात्मा है। वह स्वयं सत्य बोलने वाला है और उसके माता-पिता भी सत्य ही बोलते हैं। इसी कारण उसका नाम सत्यवान रखा गया है। सत्यवान-रूपवान, धनवान, गुणवान और सब शास्त्रों में विशारद है। विशेष क्या कहूं, उसके तुल्य संसार में दूसरा कोई मनुष्य नहीं है। जिस प्रकार रत्नाकर रत्नों का कोष है, उसी प्रकार सत्यवान सद्‌गुणों का कोष है। परन्तु दुःख से कहना पड़ता है कि उसमें एक दोष भी बड़ा भारी है: अर्थात्, वह एक वर्ष की समाप्ति पर मर जायगा।

सत्यवान अल्पायु है, यह सुनते ही अश्वपति के विचार बालू की भीत की तरह नष्ट हो गए। उन्होंने सावित्री से कहा कि ऐसी दशा में तुमको और वर ढूंढ़ना चाहिए। क्षीणायु के साथ विवाह करना कदापि श्रेयस्कर नहीं है।

पिता के इस कथन को सुनकर सावित्री ने कहा कि अब मैं शारीरिक सम्बन्ध के लिए तो क्या, मन से भी अन्य पति की अभिलाषा नहीं करती। जिसको मैंने मन से स्वीकार कर लिया है, वही मेरा पति होगा। अन्य नहीं। कोई भी संकल्प प्रथम मन में आता है और फिर वाणी में। वाणी के पश्चात् करना ही शेष रहता है—चाहे वह शुभ हो या अशुभ। इसलिए अब में दूसरे को कैसे वरण कर सकती हूं ? राजा एक ही बार कहता है, पण्डित एक ही बार प्रतिज्ञा करते हैं, और कन्या तुमको दी, यह भी एक ही बार कहा जाता है। इसलिए चाहे वह दीर्घायु हो, चाहे अल्पायु, वही मेरा पति है। अब में अन्य पुरुष को तो क्या, तैंतीस कोटि देवताओं के अधिपति इन्द्र को भी अंगीकार न करूंगी। सावित्री के इस निश्चय को सुनकर नारदजी ने अश्वपति से कहा कि अब तुमको सावित्री का विवाह सत्यवान के ही साथ कर देना चाहिए। इतना कहकर नारद-

जी अपने स्थान को चले गये।

राजा अश्वपति विवाह का समस्त सामान तथा कन्या को लेकर वृद्ध सचिव समेत उसी वन में गये, जहां राजश्री से नष्ट, अपनी रानी और राजकुमार समेत एक वृक्ष के नीचे राजा द्युमत्सेन रहते थे। राजा ने उनके चरणों को छूकर अपना नाम बताया। द्युमत्सेन ने आगमन का कारण पूछा। तब अश्वपति बोले कि मेरी पुत्री सावित्री का आपके राजकुमार सत्यवान के साथ विवाह करने का विचार है। इसमें मेरी भी सम्मति है। इस कारण विवाहोचित सम्पूर्ण सामग्री लेकर मैं आपकी सेवा में आया हूं। राजा की बात सुनकर द्युमत्सेन कुछ उदास हो गये। उन्होंने कहा कि आप तो राज्याधीन राजा हैं और मैं राज्य-भ्रष्ट हूं। तिस पर रानी और हम दोनों अन्धे हैं, वन में रहते हैं, और सर्वथा निर्धन भी हैं। आपकी कन्या वनवास के दु:खों को न जानकर ही ऐसा कहती है।

अश्वपति ने कहा कि मेरी कन्या ने इन सब बातों पर विचार कर लिया है। वह स्पष्ट कहती है कि जहां मेरे श्वसुर और पतिदेव निवास करते में, वही मेरे लिए वैकुण्ठ है।

सावित्री का इस प्रकार दृढ़ प्रण सुनकर द्युमत्सेन ने विवाह स्वीकार कर लिया। शास्त्र-विहित विधि से सावित्री का विवाह करके अश्वपति तो अपनी राजधानी को चले गये और उधर सावित्री सत्यवान को पाकर सुखपूर्वक श्वसुर-गृह में रहने लगी।

नारदजी ने जो भविष्य कहा था, सावित्री उससे बेखबर नहीं थी। वह एक-एक दिन गिनती जाती थी। उसने जब पति का मरणकाल समीप आते देखा, तब तीन दिन प्रथम ही से वह उपवास करने लगी। तीसरे दिन उसने पितृदेवों का पूजन किया। वही दिन नारदजी का बतलाया हुआ दिन था। उस दिन जब सत्यवान नियमानुसार कुल्हाड़ी और टोकरी हाथ में लेकर वन को जाने के लिए तैयार हुआ, तब सावित्री भी अपने सास-ससुर की आज्ञा लेकर उनके साथ वन को चली गई।

वन में जाकर सत्यवान ने फल तोड़े। इसके वाद वह लकड़ी काटने के लिए वृक्ष पर चढ़ गया। वृक्ष के ऊपर ही सत्यवान के मस्तक में पीड़ा होने लगी। वह वृक्ष से उतरकर और सावित्री की जांघ पर अपना सिर रखकर लेट गया। थोड़ी देर के बाद सावित्री ने देखा कि अनेक दूतों के साथ हाथ में पाश लिए हुए यमराज सामने खड़े हैं। प्रथम तो यमराज ने सावित्री को ईश्वरीय नियम यथावत् कहकर सुनाया। तदनंतर वह सत्यवान के अंगुष्ठप्रमाण जीव को लेकर दक्षिण दिशा की ओर चले गये। सावित्री भी यमराज के पीछे चली। यमराज के पीछे-पीछे जब सावित्री बहुत दूर तक चली गई, तब यमराज ने उससे कहा—"हे पतिपरायणे! जहां तक मनुष्य, मनुष्य का साथ दे सकता है, वहां तक तुमने पति का साथ दिया। अब मनुष्य के कर्त्तव्य से आगे की बात है। अतः तुमको घर लौट जाना चाहिए।"

यह सुनकर सावित्री बोली—"यमराज! जहां मेरा पति जायगा, वहीं मुझे भी जाना चाहिए। यही सनातन धर्म है। पतिव्रत के प्रभाव के कारण आपके अनुग्रह से कोई भी मेरी गति को रोक नहीं सकता।"

सावित्री की धर्म और उपदेशमयी वाणी सुनकर यमराज ने उससे वर मांगने के लिए कहा।

यमराज की बात सुनकर सावित्री ने कहा कि मेरे श्वसुर वन में रहते हैं, और वे अन्धे हैं। अतः आपकी कृपा से उनको दिखाई देने लगे, यह वरदान चाहती हूं। यमराज ने 'तथास्तु' कहकर उसे लौट जाने की सलाह दी।

यमराज के इस कृपापूर्ण आशय को समझकर सावित्री बोली—"भगवान्! जहां मेरे पतिदेव जाते हों, वहां उनके पीछे-पीछे चलने में मुझको कोई कष्ट या श्रम नहीं हो सकता। एक तो पति-परायण होना मेरा कर्त्तव्य है, दूसरे आप धर्मराज हैं, परम सज्जन हैं, अतः सत्पुरुषों का समागम भी थोड़े पुण्य का फल नहीं है।"

सावित्री के ऐसे धर्म तथा श्रद्धा-युक्त वचन सुनकर यमराज ने पुनः कहा—"सावित्री! तुम्हारे वचनों को सुनकर मुझको बड़ी

प्रसन्नता हुई। इसलिए तुम चाहो तो एक वरदान मुझसे और भी मांग सकती हो।"

यह सुनकर सावित्री बोली—"बुद्धिमान द्युमत्सेन का राज्य चला गया है। वह उनको पुनः मिल जाय और उनको सदैव धर्म में प्रीति रहे। यही मेरी प्रार्थना है।"

यमराज ने 'तथास्तु' कहकर लौट जाने के लिए उससे प्रार्थना की, पर वह न मानी और उनके पीछे ही चलती रही। अन्त में उन्होंने उसे तीसरा वर देने की इच्छा प्रकट की। उस समय सावित्री ने पितृ-कुल की भलाई को लक्ष्य में रखते हुए सौ भाई होने का वरदान मांगा। यमराज ने इस पर भी 'तथास्तु' कहकर सावित्री को समझाया, परन्तु सावित्री अडिग रही।

सावित्री की पति-भक्ति और निष्ठा देखकर यमराज द्रवीभूत होकर बोले—"हे पतिव्रते! तुम ज्यों-ज्यों मनोनुकूल धर्मयुक्त अच्छे पदों से अलंकृत और गंभीर युक्तिपूर्ण भाषण करती हो, त्यों-त्यों तुममें मेरी उत्तम प्रीति बढ़ती जाती है। अतः तुम सत्यवान के जीवन को छोड़कर एक वर और भी मुझसे मांग सकती हो।

श्वसुर-कुल और पितृ-कुल का कल्याण हो चुकने के बाद अब अपनी भलाई का प्रश्न शेष था। परन्तु पति-परायण स्त्री को अपने पति की आयु-वृद्धि के अतिरिक्त और क्या मांगने की इच्छा हो सकती है, यह सोचकर सावित्री ने यमराज से सौ पुत्रों का वरदान मांगा। इस अंतिम वरदान को देते हुए यमराज ने सत्यवान को अपने पास से मुक्त करके सावित्री से कहा कि सत्यवान से तुमको अवश्य सौ पुत्र होंगे।

वरदान देकर यमराज अदृश्य हो गये। सावित्री वट-वृक्ष के पास आई। वट-वृक्ष के नीचे सत्यवान के मृत शरीर में जीव का संचार हुआ और वह उठकर बैठ गये। सावित्री ने उसे सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनाया और फिर वे दोनों आश्रम की ओर चले गये। सत्यवान के माता-पिता की आंखें खुल गयी थीं और वे पुत्र-वियोग से दुखी हो रहे थे। इतने में

सावित्री और सत्यवान भी आ पहुंचे। समस्त देश में सावित्री के अनुपम व्रत की बात फैल गई। राज्य के लोगों ने महाराज द्युमत्सेन को ले जाकर राजसिंहासन पर बिठाया। सावित्री के पिता राजा अश्वपति को भी यमराज के वरदान के अनुसार सौ पुत्र प्राप्त हुए। सावित्री और सत्यवान ने सत-पुत्र-युक्त होकर वर्षों तक राज किया और तब वे वैकुण्ठवासी हुए।

प्रत्येक सौभाग्यवती स्त्री को यह व्रत करना चाहिए।

२१/गंगा-दशहरा

जेष्ठ शुक्ल दशमी को गंगा-दशहरा कहते हैं। इस व्रत का विधान स्कन्द-पुराण में और गङ्गावतरण की कथा वाल्मीकि रामायण में लिखी है।

जेष्ठ शुक्ल दशमी सम्वत्सर का मुख है। इसमें स्नान और दान करना चाहिए। प्रथम तो गंगा-स्नान ही का माहात्म्य विशेष है। यह न हो सके तो किसी भी नदी में तिलोदक देने का विधान है। जेष्ठ शुक्ल दशमी को यदि सोमवार हो और हस्त नक्षत्र हो तो यह तिथि सब पापों को हरण करने वाली होती है। इस तिथि पर बुधवार के दिन हस्त नक्षत्र में गङ्गाजी भूतल पर अवतीर्ण हुई थीं। इसी कारण यह तिथि महान् पुण्य-पर्व मानी गई है। इसमें स्नान, दान और तर्पण करने से दश पापों का हरण होता है। इसी कारण इसको दशहरा कहते हैं।

कथा—अयोध्या के महाराज सगर के दो रानियां थीं। एक का नाम था केशिनी और दूसरी का सुमति। केशिनी के असमंजस नामक एक पुत्र और अंशुमान नामक एक पौत्र था। परन्तु सुमति के साठ हजार पुत्र थे। साठ हजार भाई राजा सगर के अश्वमेघ यज्ञ के घोड़े को ढूंढ़ने गये और कपिलदेवजी की शक्ति से वे सब भस्म हो गये। जब अंशुमान कपिलदेवजी के आश्रम पर गया, तब महात्मा गरुड़जी ने कहा कि

तुम्हारे साठ हजार चचा अपने पापाचरण के कारण कपिलदेवजी के शाप से भस्म हो गये हैं। यदि तुम उनकी मुक्ति चाहते हो तो स्वर्ग से गङ्गाजी को यहां लाओ। लौकिक जल इनका तरण-तारण नहीं कर सकता। अतः हिमवान् पर्वत की बड़ी कन्या गङ्गा के जल ही से इनकी क्रिया करनी चाहिए। इस समय तो घोड़े को ले जाकर पितामह के यज्ञ को समाप्त करो। तदनन्तर गङ्गाजी को इस लोक में लाने का प्रयत्न करो। अंशुमान घोड़े को लेकर सगर के यज्ञ-स्थान में पहुंचा और उसने पितामह से सारा समाचार कह सुनाया।

महाराज सगर का देहावसान होने पर मंत्रियों ने अंशुमान को अयोध्या की गद्दी पर बिठाया। राज पाकर अंशुमान ने अच्छा यश प्राप्त किया और ईश्वर की कृपा से इनका पुत्र दिलीप भी बड़ा प्रतापी हुआ। राजा अंशुमान पर्वत पर ही तप करने लगा। वह उसी स्थान पर पंचत्व को प्राप्त हुआ, परन्तु गङ्गा को न ला सका। कालान्तर में दिलीप भी अपने पुत्र को राज देकर स्वयं गंगाजी को लाने के उद्योग में तत्पर हुआ। किन्तु वह भी अपने उद्योग में विफल-मनोरथ हुआ।

दिलीप का पुत्र भगीरथ बड़ा ही प्रतापी और धर्मात्मा राजा था। वह चाहता था कि एक सन्तान हो जाय, तो मैं गंगाजी को लाने का प्रयत्न करूं। किन्तु जब प्रौढ़ावस्था प्राप्त होने तक कोई सन्तान न हुई, तब मन्त्रियों को राज का भार सौंपकर वह गंगाजी को लाने के लिए गोकर्ण तीर्थ में तपस्या करने लगा। इन्द्रियों को जीतकर पंचाग्नि ताप से तपना, ऊर्ध्वबाहु रहना और मास में एक बार आहार करना—इस प्रकार की घोर तपस्या करते हुए जब बहुत वर्ष बीत गये, तब सब देवताओं को साथ लेकर प्रजा के स्वामी ब्रह्माजी राजा भागीरथ के पास जाकर बोले कि हे राजन् ! तुमने अभूतपूर्व तप किया। इसलिए प्रसन्न होकर मैं तुमको वरदान देने आया हूं। तुम इच्छानुकूल वर मांग सकते हो।

राजा भगीरथ ने हाथ जोड़कर कहा कि हे नाथ ! यदि आप प्रसन्न हैं तो महाराज सगर के साठ हजार पुत्रों के उद्धार के लिए गंगाजी

को दीजिये । विना गङ्गाजी के उनकी मुक्ति होनी असम्भव है । इसके अतिरिक्त इक्ष्वाकुवंश में आजतक कोई राजा अपुत्रक नहीं रहा। इसलिए मुझको एक सन्तान का भी वरदान दीजिये ।

राजा की यह प्रार्थना सुनकर ब्रह्माजी ने उन्हें वरदान देते हुए कहा कि तुम्हारे कुल को उज्ज्वल करनेवाला एक पुत्र तुमको प्राप्त होगा और सगरात्मजों का उद्धार करनेवाली गङ्गाजी भी निस्सन्देह पृथ्वी पर आयेंगी। परन्तु महान् वेगवती गंगा को धारण करने की शक्ति शिवजी के सिवा और किसी में नहीं है। इसलिए तुम शिवजी को प्रसन्न करो। इतना कहकर देवताओं समेत ब्रह्माजी अपने लोक को चले गये और जाते समय गंगाजी को आज्ञा दे गये कि सगर की सन्तान को मुक्ति प्रदान करने के लिए तुमको भूलोक में जाना होगा।

ब्रह्मा की आज्ञा मानकर राजा भगीरथ पैर के अंगूठे पर खड़े होकर महादेवजी की आराधना करने लगे। एक वर्ष व्यतीत हो जाने पर महादेवजी ने वरदान दिया कि मैं अवश्य ही गंगा को शीश पर धारण करूंगा।

अस्तु, ज्यों ही गंगा की धारा ब्रह्मलोक से भूतक पर आई, त्योंही वह महादेवजी की जटाओं में विलीन हो गई। पुराणों का मत है कि जब भगवान ने वामन-रूप धरकर राजा बलि के यहां भिक्षा मांगी थी और तीन पग से सारी पृथ्वी को माप लिया था, उस समय ब्रह्माजी ने भगवान का चरणोदक अपने कमण्डल में भर लिया था। उसी का नाम गंगा था। इसी कारण गंगा को विष्णुपादोद्भवा भी कहते हैं।

ब्रह्मलोक से आते समय गंगा ने मन में अहंकार किया कि मैं महादेवजी की जटाओं को भेदन करके पाताल लोक को चली जाऊंगी। इससे महादेवजी ने अपने जटा-जूट को ऐसा फैलाया कि कितने ही वर्ष बीत जाने पर भी गंगा को जटाओं से बाहर निकलने का मार्ग न मिला। जब राजा भगीरथ ने पुनः शिवजी की आराधना की तब शिवजी ने प्रसन्न होकर हिमालय में ब्रह्मा के बनाये बिंदुसर तालाब में गंगा को

छोड़ दिया। उस समय गंगा की सात धाराएं हो गईं। उनमें से ह्लादिनी, पावनी और नलिनी ये तीन धाराएं तो बिंदुसर से पूर्व दिशा की ओर बहीं और सुचक्षु, सीता तथा सिंधु ये तीन नदियां पश्चिम दिशा को बहीं। सातवीं धारा राजा भगीरथ के पीछे-पीछे चली। महाराज भगीरथ दिव्य रथ पर चढ़कर आगे-आगे चले जाते थे और गंगा उनके रथ के पीछे-पीछे।

पुराणों में यह भी लिखा है कि गंगा ने राजा भगीरथ से कहा कि तुम रथ पर बैठकर जिस ओर चलोगे, उसी ओर मैं भी तुम्हारे पीछे-पीछे चलूंगी। इस प्रकार जब गंगा पृथ्वी-तल पर आई तब बड़ा कोलाहल हुआ। जहां-जहां से गंगाजी निकलती जाती थीं, वहां-वहां की भूमि अपूर्व शोभामयी होती जाती थी। महात्मा जह्नु गंगा के मार्ग में तपस्या कर रहे थे। जब गंगा उनके पास से निकलीं तब वह समूची गंगा को पान कर गये। देवताओं ने यह दृश्य देखकर जह्नु की बड़ी प्रशंसा की और उनसे कहा कि कृपा करके लोक कल्याण के लिए आप गंगा को छोड़ दीजिये। आज से यह आपकी कन्या कहलायेगी। जह्नु ने गंगा की धारा को अपने कान से निकाल दिया। तभी से गंगा का नाम जाह्नवी पड़ गया।

इस प्रकार गंगा अनेक स्थानों को पवित्र करती हुई उस स्थान पर पहुंची, जहां सगर के साठ हजार पुत्रों की भस्म का ढेर लगा हुआ था। गंगा के जल का स्पर्श होते ही वे सब मुक्ति को प्राप्त हो गये। उसी समय स्वर्गलोक के अधिपति ब्रह्माजी भी वहां प्रकट हुए। ब्रह्माजी अति प्रसन्न होकर भगीरथ से बोले कि हे राजन् ! तुम्हारे द्वारा सगर के साठ हजार पुत्रों का उद्धार हो गया। उसके लिये तुमने अपूर्व तप किया है, इसलिए तुम्हारा नाम अमर हो गया। तुम्हारे नाम पर गंगा का एक नाम भगीरथ भी होगा, जो सदैव तुम्हारा स्मरण कराता रहेगा। अब तुम अयोध्या में जाकर धर्म और नीतिपूर्वक प्रजा का पालन करो। यह कहकर ब्रह्माजी अपने लोक को सिधारे और राजा भगीरथ अयोध्या चले गये।

२२/निर्जला एकादशी

हिन्दू-जाति में कदाचित् सबसे अधिक प्रचलित एकादशीव्रत माना जाता है। प्रत्येक पक्ष की एकादशी को यह व्रत रखा जाता है। इस प्रकार साल में चौवीस दिन यह व्रत आता है। इन चौबीसों एकादशियों में ज्येष्ठ के शुक्ल पक्ष की एकादशी सर्वश्रेष्ठ फलदायक समझी जाती है, क्योंकि इस एक एकादशी का व्रत रखने से साल भर की एकादशी के व्रत का फल प्राप्त होता है। कहा जाता है कि एक बार विशालकाय भीमसेन ने व्यासजी के मुंह से प्रत्येक एकादशी को निराहार रहने का नियम सुनकर विनम्र भाव से कहा कि महाराज ! मेरे भाई अर्जुन आदि तो सब एकादशियों का व्रत रखते हैं, पर मुझसे भूखा नहीं रहा जाता, इसलिए मुझे तो कृपाकर एक ऐसा व्रत बता दीजिये, जिससे मैं एक ही दिन में पूरा फल पाऊं। व्यासजी ने कहा कि तुम ज्येष्ठ के शुक्ल पक्ष की एकादशी का व्रत रखो। इससे तुम्हारा सब एकादशियों को अन्न खाने का पाप दूर हो जायगा और साथ ही पूरे वर्ष की एकादशियों के व्रत का पुण्य-लाभ होगा। भीम ने इसी व्रत को किया। इसलिए इस एकादशी को भीमसेनी एकादशी भी कहते हैं। एकादशी के सूर्योदय से द्वादशी के सूर्योदय पर्यन्त जल तक ग्रहण करने की मनाही होने के कारण इसे निर्जला एकादशी भी कहते हैं।

निर्जला एकादशी का व्रत अत्यन्त संयम-साध्य है। ज्येष्ठ के महीने में दिन बहुत बड़े होते हैं और प्यास बहुत लगती है। ऐसी दशा में इस व्रत को निर्जल रखना सचमुच बड़ी साधना का काम है। बड़े कष्ट तथा सहनशक्ति से ही यह व्रत पूरा होता है। नियमपूर्वक व्रत करने के पश्चात् सामर्थ्य के अनुसार स्वर्ण और जलयुक्त कलश के दान का विधान है।

२३/रथ-यात्रा

आषाढ़ शुक्ल द्वितीया को रथ-यात्रा का उत्सव मनाया जाता है। इस दिन पुष्य नक्षत्र में सुभद्रा सहित भगवान के रथ की सवारी निकलती है। यों तो भारतवर्ष में सर्वत्र यह उत्सव मनाया जाता है, पर इस दिन जगन्नाथपुरी में विशेष धूमधाम रहती है। इसका जगन्नाथ-से विशेष संबंध है।

जगन्नाथपुरी उड़ीसा प्रान्त में समुद्र के किनारे स्थित है। यह स्थान भारतवर्ष के प्रधान चार धामों में से एक धाम समझा जाता है। यहां शंकराचार्य द्वारा स्थापित गोवर्धन पीठ भी है। यहां के सर्वस्व जगन्नाथजी हैं और उन्हीं के कारण इसका महत्व है। जगन्नाथ-जी के मंदिर के अतिरिक्त यहां अनेक सम्प्रदायों के मठ भी हैं। वैष्णव, शैव और शाक्त सभी यहां रहते हैं। रथ-यात्रा के दिन यहां बहुत भीड़ होती है। बड़ी-बड़ी दूर से लोग जगन्नाथजी का दर्शन करने आते हैं और अपना जन्म सफल करते हैं। जगन्नाथजी का रथ ४५ फुट ऊंचा, ३५ फुट लंबा और उतना ही चौड़ा है। उसमें ७ फुट व्यास के १६ पहिये लगे रहते हैं। बलभद्रजी का रथ ४४ फुट ऊंचा है और उसमें १४ पहिये रहते हैं। सुभद्राजी का रथ ४३ फुट ऊंचा है और उसमें १२ पहिये हैं। ये रथ प्रतिवर्ष नए बनाए जाते हैं। इन रथों को खींचने के लिए ४२०० मनुष्य रहते हैं। इनके अतिरिक्त भक्त नर-नारी भी रथ खींचते हैं। जनकपुरी में भगवान तीन दिन रहते हैं। वहां लक्ष्मीजी से उनकी भेंट होती है। इसके पश्चात् यहां से लौटकर भगवान अपने स्थान पर आसीन होते हैं।

२४/हरिशयनी एकादशी

आषाढ़ शुक्ल एकादशी को हरिशयनी एकादशी होती है। इसी

दिन भगवान् विष्णु क्षीर सागर में शयन करते हैं। पुराणों में यह भी लिखा है कि इस दिन से विष्णु भगवान चार मास तक बलि के द्वार पर प.ताल में रहते हैं और कार्तिक शुक्ल एकादशी को पीछे पधारते हैं। इसलिए इस एकादशी को हरिशयनी और कार्तिक वाली एकादशी को प्रबोधनी एकादशी कहते हैं। चूंकि इन चार महीनों में भगवान विष्णु क्षीर सागर में शयन करते हैं, इसलिए विवाह आदि कोई शुभ कार्य इन महीनों में नहीं किया जाता। आषाढ़ से कार्तिक तक चार मास 'चातुर्मास्य' कहलाते हैं। इन दिनों साधु एक ही स्थान पर रहकर तपस्या करते हैं।

ब्रह्मवैवर्त्त पुराण में हरिशयनी एकादशी का माहात्म्य लिखा है, जिससे ज्ञात होता है कि इस व्रत के करने से पाप नष्ट होते हैं और हृषीकेश भगवान प्रसन्न होते हैं। यह व्रत इच्छित वस्तु का दाता है। इसे पद्मा एकादशी भी कहते हैं। इसकी कथा इस प्रकार है—

कथा—एक बार नारदजी ने ब्रह्मा से हरिशयनी एकादशी का माहात्म्य पूछा। ब्रह्माजी ने कहा कि प्राचीन काल में मान्धाता नाम का एक चक्रवर्ती राजा था। उसके राज्य में सब प्रजा आनन्द से रहती थी। एक बार लगातार तीन वर्ष तक वर्षा नहीं हुई जिससे भयंकर अकाल पड़ गया। प्रजा व्याकुल हो उठी। उसने राजा से अपना कष्ट कहा। राजा अंगिरा ऋषि के पास गये। अंगिरा ऋषि ने कहा कि इस सत-युग में थोड़े से पाप का भी बड़ा भारी फल होता है। तुम्हारे राज्य में एक वृषल तपस्या कर रहा है। यदि वह न मारा गया तो दुर्भिक्ष शांत नहीं होगा। राजा ने उस तपस्वी को मारना उचित न समझकर ऋषि से अन्य उपाय पूछा। ऋषि ने कहा कि पद्मा नाम की एकादशी का व्रत करो। यह सुनकर राजा अपने राज्य में लौट आया और समस्त प्रजा के साथ उसने यह व्रत किया। व्रत के करने से जल वृष्टि हुई और सबका कष्ट दूर हो गया।

२५/व्यास-पूर्णिमा

आषाढ़ मास की पूर्णिमा 'व्यास पूर्णिमा' के नाम से प्रसिद्ध है। इस दिन व्यास अर्थात् गुरु की पूजा की जाती है। इसीलिए इसे 'गुरु-पूजा' भी कहते हैं। प्राचीनकाल में विद्यार्थियों से शुल्क नहीं लिया जाता था। वे वर्ष में इसी तिथि पर अपने गुरु की पूजा करते थे और उन्हें यथा-शक्ति दक्षिणा देते थे। यह पूजा केवल गुरु तक ही सीमित नहीं थी, वरन् पिता, माता, भाई आदि सब की पूजा की जाती थी।

गुरु-पूजा के दिन प्रातःकाल स्नान, पूजादि करके गुरु के पास जाना चाहिए और उन्हें उच्चासन पर बैठाकर पुष्पों की माला पहनाना चाहिए। इसके पश्चात् फल, फूल तथा द्रव्य उनके चरणों पर रखना चाहिए। फिर उनका आशीर्वाद प्राप्त करना चाहिए। इस प्रकार पूजा करने से विद्यार्थी को विद्या आती है और उसका हृदय शुद्ध तथा उसका जीवन कल्याणकारी होता है।

२६/नाग-पंचमी

श्रावण-शुक्ला पंचमी को नाग-पूजा होती है। इसलिए इस तिथि को नाग-पंचमी कहते हैं। इस दिन घर के दरवाजे के दोनों ओर गोबर से नाग की मूर्ति लिखी जाती है। इसके व्रत में चतुर्थी को केवल एक बार भोजन करे, और पंचमी को दिन भर उपवास करके शाम को भोजन करे। चांदी, सोना, काठ अथवा मिट्टी की कलम से हल्दी तथा चन्दन की स्याही बनाकर पांच फन वाले पांच नाग लिखे। पंचमी के दिन खीर, पंचामृत और कमल के पुष्प तथा धूप, दीप नैवेद्य आदि से विधिवत् नागों का पूजन करे। पूजन के पश्चात् ब्राह्मणों को लड्डू या खीर का भोजन कराएं। नागों में अनन्त, वासुकी, शेष, पद्म, कंवल,

कर्कोटक, अस्वतर, धृतराष्ट्र, शंखपाल, कालिया, तक्षक और पिंगल बारह नाग प्रसिद्ध हैं। इनमें से एक-एक नाग की एक-एक मास में पूजा करनी चाहिए। पूजा करनेवाले व्यास (पंडित) को नागपंचमी के दिन स्वर्ण और गौ का दान देना चाहिए। कहीं-कहीं चांदी या सोने के नाग को पान के पत्ते पर रखकर दान करने की विधि लिखी है। पंचमी के दिन नाग की पूजा करनेवाले को उस दिन पृथ्वी न खोदनी चाहिए।

कथा—एक किसान अपने परिवार-समेत मणिपुर नामक नगर में रहता था। उसके दो लड़के और एक कन्या थी। एक दिन जब वह अपने खेत में हल जोत रहा था, उसके हल की फन में बिधकर सांप के तीन बच्चे मर गये। बच्चों की माता नागिन ने पहले तो बहुत विलाप किया, फिर अपने बच्चों को मारनेवाले से बदला लेने का संकल्प किया। रात्रि के समय नागिन ने किसान, उसकी स्त्री और दोनों बच्चों को डस लिया, जिससे वे चारों मर गये। दूसरे दिन वह नागिन जब कन्या को डसने के लिये गई, तब कन्या ने डरकर उसके सामने दूध का कटोरा रख दिया और क्षमा-प्रार्थना करने लगी। वह दिन नागपंचमी का था। इसलिए नागिन ने प्रसन्न होकर लड़की से वर मांगने को कहा। लड़की ने यह वर मांगा कि मेरे माता-पिता और दोनों भाई पुनः जीवित हो जायं और जो आज के दिन नागों की पूजा करे, उसको कभी नाग के डसने की बाधा न हो। नागिन लड़की को वरदान देकर चली गई। कहते हैं, उसी दिन से लोक में नाग-पंचमी के पूजन का प्रचार हुआ।

२७/श्रावणी और रक्षा-बन्धन

श्रावण की पूर्णिमा के दिन दो त्योहार एकत्र हो जाते हैं—एक श्रावणी और दूसरा रक्षा-बन्धन। अनेक धर्म-ग्रन्थों का मत है कि श्रावणी को ब्रह्मचारी और द्विजों को चाहिए कि ग्राम के समीप अच्छे तालाब

या नदी के किनारे जाकर उपाध्याय (गुरु) की आज्ञानुसार शास्त्रोक्त-विधि से श्रावणी-कर्म अवश्य करें। प्रारम्भ में शरीर की शुद्धि के लिये दूध, दही, घी, गोवर और गोमूत्र, इन पांचों का पंचगव्य बनाकर पान करे, फिर शास्त्रविधि से तैयार की हुई वेदी में हविषान्न (खीर, घी, शक्कर, जौ आदि) का विधिवत् हवन करे। इसी को 'उपाकर्म' कहते हैं। तदनन्तर जल-प्रवाह के सामने जल में खड़े होकर तथा हाथ जोड़-कर सूर्य भगवान का ध्यान और स्तुति करे। फिर अरुन्धती-समेत सप्त ऋषियों का पूजन करके दधि तथा सत्तू की आहूतियां दे। इसको उत्सर्जन कहते हैं।

कथा—एक समय देवता और दैत्यों में लगातार बारह वर्ष तक घोर युद्ध होता रहा, जिसमें दैत्यों ने सम्पूर्ण देवताओं-समेत इन्द्र को विजय कर लिया। दैत्यों से पराजित इन्द्र ने अपने गुरु बृहस्पति से कहा कि इस समय न तो मैं यहां ठहरने में समर्थ हूँ और न मुझको भागने का अवसर है। अतः मुझे लड़कर प्राण देना अनिवार्य हो गया है। ऐसी बातें सुनकर इन्द्राणी बीच में ही बोल उठीं—"पतिदेव ! आप निर्भय रहें। मैं एक ऐसा उपाय करती हूँ, जिससे अवश्य ही आपकी विजय होगी।"

प्रातःकाल ही श्रावणी पूर्णिमा थी। इन्द्राणी ने ब्राह्मणों के द्वारा स्वस्ति-वाचन कराकर इन्द्र के दाहिने हाथ में रक्षा की पोटली बांध दी। रक्षा-बन्धन से सुरक्षित इन्द्र ने जब दैत्यों पर चढ़ाई की, तब दैत्यों को वह काल के समान देख पड़े, जिससे भयभीत होकर वे आप ही भाग गये।

बुद्धिमान मनुष्य श्रावण शुक्ला पूर्णिमा के दिन प्रथम तो स्नान करे, फिर देवता, पितर और सप्तऋषियों का तर्पण करे। दोपहर के बाद सूती और ऊनी वस्त्र लेकर उनमें चावल रखकर गांठ लगा दे और स्वर्ण के रंग के समान हल्दी या केशर में रंगकर उन्हें एक पात्र में रख दे। इसके पश्चात् घर को गोबर से लिपवाकर और चावलों का चौक

पुरवाकर उस पर घट की स्थापना करे। घट में अन्न भरा होना चाहिए। पीले वस्त्र में सूत के लच्छे से लिपटी हुई एक या अनेक चावल की पोटलियां रख दे। यजमान स्वयं पाटा अथवा चौकी पर बैठे और शास्त्रोक्त विधि से पुरोहित द्वारा घट का पूजन कराये। पूजन के पश्चात् उस पोटली को यजमान के हाथ में बांधे तथा परिवार के और लोगों के हाथ में भी बांधे। रक्षा-बन्धन के समय ब्राह्मण मन्त्र बोले। इस तिथि पर नया यज्ञोपवीत धारण करे। बहिन द्वारा भाई के हाथों में राखी बांधने की प्रथा भी इस तिथि पर प्रचलित है। ऐतिहासिक दृष्टि से भी इस प्रथा की पुष्टि होती है।

श्रावणी का पर्व हमारे लिए विशेष महत्वपूर्ण है। प्राचीन ग्रंथों के अध्ययन से पता चलता है कि उस समय ऋषि महर्षि, श्रावणी पूर्णिमा के दिन उपाकर्म कराकर पढ़ाना आरंभ करते थे और माघ कृष्ण में उत्सर्जन होकर पढ़ाई बन्द कर देते थे। बाद के शेष महीनों में अभ्यासित ज्ञान को अनुभव और क्रिया रूप में परिणत किया जाता था। इस प्रकार श्रावणी का दिन पढ़ाई का प्रथम दिन था।

२८/कजरी की नवमी

कजरी का त्योहार हिन्दू-मात्र में एक प्रसिद्ध त्योहार है। श्रावण शुक्ल पूर्णिमा को कजरी पूर्णिमा कहते हैं इसी को श्रावणी पूर्णिमा भी कहते हैं। इसी दिन श्रावणी-कर्म होता है और रक्षाबन्धन भी होता है किन्तु बुन्देलखण्ड की श्रावणी पूर्णिमा में कुछ विशेषता है और वह यह कि वहां श्रावणी पूर्णिमा को सन्ध्या के समय कजरी का जुलूस निकलता है। पूर्णिमा से एक सप्ताह पूर्व यानी श्रावण शुक्ल नवमी को कजरी बोई जाती है। सात दिन तक बराबर सन्ध्या को धूप और आरती हुआ करती है। गेहूं या जौ पानी में फुलाकर दोनों में बो देते हैं और

उनको ऐसी जगह रखते हैं जहां हवा न लगने पाये। हवा न लगने से कजरी का रंग पीला रहता है। कजरी के रंग का सगुन-असगुन भी माना जाता है। जिस नवमी को कजरी बोई जाती है, उसे कजरी की नवमी कहते हैं।

कजरी की नवमी को जिनके यहां कजरी बोई जाती है, लड़के वाली स्त्री व्रत रहती है। उसी दिन गांव की स्त्रियां किसी नियत स्थान पर कजरी बोने की मिट्टी लेने जाती हैं। वहां भी एक छोटा-सा मेला-जैसा हो जाता है। मिट्टी को घर में लाकर दोनों या खप्परों में भरती हैं। फिर जिस कोठे में कजरी को रखना होता है, उस कोठे में दीवार पर भगवती की प्रतिमा सूचक एक पुतली लिखी जाती है। उसी के समीप मढ़ी या मकान, लड़के समेत एक पलना, एक नेवले का बच्चा, एक स्त्री की आकृति हल्दी से लिखी जाती है। इसी अनगढ चित्रकारी को नवमी कहते हैं। इसी नवमी को पूजा करके स्त्रियां कजरी बोती हैं। तब फिर नवमी के व्रत के सम्बन्ध की कथा कहती हैं। कथा के बाद कजरी बोने का गीत गाया जाता है।

कथा—एक स्त्री जन्म-बन्ध्या थी। उसने एक ऐसे नेवले के बच्चे को पाला, जिसकी मां मर गई थी। स्त्री को बाल-बच्चा कुछ तो था ही नहीं, इसलिये वह नेवले का लड़के की तरह पालन-पोषण करती थी। दैवयोग से उस स्त्री को गर्भ रह गया और नौ महीने बाद एक सुन्दर बालक पैदा हुआ। स्त्री नेवले को अपने पुत्र का बड़ा भाई करके मानती थी।

श्रावण शुक्ल नवमी की बात है। स्त्री लड़के को पलने में लिटाकर जल भरने चली गयी। चलते समय उसने नेवले को भाई की रक्षा के लिए छोड़ दिया। नेवला लड़के के पलने के चारों ओर फेरा लगाता हुआ पहरा देने लगा। उसी समय एक सर्प पलने की ओर झपटा। नेवले ने उसे काटकर टुकड़े-टुकड़े कर दिये।

सर्प को मारकर नेवला माता को अपनी कृतज्ञता या बहादुरी

दिखलाने के लिए बाहर दौड़ा गया। उधर से मां सिर पर भरे हुए घड़े रक्खे चली आ रही थी। उसने नेवले के मुख में रक्त लगा देखकर समझा कि यह लड़के को मारकर भागा जा रहा है। इसलिए क्रोध में आकर उसने नेवले के ऊपर घड़ा पटक दिया। नेवला तत्क्षण मर गया।

स्त्री दौड़ी हुई घर के भीतर गई, तो देखती क्या है कि लड़का पालने में पड़ा खेल रहा है और उसके समीप एक बड़ा भयानक सर्प टुकड़े-टुकड़े पड़ा है। यह देखकर वह अपनी मूर्खता पर पछताने लगी। वह सारे दिन रोती रही। दोपहर बाद पड़ोस की स्त्रियां उसे नवमी की मिट्टी लाने के लिए बुलाने आईं। उसको रोते देखकर और उसका कार्य-कारण समझ कर उन्होंने कहा कि बीती बात पर पश्चात्ताप करने से कोई लाभ नहीं है। तूने अब तक खाना नहीं खाया। यह तेरा नवमी का व्रत हो गया। अब चलकर मिट्टी लाओ और जहां नवमी लिखी जाय, वहां इस घटना का चित्र लिखकर पूजा करो। हमलोग भी इस नेवले की कृतज्ञता को चिरस्मरण रखने के लिए प्रति नवमी को इसकी पूजा किया करेंगी। निदान उस स्त्री ने सब पड़ोसियों के साथ-साथ नवमी का पूजन किया। कहा जाता है उसी दिन से नवमी के व्रत की परिपाटी चली है। अब भी केवल पुत्रवती स्त्रियां नवमी का व्रत करती हैं। नवमी को भगवती की आराधना और पूजा भी होती है।

दूसरी कथा—एक स्त्री का नाम बारीबहू था—कजरियों की नवमी को उसने पड़ोसियों से पूछा कि आज क्या करना चाहिए। उन्होंने कहा कि आज व्रत रहना चाहिये, शाम को नवमी की पूजा करनी चाहिए और यथाशक्ति दान-पुण्य करना चाहिए। यह सुनकर वह घर आई और चादर ओढ़कर लेट रही। दोपहर को जब उसका पति आया और उसने पूछा कि आज रसोई क्यों नहीं बनाई तब वह बोली कि आज तो मैंने व्रत रखा है। उसके पति ने उससे भोजन आदि बनाने का आग्रह किया, पर वह टस-से-मस नहीं हुई। अन्त में पतिदेव स्त्री की नजर बचाकर कोठिला के भीतर छिप गये। अपने पति को गया हुआ जानकर

स्त्री उठी और बाजार से दो गन्ने लाकर उनको चूस गई। फिर उसने रोटियां बनाईं और घी लगाकर खाईं। थोड़ी देर बाद उसने सिमई बनाईं और घी शक्कर के साथ वह भी खाईं। इतने पर भी जब उसे संतोष न हुआ तब उसने खिचड़ी पकाई और घी डालकर वह भी खाई।

पेट-पूजा से निवृत्त होकर उसने नवमी की पूजा की तैयारी की। वह फूहड़ तो थी ही, नवमी लिखना जानती नहीं थी। इसलिए गोबर घोलकर उसने दीवार पर पोत दिया। इसके बाद स्नान करके उसने नवमी की बिढ़ई बनाई और तब पूजा करने बैठी। जैसे नवमी बनाई थी वैसे ही मनमानी पूजा करके वह बोली—"नवमी बाई बिढ़ई खायगी" ?

पुरुष ने कोठिला में से उत्तर दिया—"हूं।"

उसे इस पर आश्चर्य हुआ कि मेरी नवमी बोलती क्यों है ?

फिर उसने कहा—"नौ बासी नौ ताती नौ के चूरे खायगी" ?

कोठिला में से आवाज आई—"हूं।"

तब तो उसने गांव में जाकर स्त्रियों से कहा कि मेरी पूजा से प्रसन्न होकर मेरी नवमी बोलती है। यह सुनकर सब स्त्रियों को आश्चर्य हुआ। उन्होंने पूछा कि तुमने कैसी नवमी लिखी है, जो बोलती है ?

उसने उत्तर दिया कि नवमी लिखना तो मैं जानती ही नहीं थी। इसलिए मैंने गोबर से पोत दिया था।

गांव की स्त्रियों ने फूहड़ के कथनानुसार नवमी से वही प्रश्न किया —"नवमी बाई नौ बिढ़ई खायगी" ? पुरुष ने इस बार भी पहले-जैसा उत्तर दिया। इस पर स्त्रियों को बड़ी ईर्ष्या हुई कि हम लोग इतनी श्रद्धा-भक्ति से व्रत और पूजन करती हैं, फिर भी हमारी नवमी कभी बोलती ही नहीं और इस फूहड़ की नवमी बोलती है। यह बड़े आश्चर्य की बात है।

स्त्रियों के चले जाने पर फूहड़ ने बिढ़ई भी खाई। फिर वह चारपाई पर बिछौना बिछाकर लेट रही। सन्ध्या को पुरुष कोठिला से निकलकर खांसता-खखारता बाहर से घर में आया। उसने स्त्री को

पुकार कर कहा—"अरी ! किवाड़ तो खोल दे।"

उसने करवट बदलते हुए कहा—"मेरा तो जी अच्छा नहीं है। उठें तो कौन उठे।"

करवट बदलने में चारपाई चरमराई, तो वह बोली—"देखो मेरी पसलियां चरमरा रही हैं, मैं उठ नहीं सकती।"

तब पुरुष किसी तरह किवाड़ खोलकर भीतर आया। स्त्री ने पूछा—"तुम जिस गांव को जाने के लिए कहते थे, वहाँ तक गये ही नहीं क्या" ?

उसने कहा—"हां, ऐसी ही बात है। रास्ते में एक बड़ा सर्प मिल गया, इसी से लौट आया हूं।"

स्त्री ने पूछा—"सर्प कितना बड़ा था ?"

पुरुष ने कहा—"जितना बड़ा गन्ना होता है।"

"वह सरकता कैसे था ?"

"जैसे खिचड़ी में घी सरकता है।"

यह कहकर उसने उसका झोंटा पकड़कर उसे पीटना शुरू किया और उसे यहां तक ठोंका कि वह बेहोश हो गई। उसकी पुकार सुनकर पड़ोस की स्त्रियां दौड़ आईं। पुरुष निकलकर बाहर चला गया। स्त्रियों ने पूछा—"अरी ! हुआ क्या ?"

वह बोली—"क्या बताऊं, क्या हुआ ? नवमी की पूजा हुई और क्या हुआ ?"

२६/हल-षष्ठी या हरछट

भाद्र कृष्ण षष्ठी को यह व्रत होता है। इसी दिन कृष्ण के बड़े भाई बलराम का जन्म हुआ था। उनका प्रधान आयुध हल और मूसल था। इसलिए इसे हल-षष्ठी कहते हैं। पूर्वी जिलों में इसे 'ललई छठ' कहते हैं। यह पुत्र की कामना के लिए होता है। व्रत रहनेवाली स्त्रियां

उस दिन महुआ की दातौन करती हैं। अधिकतर पुत्रवती स्त्रियां ही यह व्रत करती हैं। हरछट के उपवास में हल द्वारा जोता-वोया हुआ अन्न या कोई फल नहीं खाया जाता। गाय का दूध-दही भी मना है। सिर्फ भैंस का दूध, दही या घी स्त्रियां काम में लाती हैं। प्रात:काल स्नान करके स्त्रियां भूमि लीपकर एक छोटा तालाब बनाती हैं, जिसमें झरवेरी, कांश यथा पलास की एक-एक डंठल बांधने से बनी हुई हरछट को गाड़-कर उसका पूजन करती हैं। पूजा में सतनजा (गेहूं, चना, जुआर, अर-हर, धान, मूंग और मक्का) चढ़ाकर सूखी धूलि, हरी कजरियां, होली की राख या चने का होरहा और होली की भुनी गेहूं की वाल भी चढ़ाती हैं। इसके अतिरिक्त कुछ गहना, हल्दी से रंगा हुआ कपड़ा आदि वस्तुओं को भी हरछट के आसपास रख देती हैं। पूजा के अन्त में भैंस के मक्खन का होम किया जाता है। तब कथा कही जाती है। यह श्रावण मास का अंतिम त्योहार है।

कथा—एक ग्वालिन गर्भवती थी। एक ओर तो उसका पेट दर्द कर रहा था, दूसरी ओर उसका दही-दूध बेचने को रक्खा था। उसने अपने मन मैं सोचा कि यदि बच्चा हो जायगा तो फिर दही-दूध न बिक सकेगा। इसलिये वह दही-दूध की मटकियां अपने सर पर रखकर घर से बाहर निकल गयी। चलते-चलते वह एक खेत के पास पहुंची। उसी जगह स्त्री के पेट में अधिक पीड़ा होने लगी। वह झरवेरी के झाड़ों की आड़ में बैठ गई और लड़का पैदा हो गया। उसने लड़के को कपड़े में लपेट कर उसी जगह रख दिया और फिर दही-दूध बेचने चली गई। उस दिन हरछट भी थी। उसका दूध गाय-भैंस का मिला हुआ था, परन्तु ग्वालिन ने अपने दही-दूध को केवल गाय का वतला कर गांव में बेच दिया।

जिस खेत की झाड़ी में ग्वालिन ने बच्चा छिपाया था उसमें एक किसान हल जोत रहा था। सहसा उसके बैल बिदक कर खेत की मेंड़ पर चढ़ गये। दैवात् हल की नोक लड़के के पेट में लग गई, उसका पेट

फट गया और वह मर गया। हलवाले को इस घटना पर बहुत दुःख हुआ, पर लाचारी थी। उसने झरबेरी के कांटों से लड़के के पेट में टांके लगा दिये और उसे यथास्थान पड़ा रहने दिया। इतने में ग्वालिन दूध-दही बेचकर वहां पहुंच गयी। उसने जो देखा तो अपने बालक को मरा पड़ा पाया। वह समझ गई कि यह मेरे पाप का परिणाम है। मैंने दूध-दही बेचने के लिए झूठी बातें कहकर सब व्रतवालियों का धर्म नष्ट किया, यह उसी की सजा है। अब मुझे जाकर अपना पाप प्रकट कर देना चाहिए। आगे भगवान की जो मरजी होगी सो होगा। यह निश्चय करके वह उसी गांव को फिर वापस चली गई, जहां से दूध बेचकर आई थी। उसने वहां गली-गली घूमकर कहना शुरू किया कि मेरा दही-दूध गाय-भैंस का मिला हुआ था।

यह सुनकर स्त्रियों ने उसे आशीर्वाद देने शुरू किये। अनेक स्त्रियों का आशीर्वाद लेकर जब वह फिर उस खेत पर गई, तब उसने देखा कि लड़का पलास की छाया में पड़ा खेल रहा है। उसी समय से उसने प्रण किया कि अब अपना पाप छिपाने के लिए झूठ कभी न बोलूंगी।

दूसरी कथा—देवरानी जेठानी दो स्त्रियां थीं। देवरानी का नाम था सलोनी और जेठानी का नाम था तारा। सलोनी जैसी सुन्दरी थी, वैसी ही सदाचारिणी, सुशीला और दयावान भी थी। परन्तु तारा ठीक उसके प्रतिकूल पूर्ण दुष्टा और दयाहीन थी।

एक बार दोनों ने हरछठ का व्रत किया। संध्या को दोनों भोजन बनाकर ठण्डा होने के लिए थालियां परोस आईं और आंगन में बैठकर एक-दूसरी की सिर की जूं देखने लगीं। उस दिन देवरानी ने खीर बनाई थी और जिठानी ने महेरी। दैवात् दोनों के घर में कुत्ते घुस पड़े और परोसी हुई थालियां खाने लगे। घरों के भीतर 'चप-चप' शब्द सुनकर वे अपने-अपने घरों में दौड़ी गईं। सलोनी ने देखा कि कुत्ता खीर खा रहा है। वह कुछ न बोली, बल्कि जो कुछ खीर बची-बचाई बनाने के बरतन में लगी थी, उसे भी उसने थाली में परोस कर कहा कि यह सब

भोजन तेरे हिस्से का है, अच्छी तरह खा ले। मुझे जो कुछ ईश्वर देगा सो देखा जायगा। उधर तारा ने घर में कुत्ते को देखकर हाथ में मूसल उठाया और कुत्ते को घर के भीतर छेंककर इतना मारा कि उसकी कमर टूट गई। कुत्ता अधमरा होकर किसी तरह जान लेकर भागा।

कुछ देर बाद दोनों कुत्ते आपस में मिले। तब एक ने दूसरे से पूछा —"कहो, क्या हाल है ?"

दूसरे ने कहा—"पहले तुम्हीं कहो। मेरा तो जो हाल है, वह देखते हो।"

तब पहला बोला—"भाई ! बड़ी नेक स्त्री थी। उसने मुझे खीर खाते देखकर कुछ नहीं कहा। मैंने भर पेट भोजन किया और आराम से चला आया। मेरी आत्मा उसे आशीर्वाद देती है। मैं तो भगवान से बार-बार यही मनाता हूं कि अब जो मरूं, तो उसी का पुत्र होकर आजन्म उसी की सेवा करूं और जैसे उसने आज मेरी आत्मा तृप्त की है, वैसे मैं भी जन्म भर उसकी आत्मा को सन्तोष देता रहूं।"

तब दूसरा बोला—"मेरी तो बुरी दशा हुई। पहले तो थाली में मुंह डालते दांत कोठले हो गये। परन्तु भूख के मारे फिर दो-चार निवाले चाटकर मैं भागने ही वाला था कि इतने में वह आ गई। उसने तो मार-मारकर मेरी कमर तोड़ दी। अब मैं ईश्वर से यह मनाता हूं कि अब की बार मर कर मैं उसका पुत्र होऊं तो उससे अपना पूरा बदला लूं। उसने मूसलों से मेरी कमर तोड़ी है, परन्तु मैं भीतरी मार से उसका दिल और कमर दोनों तोड़ दूं।

दैवात् दूसरा कुत्ता उसी दुख में मर गया और उसी स्त्री का पुत्र होकर जन्मा। दूसरी हरछट को जब घर-घर पूजा होती थी, तब वह लड़का मर गया। तारा को इससे बहुत दुःख हुआ। परन्तु मरने-जीने पर किसी का कुछ वश नहीं चलता, यह सोच कर उसने सन्तोष कर लिया। पर आगे तो यह नियम-सा हो गया कि हर साल उसके लड़का होता था और हर साल ठीक हरछट के दिन मर जाता था। ऐसी दशा में उस

शंका हुई कि इसका कोई विशेष कारण अवश्य है। इसी विचार में वह सो गई।

स्वप्न में उसी कुत्ते ने सामने आकर उससे कहा कि मैं ही तेरा पुत्र होकर मर-मर जाता हूं। तूने जो मेरे प्रति दुष्टता की थी, अब मैं उसी का वदला तुझसे ले रहा हूं।

स्त्री ने उससे पूछा कि अब जिससे तू राजी हो, सो कह। मैं वही करूंगी।

कुत्ते ने उत्तर दिया कि अब से हरछट के व्रत में हल का जोता-बोया अन्न या फल न खाना। गाय का दूध-मठा न खाना। यदि तू होली की भूनी बाल, होली की धूलि इत्यादि वस्तुएं हरछट की पूजा में चढ़ायेगी तो मैं तेरे यहां रहूंगा, अन्यथा नहीं। तेरी पूजा के समय तारागण छिटकें, तब तू समझना कि अब रहूंगा। तारा ने ऐसा ही किया और तब से उसके लड़के जीने लगे।

३०/जन्माष्टमी

भाद्र कृष्ण अष्टमी को श्रीकृष्ण-अष्टमी कहते हैं। यह दिन श्रीकृष्ण भगवान का जन्म-दिवस माना जाता है। इस तिथि की रात्रि में रोहिणी नक्षत्र हो, तो कृष्ण-जयन्ती होती है। यदि रोहिणी नक्षत्र का अभाव हो, तो केवल जन्माष्टमी व्रत का ही योग होता है। अष्टमी के दिन रात्रि में गीत तथा बाजों के निर्घोष से जागरण करे और भगवान श्रीकृष्ण की जन्म-सम्बन्धिनी कथा सुने तथा सुनावे। तदनन्तर नवमी को पारण करने के पूर्व ब्राह्मणों को भोजन तथा दक्षिणा से सन्तुष्ट करें। यहां श्रीकृष्ण जन्म की वह कथा दी जाती है जो लोक में प्रसिद्ध है—

कथा—सत्युग में केदार नाम का एक राजा बड़ा तेजस्वी हो गया है। वह आयु के तीसरे भाग में अपने पुत्र को राज देकर तपोवन में

चला गया। इसी राजा की वृन्दा नाम की कन्या थी, जिसने आजन्म अविवाहिता रहकर यमुना के पवित्र घाट पर घोर तपश्चर्या करनी आरम्भ की। जब उसकी तपश्चर्या पराकाष्ठा को पहुंची, तब भगवान ने प्रकट होकर कहा—"वर मांग।"

कन्या ने हाथ जोड़कर प्रार्थना की कि यदि आप मेरी सेवा से प्रसन्न हुए हैं तो कृपया मेरा पति होना स्वीकार करें।

भगवान ने उसकी प्रार्थना स्वीकार की और उसे वे अपने साथ ही ले गये। ब्रज के जिस वन में राजकुमारी ने तप किया था, उसका नाम वृन्दावन पड़ गया।

मधु नामक एक दैत्य ने यमुना के दक्षिण तट पर एक नगर बसाया था जिसका नाम मधुपुरी था। इसी मधुपुरी को आजकल मथुरा कहते हैं। श्रीरामावतार के समय शत्रुघ्नजी ने इसी मधु दैत्य को परास्त करके मधुपुरी (मथुरा) पर अधिकार प्राप्त किया था। यह मधुपुरी द्वापर युग में शूरसेन देश की राजधानी हो गई और इसमें क्रमशः यादव, अन्धक, भोज आदि अनेक वंशों ने राज किया।

द्वापर युग के अन्त में मथुरा में भोजवंशीय राजा उग्रसेन राज करता था। उसके पुत्र का नाम था कंस। कंस ने उसे गद्दी से उतार राजकाज अपने हाथ में ले लिया था। उसकी एक बहन थी, जिसका नाम देवकी था। देवकी का विवाह वसुदेव नामक एक यादव-वंशी सरदार के साथ हुआ था।

एक दिन जब कंस अपनी बहन देवकी को उसके ससुराल पहुंचाने के लिए जा रहा था, तब अनायास मार्ग में यह आकाशवाणी हुई कि जिस देवकी को तू बड़े प्रेम से ले जा रहा है, उसी में तेरा काल बसता है। उसके गर्भ से उत्पन्न हुआ बालक तुझको मारेगा।

यह सुनते ही देवकी को ससुराल पहुंचाकर कंस ने म्यान से तलवार निकाली और वसुदेव को मारने पर उद्यत हुआ। उस समय देवकी ने उससे विनीत भाव से प्रार्थना की और कहा कि मेरे गर्भ से जो सन्तान

उत्पन्न होगी, उसे मैं तुम्हारे सामने ला रखूंगी। उसके साथ तुम चाहे जैसा व्यवहार कर सकते हो। इसके लिए बहनोई को मारना व्यर्थ है।

कंस देवकी की बात मानकर मथुरा लौट गया और उसने वसुदेव-देवकी दोनों को कठिन कारागार में कैद कर दिया।

जब देवकी के गर्भ से प्रथम बालक जन्मा और वह कंस के सामने लाकर रक्खा गया, तब उसने आठवें गर्भ की बात विचार कर उस बालक को क्षमा कर दिया। पर उसी समय नारदजी ने कंस के पास आकर कहा कि यह तुम बड़ी भूल कर रहे हो। क्या जाने यही वह आठवां गर्भ तुम्हारे नाश करने वाला हो।

नारदजी ने पृथ्वी पर आठ लकीरें खींचकर उनको पहले एक सिरे से दूसरे सिरे तक गिना और फिर उस सिरे से पहले सिरे तक गिनकर प्रमाणित किया कि प्रथम या अष्टम कोई भी अष्टम संख्या का वाचक हो सकता है। अतः शत्रु के अंकुर को तुरन्त ही खोंट देना चाहिए। ऐसा न हो कि वह बड़ा होकर प्रबल हो जाय।

नारदजी की बात मानकर कंस ने फौरन उस बालक को मरवा डाला। उसके बाद देवकी के गर्भ से जितने बालक हुए, कंस सबको मरवाता गया। देवकी की सात सन्तानें मारे जाने के बाद जब आठवें गर्भ की बात कंस को मालूम हुई, तब उसने देवकी-वसुदेव दोनों को एक कारागार में कैद किया और पहरा भी लगा दिया।

जिस दिन श्रीकृष्ण भगवान का जन्म हुआ, उस दिन भादों के कृष्ण पक्ष की अष्टमी थी। रोहिणी नक्षत्र था। पृथ्वी-मण्डल पर सर्वत्र घोर अन्धकार छाया हुआ था और मूसलाधार पानी बरस रहा था। जिस कोठरी में देवकी-वसुदेव दोनों कैद थे, उसमें सहसा एक बड़ा भारी प्रकाश हुआ। उसी प्रकाश में देवकी-वसुदेव दोनों ने देखा कि शङ्ख, चक्र, गदा, पद्मयुक्त चतुर्भुज भगवान उनके सामने खड़े हैं। प्रभु की ऐसी कृपा देखकर देवकी-वसुदेव उनके चरणों पर गिर पड़े। तब श्रीकृष्ण भगवान ने उनसे कहा कि अब मैं नवजात बालक का स्वरूप

धारण कर लेता हूं; परन्तु हे वसुदेव! तुम इसी समय मुझे अपने मित्र नन्दजी के घर वृन्दावन में भेज दो और उनके यहां जो कन्या जन्मी है, उसे लाकर कंस को अर्पण कर दो। यद्यपि इस समय प्रकृति ने बड़ा भयानक रूप धारण कर रक्खा है, तथापि तुम किसी की चिन्ता न करो। मेरी कृपा से जागते हुए पहरे वाले सब सो जायंगे। बन्दीखाने के फाटक आप ही आप खुल जायेंगे और मार्ग में पड़ने वाली अथाह यमुना नदी भी तुमको मार्ग दे देगी।

नवजात शिशु-रूप श्रीकृष्ण भगवान को सूप में रखकर वसुदेव उसी समय बन्दीगृह से निकल पड़े और अथाह यमुना को पार कर अपने मित्र नन्द के घर जा पहुँचे। मित्र ने भी मित्र का कर्तव्य पालन किया। उन्होंने श्रीकृष्ण को अपनी स्त्री यशोदा के साथ सुला दिया और यशोदा के गर्भ से जन्मी हुई पुत्री चण्डिका को वसुदेव के सूप में रख दिया। उसे लेकर वसुदेव उसी समय मथुरा लौट आये और बन्दीगृह में अपने स्थान पर दाखिल हो गये। बन्दीखाने के सब किवाड़ ज्यों के त्यों बंद हो गये और उनमें ताले भी पड़ गये। पहरेवाले मोह-निद्रा से जागकर सावधानी से चौकसी करने लगे।

प्रातःकाल जब कंस ने सुना कि मेरी बहन के गर्भ से अब की बार कन्या जन्मी है, तब उसने उसी समय कन्या को मंगाकर एक धोबी को हुक्म दिया कि वह उसे पत्थर पर पटक कर मार डाले। अतः धोबी ज्योंही चण्डिका के पैर पकड़ कर उसे पछाड़ने लगा, त्योंही वह धोबी के दोनों हाथ लेती हुई आकाश में उड़ गई। वहां से उसने कहा कि मुझको मारने से कोई लाभ नहीं। कंस को मारने वाला तो वृन्दावन में जा पहुंचा है। यह कौतुक देखकर कंस अवाक् रह गया।

कंस कृष्ण को वृन्दावन में सुरक्षित जानकर बड़ा ही उद्विग्न हुआ और वह उनको मारने के लिए अनेक उपाय करने लगा। उसने उनका नाश करने के लिए समय-समय पर अनेक दैत्य और दानवियों को भेजा। उन सब ने आसुरी माया विस्तार कर कृष्ण भगवान् को मारना

चाहा; परन्तु परिणाम उल्टा हुआ। वे सभी मारे गये और कृष्णजी सकुशल गोकुल में रहकर रास-विलास करने लगे।

बड़े होने पर श्रीकृष्ण भगवान् ने मथुरा जाकर कंस को मारा; वसुदेव और देवकी को कैद से छुड़ाया और फिर गोपी-ग्वालों को विरह-विह्वल छोड़कर वह गोकुल से द्वारका में जा बसे।

भगवान् ने भाद्र कृष्ण अष्टमी को जन्म धारण करके दुष्टों का संहार किया था और भक्तों की रक्षा की थी। इसी से उस दिन श्रीकृष्ण-जन्म का उत्सव मनाया जाता है।

३१/गाजबीज की पूजा

भाद्र शुक्ल द्वितीया को अधिकांश गृहस्थों के घर बापू की पूजा होती है। यह बापू की पूजा वास्तव में कुल-देवता की पूजा है। इस पूजा में कच्ची रसोई बनाकर बापू देव को भोग लगाया जाता है। फिर सब उसी प्रसाद को पाते हैं। यह प्रसाद प्रायः उन्हीं लोगों को दिया जाता है, जो एक कुल-गोत्र के होते हैं।

दोपहर को बापू की पूजा के बाद (खासकर कायस्थ लोगों में) लड़के की मां दीवार में गाजबीज की रचना करती है। एक मढ़ी बनाकर उसमें एक बालक बिठाया जाता है और एक दूसरा बालक वृक्ष के नीचे खड़ा दिखलाया जाता है। मढ़ी के ऊपर गाज का गिरना और वृक्ष का गाज से बचना भी दिखाया जाता है। उसको गाजबीज की पूजा कहते हैं। पूजा के बाद कथा होती है। कथा इस प्रकार है—

कथा—एक समय बरसात के दिनों में भाद्र शुक्ल द्वितीया को एक राजा का लड़का शिकार खेलने जंगल में गया। उसी जंगल में एक गरीब ग्वालिन का लड़का गायें चराता था। दैवात बड़े जोर से पानी बरसने लगा। तब राजा का लड़का हाथी से उतर कर, जंगल की एक मढ़ी में चला गया। उसी समय मढ़ी पर गाज गिरी जिससे मढ़ी तो फट गई

पर राजा का लड़का बिल्कुल लापता हो गया।

जो गरीब लड़का गायें चराता था, उसकी माता नित्य एक रोटी गाय या बछिया को खिलाती थी या किसी भूखी कुमारी कन्या को दिया करती थी। वह लड़का जिस पेड़ के नीचे खड़ा था, उस पर गाज अवश्य गिरती, परन्तु माता की दी हुई रोटी उस पर इस तरह छा जाती थी कि गाज वृक्ष तक पहुंच ही नहीं सकती थी। कुछ देर में वर्षा बन्द हुई और लड़का आनन्द से अपने घर चला गया।

राजा के सिपाही कुंवर को खोजते हुए उसी जंगल में आये, जहां यह घटना हुई थी। वहां जिन लोगों ने यह सब हाल आंखों से देखा, उन्होंने कह सुनाया कि गरीब का लड़का तो बच गया, परन्तु राजा का लड़का मारा गया है। यह समाचार पाकर राजा के मन में बड़ा दुःख हुआ कि मैं इतना पुण्य धर्म करता हूं, फिर भी मेरा लड़का मर गया और जो गरीब स्त्री, एक रोटी रोजाना देती है, उसका लड़का केवल रोटी की बदौलत बच गया। इस चिन्ता में राजा मलिन-मन हो रहा था, तब राजा के गुरु ने आकर समझाया कि आप जो पुण्य-धर्म करते हैं, वह अभिमान पूर्वक करते हैं। इसीलिए वह क्षय होता है। परन्तु गरीब स्त्री जो कुछ करती है, श्रद्धापूर्वक करती है।

राजा ने गुरु के चरणों में दंडवत् करके संतोष किया और आगे के लिए अमूल्य शिक्षा लाभ की। उसने उसी समय आज्ञा दी कि अब से आज के दिन व्रत रहकर गाजबीज की पूजा की जाया करे। राजा-रानी ने खुद व्रत किया और पूजन किया। तभी से यह गाजबीज की पूजा चली है।

३२/हरतालिका व्रत

भाद्रपद मास के शुक्ल पक्ष की तीज हस्त नक्षत्र-युक्त होती है। उस

दिन व्रत करने से सम्पूर्ण फलों की प्राप्ति होती है। एक बार महादेव-जी ने पार्वती से उनके पूर्व जीवन की याद दिलाते हुए इस व्रत के माहात्म्य की जो कथा कही थी वह इस प्रकार है—

कथा—उत्तर दिशा में हिमालय नाम का पर्वत है। वहां गंगाजी के किनारे बाल्यावस्था में तुमने बड़ी कठिन तपस्या की थी। बारह वर्ष पर्यन्त अर्द्ध-मुखी (उलटे) टंगकर केवल धूम्रपान पर रहीं। चौबीस वर्ष तक सूखे पत्ते खाकर रहीं। माघ के महीने में जल में वास किया और वैशाख मास में पंचधूनी तपीं। श्रावण के महीने में निराहार रहकर बाहर वास किया। इस प्रकार तुमको कष्ट सहते देखकर तुम्हारे पिता को बड़ा दुख हुआ। उसी समय नारद मुनि तुम्हारे दर्शन के लिए वहां गये। तुम्हारे पिता हिमालय ने अर्घ्यपाद्यादि द्वारा विधिवत् पूजन करके नारद से हाथ जोड़कर प्रार्थना की—"हे मुनिवर! जिस प्रयोजन से आपका शुभागमन हुआ है, कृपाकर आज्ञा कीजिए?"

तब नारदजी बोले—"हे हिमवान्! मैं श्रीविष्णु भगवान् का भेजा हुआ आया हूं। वह आपकी कन्या के साथ विवाह करना चाहते हैं।

यह सुनकर हिमालय ने नम्रतापूर्वक उत्तर दिया—"यदि विष्णु भगवान् स्वयं मेरी कन्या के साथ विवाह करना चाहते हैं, तो इसमें मुझे कोई आपत्ति नहीं है।"

यह सुनकर नारदजी विष्णु-लोक में गये और विष्णु भगवान् से बोले कि मैंने हिमालय की पुत्री पार्वती के साथ आपका विवाह निश्चय किया है। आशा है, आप उसे स्वीकार करेंगे।

इधर नारदजी के चले जाने पर हिमालय ने तुमसे कहा कि मैंने श्रीविष्णु भगवान् के साथ तुम्हारा विवाह निश्चय किया है।

तुमको पिता का यह वचन बाण के समान लगा। उस समय तो तुम चुप रहीं, परन्तु पिता के पीठ फेरते ही अति दुःखी होकर तुम विलाप करने लगीं। तुमको अत्यन्त व्याकुल और विलाप करते हुए देख-कर एक सखी ने तुमसे तुम्हारे दुःख का कारण पूछा।

तुमने कहा कि मेरे पिता ने विष्णु के साथ मेरा विवाह करना निश्चय किया है, परन्तु मैं महादेवजी के साथ विवाह करना चाहती हूं, इसलिए अब मैं प्राण त्यागने के लिए उद्यत हूं। तू कोई उचित सहायता दे।

तब सखी बोली कि प्राण त्यागने की कोई आवश्यकता नहीं है। मैं तुमको ऐसे गहन वन में ले चलती हूं, जहां तुम्हारे पिताजी को तुम्हारा पता भी न मिलेगा।

ऐसी सलाह करके सखी तुमको घोर सघन वन में लिवा ले गई। जब हिमालय ने तुमको घर में न पाया, तब वह इधर-उधर खोज करने लगे, पर कहीं कुछ पता न चला। इससे हिमालय को बड़ी चिंता हो गई कि नारदजी से मैं इस लड़की के विवाह का वचन दे चुका हूं। यदि विष्णु भगवान ब्याहने आ गये, तो मैं क्या जवाब दूंगा। इसी चिन्ता और दुःख से व्याकुल होकर वह मूर्छित हो भूमि पर गिर पड़े। अपने राजा की यह दशा देखकर सब पर्वतों ने कारण पूछा। तब हिमालय राजा ने कहा कि मेरी कन्या को न जाने कौन चुरा ले गया है।

यह सुनते ही समस्त पर्वतगण जहां-तहां जंगलों में तुम्हारी खोज करने लगे।

इधर तुम सखी-समेत नदी-किनारे एक गुफा में प्रवेश करके मेरा भजन-पूजन करने लगी। भादों सुदी तीज को हस्त-नक्षत्र में तुमने बालू (रेत) का शिवलिंग स्थापित करके, निराहार व्रत करते हुए पूजन आरंभ किया था और रात्रि को गीतवाद्य सहित जागरण किया था। हे प्रिये! तुम्हारे व्रत के प्रभाव से मेरा आसन डिग उठा। जिस जगह तुम व्रत-पूजन कर रही थीं, उसी जगह मैं गया और मैंने तुमसे कहा कि मैं प्रसन्न हूं, वरदान मांगो।

तब तुमने कहा कि यदि आप प्रसन्न हैं, तो मुझे अपनी अर्द्धाङ्गिनी बनाना स्वीकार करें।

इस पर मैं तुम्हें वरदान देकर कैलाश चला गया।

सवेरा होते ही तुमने पूजन की सामग्री नदी में विसर्जन की, स्नान किया और सखी समेत पारण किया। हिमालय स्वयं तुमको खोजते हुए उस जगह आ पहुंचे। उन्होंने नदी के किनारे दो सुन्दर बालिकाओं को देखा और तुम्हारे पास जाकर रुदन करते हुए पूछा कि तुम इस घोर वन में कैसे आ पहुंची।

तब तुमने उत्तर दिया कि आपने मुझको विष्णु के साथ व्याहने की बात कही थी, इसी कारण मैं घर से भागकर यहां चली आई। यदि आप शिवजी के साथ मेरा विवाह करने का वचन दें तो मैं घर को चलूं, अन्यथा मैं इसी जगह रहूंगी।

इस पर हिमालय तुमको सब प्रकार से सन्तुष्ट करके घर लिवा लाये और फिर कालान्तर में उन्होंने विधिपूर्वक तुम्हारा विवाह मेरे साथ कर दिया। जिस व्रत को करने से तुमको यह सौभाग्य प्राप्त हुआ है, उसकी यही कथा है। अब यह भी जान लो कि इस व्रत को हर-तालिका क्यों कहते हैं। तुमको सखी हरण करके वन में लिवा ले गईं, तब तुमने व्रत किया था। इसलिए इसका (हरत-आलिका) हरतालिता नाम पड़ा। सौभाग्य चाहने वाली स्त्री को ही यह व्रत करना चाहिए। इसकी विधि यह है कि प्रथम घर को लीप-पोतकर स्वच्छ कर सुगंधि छिड़के, केले के वृक्ष पत्रादि के खम्भ आरोपित करके तोरण पताकाओं से मण्डप को सजाये, मण्डप की छत में सुन्दर वस्त्र लगाये। शंख, भेरी, मृदङ्ग आदि बाजे बजाये और सुन्दर मंगल गीत गाये। उक्त मण्डप में पार्वती समेत बालुका (रेत) का शिव-लिंग स्थापित करे। उसका षोडशो-पचार से पूजन करे। चंदन, अक्षत, धूप से पूजन करके ऋतु के अनु-कूल फलमूल का नैवेद्य अर्पण करे। रात्रि भर जागरण करे। पूजा करके और कथा सुनकर यथाशक्ति ब्राह्मणों को दक्षिणा दे। वस्त्र, स्वर्ण, गौ, जो कुछ बन पड़े, दान करे। यदि हो सके तो सौभाग्य-सूचक वस्तुएं भी दान करे। इस विधि से किया हुआ यह व्रत स्त्रियों को सौभाग्य देने और उनकी रक्षा करने वाला है। परन्तु जो स्त्री व्रत रखकर फिर मोह के वश हो

भोजन कर लेती है, वह सात जन्म पर्यन्त बांझ रहती है और जन्म-जमान्तर विधवा होती रहती है। जो स्त्री उपवास नहीं करती, कुछ दिन व्रत रहकर छोड़ देती है, वह घोर नरक में पड़ती है। पूजन के बाद सोने, चांदी के बर्तन में उत्तम भोजन पदार्थ रखकर ब्राह्मणों को दान करे, तब आप पारण करे। जो स्त्री इस विधि से तीज का व्रत करती है, वह तुम्हारे समान अचल सौभाग्य और सम्पूर्ण सुखों को प्राप्त कर अंत में मोक्ष पद लाभ करती है। यदि न कर सके तो इस कथा के सुनने से ही अश्वमेघ-यज्ञ का फल प्राप्त होता है।

३३/गणेश-चतुर्थी

भाद्रपद शुक्ल चतुर्थी को गणेश-चतुर्थी कहते हैं। प्रातःकाल स्नानादि नित्य-कर्म करके पूजन के समय प्रथम सोने, तांबे, मिट्टी अथवा गौ के गोबर की प्रतिमा बना ले। फिर कोरे घट में जल भरे और उसके मुख पर नवीन वस्त्र बिछाकर उस पर गणेशजी की प्रतिमा स्थापित करे। तब षोड़शोपचार से विधिवत् पूजन करे। पूजन के पूर्व गणेशजी का ध्यान करना चाहिए। तत्पश्चात् आवाहन, आसन, पाद्य, अर्घ्य आचमन, स्नान, वस्त्र, गन्ध और पुष्प आदि से पूजन करके पुनः अंगपूजा करनी चाहिए। अङ्ग-पूजा में पाद, जंघा, उरु, कटि, नाभि, उदर, स्तन, हृदय, कंठ, स्कंध, हाथ, मुख, ललाट, सिर और सर्वाङ्ग इत्यादि अंगों का पूजन करे तथा धूप, दीप, नैवेद्य, आचमन, तांबूल और दक्षिणा के पश्चात् आरती करे और नमस्कार करे। इस पूजा में इक्कीस लड्डू भी रखना चाहिए। उनमें से पांच तो गणेश-प्रतिमा के आगे और शेष ब्राह्मणों को देने के लिए रखे। जो ब्राह्मणों को देने हैं; दक्षिणा सहित श्रद्धापूर्वक ब्राह्मणों को दे। यह क्रिया चतुर्थी के मध्याह्न में करने की है। रात्रि में जब चन्द्रमा उदय हो जाय, तब चंद्रमा का यथा-विधि पूजन

करके अर्घ्य प्रदान करे। तदनंतर ब्राह्मणों को भोजन कराकर मौन होकर स्वयं लड्डुओं का भोजन करे। फिर वस्त्र से आच्छादित घट और दक्षिणा-सहित गणेश-मूर्ति को आचार्य को देते हुए गणेशजी का विसर्जन करे।

कथा—एक समय महादेवजी स्नान करने के लिए कैलास पर्वत से भोगावती पुरी को पधारे। पीछे से अभ्यंग-स्नान करते हुए पार्वती ने अपने शरीर के मल से एक पुतला बनाया और जल में डालकर उसको सजीव किया। मल से बने हुए उस पुत्र को पार्वती ने आज्ञा दी कि तुम मुद्गर लेकर द्वार पर बैठ जाओ। और कोई भी पुरुष भीतर न आने दो।

जब भोगावती से स्नान करके शिवजी वापस आये और पार्वती के पास भीतर जाने लगे, तब उक्त बालक ने उनको रोक दिया। इससे कुपित होकर महादेवजी ने बालक का सिर काट डाला और आप भीतर चले गये। पार्वती ने महादेव को कुपित देखकर विचार किया कदाचित् भोजन में विलम्ब हो जाने के कारण ही उन्हें क्रोध आ गया है। इसलिए उन्होंने तुरन्त भोजन तैयार करके दो थालों में परोस दिया और शिवजी को भोजन करने के लिए बुलाया। दो पात्रों में भोजन परोसा देखकर शिवजी ने पूछा कि यह दूसरा पात्र किसके लिए है? पार्वती ने गणेश का नाम बताया। यह सुनकर महादेवजी ने कहा कि मैंने तो उस बालक का सिर काट डाला है। महादेवजी की बात से पार्वतीजी अत्यन्त व्याकुल हो गयीं। उन्होंने शिवजी से उसे जिलाने की प्रार्थना की। पार्वती को प्रसन्न करने के लिए शिवजी ने एक हाथी के बच्चे का सिर काटकर बालक के धड़ से जोड़ दिया और उसे सजीव कर दिया। इस प्रकार पार्वती अपने गणेश को पाकर अत्यन्त प्रसन्न हुईं। उन्होंने पति और पुत्र दोनों को भोजन कराकर पीछे आप भी भोजन किया। यह घटना भाद्रपद शुक्ल चतुर्थी को हुई थी।

दूसरी कथा—एक समय शंकरजी कैलास छोड़कर पार्वती सहित नर्मदा के किनारे पहुंचे। वहां एक अत्यन्त रमणीक स्थान देखकर पार्वती

ने शिवजी से कहा कि यहां आपके साथ चौपड़ खेलने की मेरी इच्छा है। शिवजी ने कहा कि हम तुम तो खेलने वाले हुए, परन्तु हार-जीत का साक्षी भी तो होना चाहिए।

पार्वती ने पास में पड़े घास के तिनकों से मनुष्य की आकृति का पुतला बनाकर उसे सजीव कर दिया और उससे कहा—"बेटा ! हम दोनों पासा खेलते हैं। तुम हमारी जय-पराजय के साक्षी होकर खेल के अन्त में बतलाना कि हम दोनों में से किसकी जीत हुई ?"

खेल में पार्वती की तीन बार विजय हुई और शंकर तीनों बार हारे। परन्तु अन्त में जब बालक से पूछा गया तब उसने शिवजी की जीत और पार्वती की हार बताई। उसकी इस दुष्टता पर कुपित होकर पार्वतीजी ने उसे शाप दिया कि तूने सत्य बात के कहने में प्रमाद किया। इस कारण तू एक पैर से लंगड़ा होगा और सदैव यहां इस कीच में पड़ा रहकर दुःख पाता रहेगा।

माता के शाप को सुनकर बालक ने प्रार्थना की कि मैंने कुटिलता से ऐसा नहीं किया। केवल बालकपन से ऐसा किया है। अतः मैं सर्वथा क्षन्तव्य हूं। तब पार्वती ने दयालु होकर कहा कि जब इस नदी-तट पर नागकन्याएं गणेश-पूजन करने आयेंगी, तब तू उनके उपदेश से गणेश-व्रत करके मुझको प्राप्त करेगा। यह कहकर पार्वतीजी हिमालय की ओर चली गईं।

एक वर्ष व्यतीत होने पर नाग-कन्यायें गणेशजी का पूजन करने के लिए नर्मदा-तट पर गईं। उस समय श्रावण का महीना था। नागकन्याओं ने स्वयं गणेश-व्रत किया और उस समय बालक को भी पूजा की विधि बताई। नाग-कन्याओं के चले जाने पर जब उस बालक ने इक्कीस दिन पर्यन्त गणेश-व्रत किया, तब गणेशजी ने प्रगट होकर कहा कि मैं तुम्हारे व्रत से अत्यन्त संतुष्ट हुआ हूं। अतः जो इच्छा हो सो वर मांगो। यह सुनकर बालक ने कहा कि मेरे पांव में शक्ति आ जाय जिससे मैं कैलाश पर चला जाऊं और वहां माता-पिता मुझ पर प्रसन्न हो जायं। बस यही

वरदान मांगता हूं।

गणेशजी बालक की प्रार्थना सुनकर और 'तथास्तु' कहकर अन्त-र्द्धान हो गये। बालक शीघ्र ही कैलाश पर पहुंचकर शिवजी के चरणों पर जा गिरा। महादेवजी ने पूछा कि त्रिलोचन! तूने ऐसा क्या उपाय किया जिससे तू पार्वती के शाप से मुक्त होकर यहां तक पहुंचा? यदि इस प्रकार का कोई व्रत हो तो मुझे भी बतला जिसे करके मैं भी पार्वती को प्राप्त करूं, क्योंकि पार्वती उस दिन क्रुद्ध होकर चली गई। तब से आज तक मेरे समीप नहीं आई।

त्रिलोचन की बताई विधि से महादेवजी ने इक्कीस दिन तक गणेश-व्रत किया, जिससे पार्वती के अन्तःकरण में आपही शिवजी से मिलने की उत्कण्ठा हुई। अतः वे अपने पिता हिमालय से विमान का प्रबन्ध कराकर शीघ्र हो शिवजी से आ मिलीं। उन्होंने शिवजी से पूछा कि आपने क्या ऐसा उपाय किया, जिससे मुझको आपसे मिलने की प्रेरणा उत्पन्न हुई? तब शिवजी ने त्रिलोचन के कहे हुए व्रत को बतलाया।

अपने पुत्र षडानन (स्वामीकार्तिक) से मिलने के लिए जब पार्वती ने २१ दिन तक प्रतिदिन २१ दूर्वा, २१ पुष्प और २१ लड्डुओं से गणेश-पूजन किया, तब इक्कीसवें दिन स्वामीकार्तिक आप ही पार्वती से आ मिले। स्वामीकार्तिक ने भी जब माता के मुख से सुनकर यह व्रत किया, तब उन्होंने समस्त सेनानियों की प्रमुखता का महत्वपूर्ण पद पाया। यही व्रत स्वामीकार्तिक ने अपने मित्र विश्वामित्र को भी बताया। विश्वा-मित्र ने जब यह व्रत किया तब गणेशजी प्रकट हुए, और बोले कि वर मांगो। विश्वामित्र ने यह वर मांगा कि मैं इसी जन्म में इसी शरीर से ब्रह्मर्षि हो जाऊं। गणेशजी ने वरदान देकर उनकी इच्छा भी पूर्ण की।

३४/सिद्धि-विनायक-व्रत

सिद्धि-विनायक-व्रत गणेश-चतुर्थी को किया जाता है। पूजन के

आरम्भ में संकल्प करने के बाद गणेशजी की स्थापना, प्रतिष्ठा और ध्यान रखना चाहिए। ध्यान के पश्चात् आवाहन, आसन, अर्घ्य, पाद्य, मधुपर्क-आचमन, पंचामृत; स्नान शुद्धोदक स्नान, वस्त्र, यज्ञोपवीत, सिंदूर, भूषण और चन्दन आदि से पूजन कर पुन: अङ्ग-पूजन करे। तत्पश्चात्, गूगल, धूप, दीप, नैवेद्य, आचमन, फूल, ताम्बूल, भूषण और दूर्वा आदि अर्पण करके नमस्कार करे और २१ पुआ बनाकर गणेश-प्रतिमा के पास रक्खे। उनमें से १० पुआ ब्राह्मण को दे। एक गणेश-प्रतिमा के पास रहने दे और १० आप भोजन करे।

वैसे तो प्रत्येक मास के कृष्ण पक्ष की चतुर्थी को गणेश-व्रत होता है, परन्तु माघ, श्रावण, मार्गशीर्ष और भाद्रपद में गणेश-व्रत करने का विशेष माहात्म्य है। उस दिन प्रातःकाल सफेद तिलों के उबटन से स्नान करके मध्याह्न में गणेश-पूजन करना चाहिए। पहले एकदन्त, शूर्पकर्ण गजमुख, चतुर्भुज पाशांकुश धारण करने वाले गणेशजी का ध्यान करे। तदनन्तर पंचामृत, गन्ध, आवाहन और पाद्यादि करके दो लाल वस्त्रों का दान करना चाहिए। पुन: ताम्बूल पर्यन्य पूजन समाप्त करके २१ दूर्वाओं को हाथ में लेकर दो-दो दल दूर्वाओं से गणेश के एक-एक नाम का उच्चारण करे। पूजा के समय घी के बने हुए २१ मोदक गणेशजी के पास रखे। पूजन की समाप्ति पर १० मोदक ब्राह्मण को दे, १० अपने लिए रक्खे और एक प्रतिमा के पास रहने दे। गणेश-प्रतिमा को दक्षिणा समेत ब्राह्मणों को दान करे। नैमित्तिक पूजन करने के बाद नित्य पूजन भी करे और तत्पश्चात् ब्राह्मण को भोजन कराकर आप भोजन करे।

भादों मास की शुक्ल चतुर्थी में चन्द्र-दर्शन का निषेध है। लोक-प्रसिद्ध है कि चौथ का चांद देखने से झूठा कलंक लगता है। यदि दैवात् चौथ का चांद देख ले, तो सिद्ध-विनायक व्रत करने से दोष का परिहार होता है। इसकी कथा इस प्रकार है—

कथा—एक समय सनत्कुमारों से नन्दिकेश्वर ने कहा—किसी समय चौथ के चन्द्रमा के दर्शन करने से भगवान श्रीकृष्ण पर जो लांछन

लग गया था, वह इसी गणेश-व्रत के करने से नष्ट हुआ।

नन्दिकेश्वर के ऐसे वचन सुनकर सनत्कुमारों ने अत्यन्त आश्चर्य में होकर पूछा कि पूर्ण ब्रह्मा पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण को कब और कैसे कलंक लगा? कृपया इस इतिहास का वर्णन कर हमारा संदेह दूर कीजिए।

यह सुनकर नन्दिकेश्वर ने कहा कि राजा जरासन्ध के डर से श्रीकृष्ण भगवान समुद्र के बीच में पुरी बसाकर रहने लगे। इसी पुरी का नाम द्वारिकापुरी है। द्वारिकापुरी के निवासी सत्राजित यादव ने श्री सूर्य भगवान की आराधना की। जिससे प्रसन्न होकर सूर्य भगवान ने उसको नित्य आठ भार स्वर्ण देनेवाली स्यामन्तक नाम की एक मणि अपने गले से उतारकर दे दी। उस मणि को पाकर जब सत्राजित यादव समाज में गया तब भगवान श्रीकृष्ण ने उस मणि को प्राप्त करने की इच्छा की। परन्तु सत्राजित ने उस मणि को उन्हें न देकर उसे अपने भाई प्रसेनजित को दे दिया।

एक दिन प्रसेनजित घोड़े पर सवार होकर वन में शिकार खेलने चला गया। वहां एक सिंह ने उसे मारकर वह मणि उससे छीन ली, परन्तु जाम्बवान् नामक रीछराज ने उस सिंह को मारकर वह मणि छीन ली और मणि को लेकर वह अपने विवर में घुस गया।

जब कई दिन तक प्रसेनजित शिकार से वापस नहीं आया, तब सत्राजित को बड़ा दुःख हुआ। उसने सम्पूर्ण द्वारिकापुरी में यह बात प्रसिद्ध कर दी कि श्रीकृष्ण ने मेरे भाई को मारकर मणि ले ली है। इस लोकापवाद को मिटाने के लिए श्रीकृष्ण बहुत से आदमियों सहित वन में जाकर प्रसेनजित को खोजने लगे। उनको वन में इस घटना के स्पष्ट चिह्न मिले कि प्रसेनजित को एक सिंह ने मारा है और सिंह को एक रीछ ने मार डाला है। रीछ के पद-चिह्नों का अनुसरण करते हुए श्रीकृष्ण एक गुफा के द्वार पर जा पहुंचे। उस गुफा को रीछ के रहने का घर समझकर वह उसमें पैठ गये। गुफा के भीतर जाकर उन्होंने देखा कि जाम्बवान् का एक पुत्र और कन्या उस मणि से खेल रहे हैं।

श्रीकृष्ण को देखते ही जाम्बवान् ताल ठोंककर उठ खड़ा हुआ। श्रीकृष्ण ने भी उसको युद्ध के लिए ललकारा। दोनों में घोर युद्ध होने लगा। इधर श्रीकृष्ण के साथियों ने सात दिन तक उनकी राह देखी। जब वह न लौटे, तब उनको मारा गया समझकर अत्यन्त पश्चात्ताप करते हुए वे द्वारिकापुरी को लौट आये।

इक्कीस दिन तक युद्ध करने के पश्चात् जब जाम्बवान् श्रीकृष्ण को परास्त न कर सका तब उसके मन में यह धारणा उत्पन्न हुई कि यही वह अवतार है, जिसके लिए मुझको श्रीरामचन्द्रजी का वरदान हुआ था। ऐसा निश्चय करके जाम्बवान् ने अपनी कन्या जाम्बवती श्रीकृष्ण को ब्याह दी और वह मणि भी दहेज में दे दी। श्रीकृष्ण भगवान ने द्वारका में आकर स्यामन्तक मणि सत्राजित को दे दी, जिससे लज्जित होकर सत्राजित ने अपनी पुत्री सत्यभामा श्रीकृष्ण को ब्याह दी और जब वह मणि भी श्रीकृष्ण को देने लगा तब उन्होंने उसके लेने से इन्कार कर दिया।

कालान्तर में किसी आवश्यक कार्यवश जब श्रीकृष्ण इन्द्रप्रस्थ चले गये तब अक्रूर तथा ऋतुवर्मा की सलाह से शतधन्वा नामक यादव ने सत्राजित को मारकर स्यामन्तक मणि ले ली। सत्राजित के मारे जाने का समाचार पाकर श्रीकृष्ण तुरन्त इन्द्रप्रस्थ से द्वारिका आये और शतधन्वा को मारकर उससे मणि छीन लेने को तैयार हुए। उनके इस कार्य में बलरामजी भी योग देने पर सन्नद्ध हुए। यह समाचार पाकर शतधन्वा अक्रूर को मणि देकर द्वारिका से भागा, परन्तु थोड़ी ही दूर पर कृष्ण ने उसको पकड़कर मार डाला। फिर भी मणि उनके हाथ न लगी। इतने में बलरामजी भी वहां पहुंच गये। श्रीकृष्ण ने उनसे कहा कि मणि तो उनके पास नहीं मिली। परन्तु बलरामजी को विश्वास नहीं हुआ और वह रुष्ट होकर विदर्भ चले गये। द्वारिका लौटकर आने पर लोगों ने श्रीकृष्ण का बड़ा अपमान किया। सर्वसाधारण में यह अफवाह फैल गई कि श्रीकृष्ण ने लालच-वश अपने भाई को भी त्याग दिया।

श्रीकृष्ण एक दिन इसी चिन्ता में व्यस्त थे कि दैवात् नारदजी वहां आ गये और वह श्रीकृष्ण से बोले कि आपने भाद्रपद शुक्ला चतुर्थी के चन्द्रमा के दर्शन किये थे। इसी कारण यह लांछन आपको लगा है।

श्रीकृष्ण ने उनसे पूछा कि चौथ के चन्द्रमा को ऐसा क्या हो गया, जिसके कारण उसके दर्शन-मात्र से मनुष्य को कलंक लगता है।

नारदजी ने कहा कि एक समय ब्रह्मा ने चौथ को गणेश का व्रत किया था, जिससे गणेशजी प्रकट हो गये। ब्रह्मा ने गणेशजी से यह वरदान मांगा कि मुझको सृष्टि की रचना करने में मोह न हो। जब गणेशजी 'एवमस्तु' कह कर जाने लगे, तब उनके विकट रूप को देखकर चन्द्रमा उनका उपहास करने लगा। इससे अप्रसन्न होकर गणेशजी ने चन्द्रमा को शाप दिया कि आज से तुम्हारे मुख को कोई कभी नहीं देखेगा। यह कहकर गणेशजी तो अपने धाम को चले गए और शाप के कारण चन्द्रमा मानसरोवर की कुमुदिनियों में जाकर छिप गया। चन्द्रमा के बिना लोगों को कष्ट में देखकर तथा ब्रह्मा की आज्ञा पाकर सब देवताओं ने चन्द्रमा के निमित्त गणेशजी का व्रत किया। देवताओं के व्रत से प्रसन्न होकर गणेशजी ने वरदान दिया कि अब चन्द्रमा शाप मुक्त हो जायगा, परन्तु फिर भी वर्ष में एक दिन भाद्रपद शुक्ल चतुर्थी को जो भी मनुष्य चन्द्रमा का दर्शन करेगा, उसको चोरी आदि का झूठा कलंक अवश्य लगेगा। इसके विरुद्ध जो मनुष्य प्रत्येक द्वितीया को चन्द्रमा का दर्शन करता रहेगा, उसको लांछन नहीं लगेगा। कदाचित् नियमित दर्शन न करने वाला पुरुष चौथ के चन्द्रमा को देख भी ले, तो उसको मेरा चतुर्थी का सिद्धि-विनायक व्रत करना चाहिए। उससे उसके दोष की निवृत्ति हो जायगी।

यह सुनकर सब देवता अपने-अपने स्थान को चले गये और चन्द्रमा भी मानसरोवर से चन्द्रलोक में आ गया। अतः इसी चन्द्रमा के दर्शन के कारण आप पर यह व्यर्थ आरोप हुआ है।

३५/कपर्दि विनायक-व्रत

श्रावण मास की शुक्ल चतुर्थी से लगाकर भाद्रपद की शुक्ल चतुर्थी तक जो मनुष्य एक बार भोजन करके एक मास पर्यन्त कपर्दि गणेश का व्रत करता है, उसके सब काम सिद्ध होते हैं। पूजा की विधि प्रथम कहे हुए व्रतों के अनुसार है। इसमें विशेषता केवल इतनी है कि पूजन के पश्चात् २८ मुट्ठी चावल और कुछ मिठाई ब्रह्मचारी को दान करना चाहिए।

कथा—एक समय श्री महादेवजी पार्वती के साथ चौपड़ खेल रहे थे, जिसमें पार्वतीजी ने शिवजी के आयुधादि सम्पूर्ण पदार्थों को जीत लिया। प्रसन्नचित्त महादेव ने जीते हुए पदार्थों में से केवल गजचर्म वापस मांगा, परन्तु पार्वती ने नहीं दिया। महादेव के बहुत हास्यपूर्ण अनुनय-विनय पर भी जब पार्वती ने ध्यान नहीं दिया, तब वह क्रोध के आवेश में बोले—"पार्वती ! अब मैं इक्कीस दिन तक तुमसे नहीं बोलूंगा।"

ऐसा कहकर शिवजी किसी अन्य स्थान को चले गये। पार्वती महादेवजी को खोजती हुई किसी घने वन में चली गईं। वहां उन्होंने कुछ स्त्रियों को व्रत और पूजन करते देखा। पार्वती के पूछने पर उन्होंने बताया कि यह कपर्दि-विनायक का व्रत है। जिस प्रकार वे स्त्रियां व्रत कर रही थीं, उसी प्रकार पार्वती ने भी व्रत करना आरम्भ किया। उन्होंने केवल एक ही दिन व्रत किया था कि महादेवजी उसी स्थान पर आ गये। शिवजी ने पार्वती से पूछा—"प्रिये ! तुमने ऐसा कौन-सा व्रत किया जिसके कारण मुझ जैसे उदासीन का संकल्प भंग हो गया ?"

इस पर पार्वती ने शिवजी को कपर्दि-व्रत की विधि बताई। पुनः महादेव ने विष्णु को और विष्णु ने ब्रह्मा को, ब्रह्मा ने इंद्र को और इंद्र ने राजा विक्रमार्क को यह व्रत बताया। राजा विक्रमार्क इस व्रत के प्रभाव को सुनकर जब घर गया, तब उसने अपनी रानी से कपर्दि-व्रत के अप्रतिभ प्रभाव का वर्णन किया। भावी दुःख के कारण रानी ने राजा के इस

कथन पर विश्वास नहीं किया, वरन व्रत की बहुत कुछ निंदा की, जिससे रानी के समस्त शरीर में कोढ़ हो गया। राजा ने उसी समय रानी से कहा तुम शीघ्र ही यहां से चली जाओ, नहीं तो मेरा संपूर्ण राज भ्रष्ट हो जायगा।

तब रानी राजमहल से निकलकर जंगल में ऋषि-मुनियों के आश्रम में चली गई और वहां ऋषि-मुनियों की सेवा करने लगी। जब सेवा करते-करते रानी को बहुत दिन हो गये, तब सब कहने लगे—"रानी! तुमने कर्पादि-विनायक का अपमान किया है। अतः जब तक गणेशजी की पूजा न करोगी, तब तक तुम्हारा नीरोग होना कठिन है।"

महर्षियों के ऐसे वचन सुनकर रानी ने गणेश-व्रत करना आरंभ किया और व्रत को एक मास पूरा होते-होते रानी का शरीर दिव्य कंचन के समान नीरोग हो गया। रानी बहुत दिनों तक उसी आश्रम में रहीं।

एक समय पार्वती सहित महादेवजी नादिया पर चढ़कर वन-मार्ग से चले जा रहे थे। मार्ग में एक अति दुःखी ब्राह्मण को देखकर पार्वती ने उससे पूछा—"हे विप्र! आप किस कारण से ऐसा विलाप कर रहे हैं?"

ब्राह्मण बोला—"देवि! यह सब दारिद्र्य की कृपा का फल है।" तब कृपालु देवी पार्वती ने ब्राह्मण से कहा कि तुम राजा विक्रमार्क के राज में चले जाओ। वहां एक वैश्य पूजन की सामग्री देता है। उससे कर्पादि-विनायक गणेश का व्रत और पूजन करना। उसीसे तुम्हारी दरिद्रता नष्ट हो जायगी और साथ ही तुम राजा विक्रमार्क के राजमंत्री हो जाओगे।

पार्वती की आज्ञा मानकर उक्त ब्राह्मण राजा विक्रमार्क के राज्य में चला गया और विधिवत् विनायक का पूजन करने से थोड़े ही दिनों में उस राजा का मंत्री हो गया।

किसी समय राजा विक्रमार्क वन-यात्रा करता हुआ उसी ऋषि-

आश्रम में जा पहुंचा, जहां उसकी रानी रहती थी। रानी को नीरोग और उसकी दिव्य-देह देखकर उसे बड़ा आनन्द हुआ। वह रानी को साथ लेकर महल को चला आया।

कपर्दि-विनायक का व्रत करने वाले व्यक्ति को चाहिए कि वह व्रत-काल के एक मास में इस कथा को पांच बार श्रवण करे।

३६/ऋषि-पंचमी

भाद्रपद शुक्ल पंचमी को ऋषि-पंचमी कहते हैं। यह व्रत प्रायः स्त्रियों का है। किसी-किसी दशा में पुरुष भी अपनी स्त्री के लिए इस व्रत को कर सकता है।

व्रत करने वाली स्त्री को चाहिए कि वह भाद्रपद शुक्ल पचमी को मध्याह्न के समय स्वच्छ जल वाली नदी या ताल पर जाकर प्रथम १०८ अथवा ८ अपामार्ग की दातुन करे और फिर मृत्तिका-स्नान के पश्चात् पंचगव्य पान करे। पुरुष हो तो हवन करके पंचगव्य पान करे। स्त्री हो तो केशव आदि विष्णु के नामों को जपकर पंचगव्य ले। तत्पश्चात् स्नान करके प्रथम अपना नित्य-कर्म करे। इस विधि से स्नान करके, घर पर उपवास करनेवाली स्वयं अपने हाथ से पूजा के स्थान को गोबर से चौकोर लीपे। फिर उसी पर अनेक रंगों से सर्वतोभद्र मंडल बनाकर मिट्टी अथवा तांबे का घड़ा उस पर रक्खे और उसको गले तक कपड़े से ढक दे। घट के ऊपर तांबे अथवा बांस के पात्र में जौ भरकर और उसमें पंच-रत्न, फूल गन्ध और अक्षत रखकर वस्त्र से ढक दे। उसी स्थान पर अष्टदल कमल लिखकर सप्त ऋषियों की पूजा करे। आवाहन से लेकर ताम्बूल पर्यन्त षोड़शोपचार से पूजन करने के अनन्तर पूजा का पक्वान्न ब्राह्मण को दान करे और आप ऋषि-अन्न का भोजन करे।

पहली कथा—विदर्भ देश में उतङ्क नामक एक ब्राह्मण रहता था। उस ब्राह्मण के घर में केवल दो संतानें थीं—एक कन्या और एक पुत्र। पुत्र परम्परागत संस्कारों के कारण थोड़ी ही उम्र में संपूर्ण वेद-शास्त्रों का ज्ञाता हो गया था। यद्यपि उनकी बहन भी बहुत सुशीला थी और अच्छे कुल में ब्याही थी, तथापि किसी पूर्व पाप के कारण वह विधवा हो गई थी। उसी दुःख से संतप्त वह ब्राह्मण अपनी स्त्री और कन्या-सहित गंगा के किनारे वास करने लगा और वहां धर्म-चर्चा करते हुए काल बिताने लगा। कन्या अपने पिता की सेवा-शुश्रूषा करती थी और पिता अनेक ब्रह्मचारियों को वेद पढ़ाता था। एक दिन सोती हुई कन्या के शरीर में अकस्मात कीड़े पड़ गये। कन्या ने अपनी दशा देखकर माता से कहा। माता ने कन्या के इस दुःख से दुःखी होकर बहुत पश्चात्ताप किया और उसने पति को सब वृत्तान्त सुनाकर इसका कारण पूछा।

उत्तङ्क ने समाधिस्त होकर इस घटना के कारण पर विचार किया और स्त्री को उत्तर दिया कि पूर्व-जन्म में यह कन्या ब्राह्मणी थी। इसने रजस्वला अवस्था में अपने बरतनों का स्पर्श किया था। इसी पाप के कारण इसके शरीर में कीड़े पड़ गये हैं। धर्मशास्त्र में लिखा है कि रजस्वला स्त्री प्रथम दिन चाण्डालिनी के समान, दूसरे दिन ब्रह्मघातिनी के समान और तीसरे दिन धोबिन के समान अपवित्र रहती है। चौथे दिन स्नान करके शुद्ध होती है। इसके अतिरिक्त इस कन्या ने इसी जन्म में एक और भी अपराध किया है। वह यह कि इसने स्त्रियों को ऋषि-पंचमी का व्रत करते देखकर उनकी अवहेलना की है। अतः इसके शरीर में कीड़े पड़ने का एक यह भी कारण है। उक्त व्रत की विधि को देखने के कारण ही इसने ब्राह्मण-कुल में जन्म पाया है, अन्यथा यह चाण्डाल के घर में जन्म लेती। ऋषि पंचमी का व्रत सब व्रतों में प्रधान है, क्योंकि इसी के प्रभाव से स्त्री सौभाग्य-सम्पन्न रहती है और राजस्वला होने की अवस्था में अज्ञानपूर्वक होनेवाले स्पर्शादि से मुक्त होती जाती है।

दूसरी कथा—सत्ययुग में विदर्भ देश में प्रसेनजित नामक एक

राजर्षि राज करता था, उसके राज्य में वेद-वेदाङ्ग का ज्ञाता सुमित्र नाम का एक ब्राह्मण रहता था। वह खेती करके अपना निर्वाह करता था। जयश्री नाम की उसकी स्त्री भी खेती के काम में उसकी सहायक रहती थी। किसी समय वह स्त्री भी रजोवती होकर अज्ञात अवस्था में गृहकार्य करती रही और ब्राह्मण का भी स्पर्श करती रही। समय पाकर दैवयोग से उन दोनों का एक साथ ही प्राणान्त हुआ। दूसरे जन्म में स्त्री ने कुत्ती का जन्म पाया और ब्राह्मण ने बैल का। ब्राह्मण के पुत्र का नाम सुमति था। वह भी अपने पिता की तरह वेद-वेदाङ्ग का ज्ञाता तथा ब्राह्मण और अतिथि का पूजक था। उसके माता-पिता, कुत्ती और बैल योनि में उसी के घर में रहते थे। एक समय सुमति ने अपने माता-पिता का श्राद्ध किया। सुमति की स्त्री ने ब्राह्मणों के भोजन के लिए जो खीर बनाई थी, उसमें अकस्मात एक सर्प विष उगल गया। इस घटना को कुत्ती ने स्वयं देखा था। अतः उसने यह विचार कर कि इस खीर के खाने वाले ब्राह्मण मर जायंगे, खीर को छू लिया। इससे क्रुद्ध होकर सुमति की स्त्री ने कुत्ती को जलती हुई लकड़ी से मारा और उसने सब बरतन पुन. मांजकर फिर से खीर बनाई। जब सब ब्राह्मण भोजन कर चुके, तब उनका जो जूठन बचा, उसे सुमति की स्त्री ने पृथ्वी में गाड़ दिया। इस कारण कुत्ती उस दिन भूखी ही रही। बैल को सुमति ने हल में जोता था और उसका मुंह भी बांध दिया था, जिससे वह भी तृण नहीं चर सका। इन दोनों के भूखे रहने के कारण सुमति का श्राद्ध करना व्यर्थ ही हुआ। सुमति पशु-पक्षियों की भाषा समझता था। अस्तु, वह अपने माता-पिता की स्थिति को जानकर ऋषि-मुनियों के आश्रमों में गया और उसने उनसे अपने माता-पिता के पशु-योनि में जन्म पाने का कारण पूछा। ऋषियों ने उन दोनों के पूर्व-जन्म के पापों का हाल कह सुनाया और यह भी समझाया कि यदि तुम स्त्री-पुरुष दोनों ऋषि पंचमी का व्रत करके विधिपूर्वक उद्यापन करोगे और उस दिन बैल की कमाई की कोई वस्तु न खाओगे तो अवश्य ही तुम्हारे माता-

पिता की मुक्ति होगी। ऋषि-पंचमी के व्रत में कश्यप, अत्रि, भारद्वाज, विश्वामित्र, गौतम, जमदग्नि और सपत्नीक वशिष्ठ इन सात ऋषियों की पूजा करने का विधान है।

सुमति ने माता-पिता की मुक्ति के लिए ऋषि-पंचमी का व्रत किया। अतः ऋषि-पंचमी के व्रत के कारण सुमति के माता-पिता मुक्ति को प्राप्त हो गये।

३७/सन्तान-सप्तमी-व्रत

भाद्रपद शुक्ल सप्तमी को यह व्रत किया जाता है। इसे मुक्ताभरण व्रत भी कहते हैं। यह व्रत मध्याह्न तक होता है। मध्याह्न को चौक पूरकर शिव-पार्वती की स्थापना करे और 'हे देव ! जन्म-जन्मान्तर के पाप को मोक्ष पाने तथा खण्डित सन्तान-पुत्र-पौत्रादि की वृद्धि के हेतु में मुक्ताभरण व्रत करके आपका पूजन करती हूं', कहकर संकल्प करे। पूजन के लिए चन्दन, अक्षत, धूप, दीप, नैवेद्य, पुङ्गीफल, नारियल आदि सम्पूर्ण सामग्री प्रस्तुत रखे। नैवेद्य भोग के लिए खीर-पूड़ी और खास कर गुड़ डाले हुए पुवे बनाकर तैयार रखे। रक्षा बन्धन के लिए डोरा भी हो। कोई-कोई डोरे के स्थान पर सोने-चांदी की चूड़ियां रखती हैं या दूब का डोरा कल्पित कर लेती हैं।

स्त्रियों को चाहिए कि वे यह संकल्प करें, 'हे देव ! मैं जो यह पूजा आपकी भेंट करती हूं, उसे स्वीकार कीजिए।' इसी प्रकार शिवजी के सामने रक्षा का डोरा या चूड़ी रखकर और ऊपर कहे हुए क्रम से, आवाहन से लेकर फूल-समर्पण तक, पूजा अर्पण करके नीरांजन पुष्पांजलि और प्रदक्षिणा करे और नमस्कार करके यह प्रार्थना करे, 'हे देव ! मेरी दी हुई पूजा स्वीकार करते हुए मेरी बनी-बिगड़ी भूल-चूक क्षमा कीजिए।' तदनन्तर डोरे को शिवजी को समर्पण करके निवेदन करे,

'हे प्रभु ! इस पुत्र-पौत्र-वर्द्धनकारी डोरे को ग्रहण कीजिए।' उस डोरे को प्रार्थना-पूर्वक शिवजी से वरदान के रूप में लेकर आप धारण करे। फिर कथा सुने।

कथा—श्रीकृष्ण भगवान राजा युधिष्ठिर से कथा-प्रसंग वर्णन करते हैं कि मेरे जन्म लेने से पहले एक बार मथुरा में लोमश ऋषि आये थे। मेरे माता-पिता वसुदेव-देवकी ने उनकी विधिवत पूजा की। तब ऋषिवर ने उनको अनेक कथाएं सुनाईं। फिर वह बोले, 'हे देवकी ! कंस ने तुम्हारे कई पुत्रों को जन्मते ही मरवा डाला है, इस कारण तुम पुत्र-शोक से दुःखी हो। इस दुःख से मुक्ति पाने के लिए तुम मुक्ताभरण व्रत करो। जैसे राजा नहुष की रानी चन्द्रमुखी ने यह व्रत किया और उसके पुत्र नहीं मरे, वैसे ही यह व्रत पुत्र-शोक से तुम्हें मुक्त करेगा। इसके प्रभाव से तुम पुत्र-सुख को प्राप्त होगी, इसमें संशय नहीं।"

तब देवकी ने पूछा—"हे ब्राह्मण ! जो राजा नहुष की रानी चन्द्रमुखी थी, वह कौन थी और उसने कौन-सा व्रत किया था ? उस व्रत को कृपाकर विधिपूर्वक कहिए।"

तब लोमशजी ने यह कथा कही :

"अयोध्यापुरी में नहुष नाम का एक प्रतापी राजा हो गया है। उसकी अति सुन्दरी रानी का नाम चन्द्रमुखी था। उसी नगर में विष्णुगुप्त नामक एक ब्राह्मण रहता था। उसकी सर्वगुणसंपन्ना स्त्री का नाम रूपवती था। उक्त दोनों स्त्रियों में परस्पर बड़ी प्रीति थी। एक दिन दोनों सरयूजी में स्नान करने गईं। वहां उन्होंने और भी बहुत-सी स्त्रियों को स्नान करते देखा। स्नान करने के बाद वे मण्डल बांधकर बैठ गईं। फिर उन्होंने पार्वती-समेत शिवजी को लिखकर गन्ध, अक्षत, पुष्प आदि से उनकी पूजा की। जब वे पूजा करके घर को चलने लगीं, तब उन दोनों (रानी और ब्राह्मणी) ने उनके पास जाकर पूछा कि 'तुम किसका और क्यों पूजन कर रही थीं ?'

"उन्होंने उत्तर दिया कि 'हम गौरी समेत शिवजी का पूजन कर रही

थीं। उनका डोरा बांधकर हमने अपनी आत्मा उन्हीं को अर्पण कर दी है। तात्पर्य यह है कि हम लोगों ने यह संकल्प किया है कि जब तक जियेंगी, यह व्रत करती रहेंगी। यह सुख-सन्तान बढ़ाने वाला मुक्ताभरण व्रत सप्तमी को होता है। इस सुख-सौभाग्यदाता व्रत को हम लोग करती हैं।'

''स्त्रियों की बातें सुनकर रानी और उसकी सखी दोनों ने आजन्म सप्तमी का व्रत करने का संकल्प करके शिवजी के नाम का डोरा बांध लिया परन्तु घर पहुंच कर उन्होंने अपने किये हुए संकल्प को भुला दिया। परिणाम यह हुआ कि जब वे मरीं, तब रानी बानरी हुई और ब्राह्मणी मुर्गी हुई। कुछ समय बाद पशु-शरीर त्याग कर वे पुन: मनुष्य योनि में जन्मीं। रानी चन्द्रमुखी तो मथुरा के राजा पृथ्वीनाथ की प्यारी रानी हुई और ब्राह्मणी एक ब्राह्मण के घर में जन्मी। इस जन्म में रानी का नाम ईश्वरी हुआ और ब्राह्मणी भूषणा नाम से प्रसिद्ध हुई। भूषणा राज-पुरोहित अग्निमुख को ब्याही गई। इस जन्म में भी रानी और पुरोहितनी दोनों में परस्पर प्रीति और सख्य-भाव था। व्रत को भूल जाने के कारण यहां भी रानी अपुत्रा रही। मध्य वयस में उसको एक बहरा और गूंगा पुत्र जन्मा, परंतु वह भी नौ वर्ष का होकर मर गया। परतु व्रत को याद रखने और नियमपूर्वक व्रत करने के कारण भूषणा के गर्भ से सुंदर और नीरोग आठ पुत्र उत्पन्न हुए।

''रानी को पुत्र-शोक से दुःखी जानकर पुरोहितनी उससे मिलने गई। उसे देखते ही रानी को ईर्ष्या उत्पन्न हुई। तब उसने पुरोहितनी को विदा करके उसके पुत्रों को भोजन के लिए बुलाया और उनको भोजन में विष खिलाया। परन्तु व्रत के प्रभाव से वे नहीं मरे। इससे रानी को बहुत क्रोध आया। तब उसने नौकरों को आज्ञा दी कि वे पुरोहितनी के पुत्रों को पूजा के बहाने यमुना के किनारे ले जाकर जल में ढकेल दें।

''रानी के दूतों ने वैसा ही किया। परन्तु व्रत के प्रभाव से यमुनाजी उथली हो गयीं और ब्राह्मण-बालक बाल-बाल बच गए। तब तो रानी ने जल्लादों को आज्ञा दी कि वे ब्राह्मण-बालकों को वध-स्थान में ले जाकर

मार डालें। परन्तु जल्लाद आघात करने पर भी ब्राह्मण-बालकों को न मार सके। यह समाचार सुनकर रानी को बड़ा आश्चर्य हुआ। तब उसने पुरोहितनी को बुलाकर पूछा कि 'ऐसा तूने कौन-सा पुण्य किया है कि तेरे बालक मारने से भी नहीं मरते ?'

"इस प्रश्न के उत्तर में पुरोहितनी बोली कि 'आपको पूर्वजन्म की बात याद नहीं है, परन्तु मुझे जो मालूम है सो कहती हूं। पहले जन्म में तुम अयोध्या के राजा की रानी थीं और मैं तुम्हारी सखी थी। हम तुम दोनों ने सरयू-किनारे श्रीशिव-पार्वती के पूजन का डोरा बांधकर आजन्म सप्तमी का व्रत करने का संकल्प किया था। परन्तु फिर व्रत करना भूल गयीं। मुझे अन्तिम समय में व्रत का ध्यान आ गया, इस कारण मैं मर कर बहु संतान वाली कुक्कुटी हुई और तुम वानरी हुई। पक्षी-योनि में व्रत कर नहीं सकती थी, परन्तु व्रत का स्मरण-मात्र रखने से मैं इस जन्म में नीरोग और बहु संतानवाली हूं। मैं अब भी व्रत करती हूं। उसी के प्रभाव से मेरी सन्तान स्वस्थ और दीर्घायु हैं।'

"पुरोहितनी के कहने से रानी को भी अपने पूर्व-जन्म का हाल स्मरण आ गया और वह उसी समय से नियमपूर्वक व्रत करने लगी। तब उसके कई पुत्र-पौत्रादि हुए और अंत में उन दोनों ने शिव-लोक का वास पाया।"

लोमशजी बोले कि "हे देवकी ! जिस प्रकार रानी चन्द्रमुखी ने फल पाया, उसी प्रकार तुम भी इस व्रत को करने से सन्तान-सुख पाओगी, यह निश्चय हैं।"

तब देवकी ने पूछा कि 'हे मुनिवर ! संतानदाता और मोक्षदाता व्रत की विधि कृपा करके कहिए।' लोमशजी ने कहा कि 'भादों शुक्ल सप्तमी को नदी या ताल में स्नान करके, मंडल में शिव-पार्वती की प्रतिमा लिखकर उसका विधिवत पूजन करो और शिवजी के नाम का डोरा बांधकर यह संकल्प करो कि यह जीवन हमने भी शिवजी को समर्पित किया। फिर सदैव व्रत को स्मरण रखने के लिए शिवजी के डोरे को सोने या चांदी का बनवा कर सदैव हाथ में पहने रहो और हर

सप्तमी को या महीने में एक बार शुक्ल पक्ष की सप्तमी को अथवा साल में एक या भादों मास के शुक्ल पक्ष की सप्तमी को व्रत रखकर उसका पूजन करो। सौभाग्यवती स्त्रियों को वस्त्र और सौभाग्य-सूचक पदार्थ दान दिया करो। व्रत के दिन खुद भी पुआ भोजन करो। और पुत्रों तथा सौभाग्यवती स्त्रियों को भोजन कराओ। प्रतिवर्ष व्रत की शान्ति विधिपूर्वक करो, तो निश्चय है कि तुमको उत्तम सन्तान प्राप्त होगी।"

श्रीकृष्ण बोले—"हे युधिष्ठिर ! इस प्रकार सन्तान सप्तमी का व्रत करने से तब मैंने देवकी के गर्भ से अवतार लिया। बस इसीसे समझ लो कि इस व्रत का कितना अधिक माहात्म्य है।"

३८/अनन्त-चतुर्दशी

भाद्रपद मास के शुक्ल पक्ष की चतुर्दशी को यह व्रत होता है। इसमें स्नानादि के पश्चात् अक्षत् दूर्वा, तथा शुद्ध सूत से बने और हल्दी से रंगे हुए चौदह गांठ के अनन्त को सामने रखकर हवन किया जाता है। तत्पश्चात अनन्तदेव का ध्यान करके शुद्ध अनन्त को अपनी दाहिनी भुजा में बांधते हैं। इस व्रत में प्रायः एक वक्त अलोना (विशेषतः सिमई-युक्त) भोजन किया जाता है।

अनन्तदेव के सम्बन्ध में एक कथा लोक में प्रचलित है कि जिस समय युधिष्ठिर अपना सब राज-पाट हारकर वनवास कर रहे थे तब भगवान कृष्ण उनसे मिलने आये। उनकी कष्ट-कथा सुनकर श्रीकृष्ण ने उन्हें अनन्त व्रत करने की राय दी, जिसे करके वे अन्त में कष्ट-मुक्त हो गये।

३९/जीवत्पुत्रिका-व्रत

आश्विन कृष्ण अष्टमी को यह व्रत होता है। यह व्रत वही स्त्रियां करती हैं जो पुत्रवती हैं। इस व्रत को करने से पुत्रवती स्त्रियों को पुत्र-शोक नहीं होता। स्त्रियों में इस व्रत का अच्छा प्रचार और आदर है। वे इस व्रत को निर्जला रहकर करती हैं। दिन-रात के उपवास के बाद दूसरे दिन पारण किया जाता है। इस व्रत के सम्बन्ध में जो किम्वदन्ती प्रचलित है, वह इस प्रकार है—

कथा—प्राचीनकाल में जीमूतवाहन नाम के एक बड़े धर्मात्मा और दयालु राजा हो गए हैं। एक बार वह पर्वत-विहार के लिए गये हुए थे। संयोगवश उसी पहाड़ पर मलयवती नाम की एक राज-कन्या देव-पूजा के लिए गई हुई थी। दोनों ने एक दूसरे को देखा। राज-कन्या के पिता और भाई इस कन्या का विवाह उसी राजा से करना चाहते थे। राज-कन्या का भाई भी उस समय पर्वत पर आया हुआ था। उसने दोनों का परस्पर-दर्शन देख लिया। फिर राजकुमारी वहां से चली गई।

जीमूतवाहन ने पर्वत पर भ्रमण करते-करते किसी के रोने का शब्द सुना। पता लगाया तो ज्ञात हुआ कि शंखचूर्ण सर्प की माता इसलिए रो रही है कि उसका इकलौता पुत्र आज गरुड़ के आहार के लिए जा रहा है।

गरुड़ के आहार के लिए जो स्थान नियत था, उस दिन राजा वहां जाकर स्वयं सांप की भांति लेट गया। गरुड़ ने आकर जीमूतवाहन पर चोंच मारी। राजा चुपचाप पड़े रहे। गरुड़ को आश्चर्य हुआ। सोचने लगा कि आखिर यह है कौन? राजा ने कहा—"आपने भोजन क्यों बन्द कर दिया?"

गरुड़ ने पहचान कर पश्चात्ताप किया। मन में सोचा कि एक यह है जो दूसरे का प्राण बचाने के लिए अपनी जान दे रहा है और एक मैं हूं जो अपनी भूख बुझाने के लिए दूसरे का प्राण ले रहा हूं। इस अनुताप

के बाद गरुड़ ने राजा से वर मांगने को कहा। राजा ने कहा कि आज तक आपने जितने सांप मारे हैं सबको फिर से जिला दीजिए और अब से सर्प न मारने की प्रतिज्ञा कीजिए। गरुड़ 'एवमस्तु' कहकर चले गये।

इसी बीच राजकुमारी के पिता जीमूतवाहन को ढूंढ़ते हुए वहां पहुंचे। उस दिन आश्विन शुक्ल अष्टमी थी। राजा ने उन्हें ले जाकर उनके साथ अपनी कन्या का विवाह कर दिया। इसी घटना के उपलक्ष में स्त्रियां यह व्रत रखतीं और ब्राह्मण को दक्षिणा देती हैं।

४०/महालक्ष्मी-पूजन

महालक्ष्मी के पूजन का अनुष्ठान भादों सुदी अष्टमी से आरम्भ होकर आश्विन कृष्णा अष्टमी को पूर्ण होता है। कोई-कोई स्त्री पंडित को कच्चा सूत देती हैं। पंडित गण्डा बनाता है। कोई अपना गण्डा आप बना लेती हैं। गण्डा के सूत के सोलह धागे होते हैं और उनमें सोलह गांठें लगाई जाती हैं। भादों की अष्टमी को जिस दिन लक्ष्मी-पूजन का अनुष्ठान आरम्भ होता है, स्त्रियां नदी या तालाब में स्नान करने जाती हैं। वहां सधवा स्त्रियां चालीस लोटे जल अपने सिर पर डालती हैं और उतनी ही अंजुलि जल सूर्य को अर्घ्य देती हैं। परन्तु विधवा स्त्रियां केवल सोलह लोटे जल सिर पर डालती हैं, और दूब सहित अंजुलि से सोलह अंजुलि जल सूर्य को अर्घ्य देती हैं। इस प्रकार स्नान के बाद घर आकर शुद्ध जगह में पटा रख कर उस पर गण्डा रखकर लक्ष्मीजी का आह्वान करती हैं, गण्डे का पूजन करतीं है, होम करती हैं और सोलह दिन तक नित्य सोलह बोल की कहानी कहा करती हैं। कहानी इस प्रकार है—

कथा—अमोती दमोती रानी, पोला परपाटन गांव, मगरसेन राजा, बंभन बरुआ, कहे कहानी, सुनो हो महालक्ष्मीदेवी रानी, हमसे कहते

तुमसे सुनते सोलह बोल की कहानी ।

इस कहानी को सोलह बार कहकर अक्षत छोड़े जाते हैं ।

कुंवार वदी अष्टमी को जब महालक्ष्मी का पूजन होता है, तब सोलह प्रकार का पकवान बनाया जाता है। मिट्टी का हाथी पूजा जाता है और उसी के पास वह गण्डा भी रख दिया जाता है। अधिकांश पंडित इस पूजन को विधिवत् करवाते हैं और लक्ष्मीजी की पौराणिक कथा कहते हैं। जहां पंडित नहीं पहुंच सकते, वहां स्त्रियां नीचे लिखी कथा पूजन के अन्त में कहती हैं—

हाथी की कथा—एक राजा के दो रानियां थीं। एक के सिर्फ एक ही लड़का था और दूसरी के बहुत-से लड़के थे। महालक्ष्मी-पूजन की तिथि आई। छोटी रानी के बहुत-से लड़कों ने एक-एक लोंदा मिट्टी का हाथी बनाया तो बड़ा भारी हाथी बन गया। रानी ने उस हाथी की विधिवत् पूजा की। परन्तु दूसरी रानी जिसका एक ही लड़का था, चुपचाप सिर नीचा किये बैठी थीं। लड़के के पूछने पर उसकी मां ने कहा कि तुम थोड़ी-सी मिट्टी लाओ, तो मैं एक हाथी बनाकर पूजा कर लूं। देखो तुम्हारे भाइयों ने कितना बड़ा हाथी बनाया है। यह सुनकर लड़के ने कहा कि तुम पूजन की सामग्री इकट्ठी करो, मैं तुम्हारी पूजा के लिए सजीव हाथी ले आता हूं।

निदान वह राजा इंद्र के यहां गया और वहां से वह अपनी माता के पूजन के लिए इंद्र का ऐरावत हाथी ले आया। माता ने बड़े प्रेम से पूजन किया और कहा—

क्या करे किसी के सौ साठ।
मेरा एक पुत्र पुजावे आस॥

४१/महालया

आश्विन मास में कृष्ण-पक्ष की अमावस्या को महालय कहते हैं।

यह हमारा परम पुनीत दिन है। यह हमें पितरों को तिलांजलि के साथ ही श्रद्धांजलि अर्पण करने का अवसर प्रदान करता है। इस दिन तिलां-जलि तथा पिण्ड-दान देने से पितरों को शांति मिलती है। आश्विन मास में पितरों को यह आशा लगी रहती है कि उन्हें पिन्डदान मिलेगा तथा पीने के लिए जल की प्राप्ति होगी। ऐसी दशा में उन्हें पिण्डदान न मिलने पर बड़ी निराशा होती है और वे शाप देते हैं। ब्रह्म पुराण में लिखा है कि आश्विन मास के कृष्ण-पक्ष में यमराज यमालय से पितरों को स्वतन्त्र कर देते हैं और वे अपनी संतानों से पिण्ड दान लेने के लिए भू-लोक में आ जाते हैं। जब सूर्य कन्या राशि में आते हैं तब वे यहाँ आते हैं और अमावस्या के दिन तक घर के द्वार पर ठहर कर श्राद्ध न करने वाली संतान को शाप देकर चले जाते हैं। कन्या राशि में सूर्य के जाने के कारण ही आश्विन मास के कृष्णपक्ष को कनागत अर्थात् कन्या+गत कहते हैं। देहातों में यह पक्ष 'पितर पख' कहा जाता है। शिक्षित लोग 'पितृपक्ष' कहते हैं। इस पक्ष में माता-पिता हीन सन्तान को प्रातःकाल उठकर किसी नदी में स्नान करना चाहिए और फिर तिल, अक्षत तथा कुश को हाथ में लेकर वैदिक-मंत्रों द्वारा पितरों को सूर्य के सामने खड़े होकर जलांजलि देनी चाहिए। तिलांजलि देने का कार्य कृष्ण-पक्ष में प्रतिदिन होना चाहिए। पितरों की मृत्यु-तिथि के दिन श्राद्ध करना चाहिए और ब्राह्मणों को भोजन कराकर दक्षिणा देनी चाहिए। इस पक्ष में गयाजी में श्राद्ध-करने का विशेष महत्व है।

४२/नवरात्रि

दुर्गा सप्तशती द्वारा जो भगवती का माहात्म्य प्रकट किया गया है, उसका संक्षिप्त सारांश यह है कि शुम्भ-निशुम्भ तथा महिषासुरादि तामसिक वृत्ति वाले असुरों की वृद्धि होने से जब देवता अत्यन्त दुःखी हुए,

तब सबने मिलकर चित्-शक्ति महामाया की स्तुति और उपासना की जिससे प्रसन्न होकर देवी ने देवताओं को वरदान दिया और आश्विन शुक्ल प्रतिपदा से दशमी तक नौ दिन देवी पूजा और व्रत करने का आदेश दिया। उस दिन से ही देवी-नवरात्रि-महोत्सव का प्रचार संसार में हुआ है।

प्रतिपदा को जो घट स्थापित किया जाता है, उसकी विधि के संबन्ध में लिखा है कि प्रातःकाल तैलाभ्यंग-स्नान और नवरात्रि व्रत का संकल्प करे तथा गणपति-पूजन, पुण्याहवाचन, नान्दी, श्राद्ध, मातृका-पूजन और ऋत्विक वरण करने की प्रतिज्ञा करे। तत्पश्चात् पृथ्वी-स्पर्शपूर्वक पूजन करके घट में हरे पत्ते डालकर जल भरे और चन्दन लगाकर सर्व औषधि-संस्कार करे तथा दूर्वा, पंचरत्न, पंचपल्लव घट में डालकर उस पर सूत या वस्त्र लपेटे। तदनन्तर गेहूं या जौ से भरा हुआ पूर्ण पात्र घट के मुख पर रखकर वरुण का पूजन करे और तब भगवती का आवाहन करे। भगवती का आवाहन करके आसन, पाद्य, अर्घ्य, आचमन, पंचामृत, स्नान, वस्त्र, अलंकार, गन्ध, अक्षत, पुष्प और परिमल आदि द्रव्यों से पूजन करके अंग-पूजन करना चाहिए। तत्पश्चात् धूप, दीप, नैवेद्य, आचमन, ताम्बूल, फल, दक्षिणा, आरती और पुष्पांजलि करके प्रदक्षिणा करे और ऋत्विक् वरण करके कुमारी-पूजन करना चाहिए। एक वर्ष की आयु से १० वर्ष तक की कन्या का पूजन करना उचित है।

प्रतिपदा से लगाकर दशमी पर्यन्त कन्या का पूजन करना चाहिए। देवी नवरात्रि के पूजन का सब मनुष्यों को अधिकार है। विधिमात्र भिन्न है। ब्राह्मणादि सात्विक लोगों की पूजा मांस-रहित होती है। शूद्रादि तामसी लोगों की पूजा मांस-सहित होती है। प्रतिपदा को घट-स्थापन करने के बाद दशमी पर्यन्त नित्य-सप्तशती का पाठ, देवी-भागवत श्रवण, अखण्ड दीप पुष्प-माला समर्पण और उपोषण करना या एक-भुक्त रहना चाहिए। घट के पास नौ धान्यों को बोना चाहिए और

अन्त में उनके पेड़ों की प्रसादी लेकर मस्तक पर चढ़ाना चाहिए। पंचमी के दिन उपांग ललिता व्रत करना चाहिए। मूल नक्षत्र में सरस्वती का आवाहन करके पूर्वाषाढ़ में पूजन करना चाहिए। उत्तराषाढ़ में बलि-दान और श्रवण में विसर्जन करना चाहिए। अष्टमी और नवमी को महातिथि कहते हैं।

कथा—प्राचीनकाल में सुरथ नाम का एक राजा था। राज-काज का भार मंत्रियों को सौंपकर वह सुख से रहता था। यह देखकर उसके शत्रुओं ने उस पर चढ़ाई कर दी। मंत्री भी राजा को धोखा देकर शत्रुओं से मिल गए। परिणाम यह हुआ कि राज्य पर शत्रुओं का अधि-कार हो गया और राजा तपस्वी के वेश में वनवास करने लगा।

एक दिन राजा को एक मोह-ग्रस्त वैश्य मिला। उसकी मोह-कथा सुनकर राजा उसके साथ मेघ ऋषि के पास गये। ऋषि ने दोनों के आने का कारण पूछा।

राजा ने उत्तर दिया कि मैं राजा हूं और मेरा साथी वैश्य है। हम दोनों को गोत्र-भाइयों ने घर से निकाल दिया है। फिर भी हम उनके मोह को नहीं त्याग सकते। हमारी समझ में नहीं आता कि मोह क्या वस्तु है और मन के भीतर कौन बैठा हुआ है।

ऋषि ने उपदेश देते हुए कहा कि मन शक्ति के अधीन होता है। उस आदि-शक्ति भगवती के दो रूप हैं—एक विद्या और दूसरा अविद्या। विद्या ज्ञान-स्वरूप है और अविद्या अज्ञान-स्वरूप। इस अविद्या के कारण मोह का आविर्भाव होता है। इसलिए जो पुरुष भगवती को संसार का आदि कारण जानकर उनकी भक्ति करते हैं, उन्हें वह विद्या-स्वरूप से प्राप्त होकर उनको जीवन्मुक्त कर देती है। इसके पश्चात् उन्होंने यह कथा सुनाई—

कथा—महाप्रलय के समय जब श्रीलक्ष्मीनारायण शेष की शैय्या पर क्षीर-सागर में शयन कर रहे थे और उनका प्रताप उनके शरीर में व्याप्त हो रहा था। तब उसी दशा में उनकी नाभि से ब्रह्मा और दोनों कानों से

मधु और कैटभ नाम के दो दैत्य उत्पन्न हुए। उन लोगों का भयानक वेश देखकर ब्रह्मा ने विचार किया कि इस समय श्रीहरि के सिवा और कोई मेरा सहायक नहीं है। परन्तु वह सुषुप्त अवस्था में हैं। उनको किसी तरह जगाना चाहिए। यह विचार कर ब्रह्मा ने समस्त जग की प्रेरक आदि-शक्ति का ध्यान करते हुए उनकी स्तुति की। तब सर्वेश्वरी शक्ति ने अपनी वह मोहक शक्ति खींच ली, जिसके कारण विष्णु भगवान सो रहे थे। विष्णु ने जागकर उक्त दोनों दानवों से युद्ध करना आरम्भ किया। पांच हजार वर्ष तक घोर युद्ध होता रहा, परन्तु उन खलों का बल कुछ भी कम नहीं हुआ। देवताओं ने घबरा कर शक्ति की आराधना की। शक्ति प्रकट हुई। उसने असुरों को प्रेरित किया। असुरों ने स्वयं अपने विनाश के लिए विष्णु भगवान से प्रार्थना की। विष्णु भगवान ने वैसा ही किया। उन्होंने उनको पछाड़ कर उनका सिर चक्र से काट डाला।

यह एक प्रसंग हुआ। अब जिस तरह इन्द्रादि देवताओं के लिए शक्ति प्रकट हुई, उनका हाल सुनो—

एक समय महिषासुर नाम का एक असुर ऐसा प्रबल हुआ कि उसने स्वर्ग के सब देव-दल को परास्त कर इन्द्र के निवास-स्थान को जा घेरा। इंद्र उसके डर से भागकर त्रिदेवों के पास गये। इंद्र समेत त्रिदेवों ने आदि-शक्ति भगवती का ध्यान किया। उसी क्षण सब देवताओं के अंगों में से एक तेज-पुंज ज्वाला-सी निकल कर अग्निज्वाला की तरह पृथ्वी पर आच्छादित हो गई। उस तेज से संतप्त होकर देवताओं ने शक्ति की स्तुति करते हुए प्रार्थना की कि हम लोग आपका तेज सहन नहीं कर सकते। इस कारण कृपा करके आप मूर्तिमान् स्वरूप धारण कर लीजिए।

यह सुनते ही एक सुंदर किशोर-वय मूर्ति प्रगट हो गई। उस मूर्ति के तीन नेत्र तथा आठ भुजाएं थीं। तब सब देवताओं ने उस मूर्ति की पूजा की। विष्णु भगवान ने अपना चक्र, ब्रह्मा ने अपना पवित्र कमण्डल, शिवजी ने त्रिशूल, इंद्र ने अपना वज्र, वरुण ने शक्ति-आयुध, यमराज ने

अपना खड्ग और यम-फांस, अग्निदेव ने अपना धनुष-बाण, लक्ष्मी ने अपना सब श्रृंगार उसको दिया और हिमालय ने उसकी सवारी के लिए सिंह भेंट किया। इस प्रकार सुसज्जित होकर इधर से शक्ति चली और उधर से महिषासुर दैत्य अग्रसर हुआ। शक्ति के साथ में जो देवताओं का दल था, उसको पीछे छोड़कर भवानी आगे बढ़ गई और उन्होंने महिषासुर के दैत्य-दल पर भीषण रूप से आक्रमण कर उसका नाश कर डाला, महिषासुर अकेला रह गया। वह अनेक आसुरी माया करते हुए युद्ध में प्रवृत्त हुआ। परन्तु शक्ति ने संपूर्ण माया-जाल को छिन्न-भिन्न कर महिषासुर को काल-पाश में लपेट कर पृथ्वी पर पटक दिया और उसकी गर्दन पर पैर रखकर खड्ग से उसका सिर काट डाला। इस प्रकार भगवती ने महिषासुर का संहार किया। अब आगे किस तरह उन्होंने शुम्भ-निशुम्भादि दैत्यों को मारा, उसकी कथा इस प्रकार है :

श्री सूर्य भगवान की अदिति नाम की रानी के गर्भ से शुम्भ और निशुम्भ नाम के दो दैत्य उत्पन्न हुए। ज्येष्ठ भाई शुम्भ राज-छत्र धारण कर दैत्य-समाज का शासन करता था और उसका छोटा भाई निशुम्भ भी समान रूप से बलवान और सामर्थ्यवान था। जीवधारी की कौन कहे, पंचतत्व भी उनके भय से सशंक रहते थे। उनका प्रधान कर्मचारी रक्त-बिन्दु और सेनापति धूम्रलोचन दोनों बड़े कार्य-कुशल और कुशाग्र-बुद्धि थे। सेनापति के सहकारी चंड और मुंड नाम के दैत्य बड़े विकट-स्वरूप और अजेय योद्धा थे। इन लोगों के आतंक से समस्त देवदल छिन्न-भिन्न हो गया था। इस आपत्ति से अकुला कर त्रिदेवों-समेत सम्पूर्ण देवता हिमालय पर्वत पर पार्वतीजी की स्तुति और वन्दना करने लगे। इसी बीच पार्वती जी स्नान करने के लिए निकलीं। देवताओं को इकट्ठा देखकर उनके मुख से एक अनुपम शक्ति निकली। उसके निकलते ही गौराङ्गी पार्वती का स्वरूप श्याम वर्ण हो गया। उस शक्ति ने पार्वती-जी के सम्मुख स्थित होकर कहा कि देवता असुरों के भय से विह्वल होकर मेरी स्तुति कर रहे हैं। इसी कारण मैं स्वयं-सिद्ध प्रकट हुई हूं।

देवता उस स्वयं-सिद्ध शक्ति का अनुपम स्वरूप देखकर चकित हो गए और वे किंकर्त्तव्य-विमूढ़ होकर उसके चरणों पर गिर पड़े। भगवती ने उनको पर्वत की गुफाओं में छिप जाने का आदेश दिया। देवताओं के छिपे रहने पर वह आदि-कुमारी अद्भुत स्वरूप धारण कर सुमेरु-शिखर के राज-सिंहासन पर आसीन हुईं और असुर-दल के अनुचरों को मार-मारकर बाहर निकालने लगीं। यह समाचार पाकर असुरराज शुम्भ-निशुम्भ आश्चर्य में पड़ गये। उन्होंने वास्तविक स्थिति जानने के लिए जो गुप्तचर भेजे, वे भी आदि-शक्ति का दिव्य स्वरूप देखकर मोहित हो गए। लौटकर उन्होंने अपने राजा से तपस्विनी के रूप-गुण का खूब बखान किया। इस पर दैत्यराज ने भगवती के पास एक राजदूत द्वारा विवाह का प्रस्ताव भेजा। कहां देवी भगवती और कहां वह राक्षस ! देवी ने उसका प्रस्ताव ठुकरा दिया और युद्ध-स्वयंवर का प्रस्ताव किया। दूत ने जगज्जननी के आदेशानुसार सब बातें शुम्भ से कह सुनाईं, जिन्हें सुनते ही शुम्भ ने धूम्रलोचन को दल-बल सहित कैलास पर जाकर भगवती को पकड़ लाने की आज्ञा दी। शुम्भ की आज्ञा पाकर धूम्रलोचन सुमेरु-शिखर पर चढ़कर भगवती के सम्मुख जा पहुंचा। भगवती उसके आने का आशय समझ गयीं। अतः उन्होंने आप-ही-आप एक हुंकार शब्द किया। उसकी दाह-शक्ति से धूम्रलोचन उसी जगह जलकर भस्म हो गया। धूम्रलोचन का भस्मीभूत होना सुनकर उसके साथ वाले दानव शिखर पर चढ़ दौड़े। यह देखकर शक्ति ने उनके ऊपर सिंह को ललकार दिया और सिंह ने उन सबका सर्वनाश कर दिया।

सिंह का ग्रास होने से जो बचे, वे शुम्भ के दरबार में गये। उनसे आदि-शक्ति के प्रभुत्व एवं वैभव का समाचार सुनकर शुम्भ ने सहायक सेना-नायक चंड-मुंड की शक्ति को पकड़ लाने की आज्ञा दी। चंड-मुंड एक बड़ी भारी दैत्य-सेना लेकर हिमाचल की ओर चले। उनके दल के आतंक से सारे देश में हाहाकार मच गया। भगवती ने भी एक ओर भयंकर दैत्य-दल और एक ओर अकेले सिंह को देखकर क्रोधपूर्वक जो

भौंहें चढ़ाईं तो क्रोधस्वरूप, कराल-कृत्यशक्ति काली अपने-आप उत्पन्न हो गई। काली ने आदिशक्ति को प्रणाम कर अपनी प्रेत, पिशाच और योगिनी-सेना समेत दानव-दल पर आक्रमण कर दिया। भगवती काली की भयानक मूर्ति देखकर दैत्य-दल तो सशंक होकर किंकर्त्तव्य-विमूढ़ हो गया, परन्तु चंड-मुंड ने साहस कर कालिका का सामना किया। उसने काली पर जो-जो अस्त्र चलाये, सब व्यर्थ हुए। अन्त में काली ने अपने विकराल खड्ग से चंड-मुंड के शरीर के खंड-खंड कर दिये और उनका रुधिर पान करने लगीं।

भूत-प्रेत वेतालादि से बचे हुए दैत्य काली के हाथों चंड-मुंड का परिणाम देखकर राजा के समीप दौड़े गये। चंड-मुंड का मरना सुनकर शुम्भ ने अपने आमात्य रक्तबिंदु को संपूर्ण दैत्य-दल समेत शक्ति का संहार करने के लिए सुमेरु-शिखर पर भेजा। आज्ञा शिरोधार्य कर रक्तबिंदु असंख्य सेना समेत सुमेरु-शिखर के उपकंठ में जा पहुंचा। दैत्य-दल को देखकर शक्ति भगवती ने विचार किया कि अकेली काली सबका सामना नहीं कर सकती। चित्त में ऐसा विचार आते ही भगवती के मुख से जाज्वल्यमान ज्वाला-स्वरूप शक्ति की उत्पत्ति हुई। उस आदि शक्ति की प्रबल शक्ति से हंसवाहिनी ब्रह्मशक्ति, गरुड़ारूढ़ विष्णुशक्ति नन्दीवाहिनी शिवशक्ति और गजारूढ़ इन्द्र-शक्ति आदि संपूर्ण देवताओं की भिन्न-भिन्न शक्तियां आप-से-आप प्रकट हो गईं। उन्होंने आदि-शक्ति को सिर नवाकर आज्ञा मांगी। शक्ति ने शत्रु-सेना पर आक्रमण करने की आज्ञा दी।

जगज्जननी की आज्ञा पाकर संपूर्ण देवों की दिव्य शक्तियों ने दैत्य-दल का संहार करना आरम्भ किया। विभिन्न देव-शक्तियों की संयुक्त मार से घबरा कर जब दानव दल भाग खड़ा हुआ, तब रक्तबिन्दु ने क्रुद्ध हो अति उद्धत योद्धाओं-समेत ताजी फौज को रणक्षेत्र में भेजा। खास तौर से हाथियों की फौज आगे करके उसने विकट व्यूह-बद्ध हो आक्रमण किया। उस समय भगवती ने अपने वज्रायुध से समस्त दानव-सेना को

छिन्न-भिन्न कर दिया। केवल इने-गिने सरदार खेत में खड़े रह गए। ऐसी दशा में रक्तविन्दु स्वयं अनेक प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों से सजकर युद्ध-क्षेत्र में पहुंचा। उसमें खास गुण यह था कि जहां कहीं उसके रुधिर का एक बूंद गिर पड़ता था, वहां एक नवीन रक्तबिंदु (दानव) उत्पन्न हो जाता था। उसकी इस अलौकिक करामात के सामने समस्त देव शक्तियां परास्त हो गईं। तब सब देवताओं ने व्याकुल होकर अनन्य शक्ति की आराधना की। उसी समय उनकी इच्छा से कालिका शक्ति अपनी योगिनी सेना-समेत अग्रसर हुई। उसने अपने खड्ग से उस दानव का सिर काट डाला और योगिनियों ने उसका रुधिर पीना आरम्भ किया। इससे रक्तबिंदु के किसी अंश का एक भी विन्दु धरती पर गिरने ही न पाया। अंत में भगवती की काली शक्ति ने असली रक्तबिंदु को भी मार डाला।

रक्तबिंदु का मरना सुनकर शुम्भ को अति क्षोभ हुआ। अपने बड़े भाई को मन-मलीन देखकर निशुम्भ ने महाशक्ति का सामना करने का बीड़ा उठाया और वह संपूर्ण चतुरंगिनी सेना सहित सुमेरु शिखर की ओर चढ़ दौड़ा। उसके मुक़ाबले में सम्पूर्ण देव-शक्तियों ने अतुल पराक्रम दिखाया, भगवती ने उस प्रबल दैत्य को भी मौत के घाट उतार दिया। भाई का रण में मरण सुनकर शुम्भ स्वयं आदि-शक्ति से युद्ध करने के लिए रण क्षेत्र में आया। उसने भी अपने प्रबल पराक्रम से देव-सेना को व्याकुल कर दिया; परंतु अंत में उसकी भी वही गति हुई, जो सब दानवों की हो चुकी थी।

यह कथा कहकर ऋषि ने राजा और उसके साथी वैश्य को भगवती की आराधना करने की विधि बताई जिसे सुनकर दोनों एक नदी के तट पर बैठ कर तप में लीन हो गये। तीन वर्ष के पश्चात् भगवती ने उन्हें दर्शन देकर वरदान दिया।

वैश्य को तो उसी समय ज्ञान प्राप्त हो गया और वह संसारी मोह से निवृत्त होकर आत्म-चिन्तन में प्रवृत्त हो गया। राजा ने राज-सिंहासन

पर बैठकर अपने राज में यह ढिंढोरा पिटवाया कि आश्विन मास तथा चैत्र मास के शुक्ल पक्ष में प्रत्येक मनुष्य घट-स्थापनपूर्वक आदि शक्ति की उपासना तथा आराधना किया करे। उसी समय से संसार में नव-रात्रि की पूजा की प्रथा चली है।

४३/विजया दशमी

विजयादशमी को 'दशहरा' भी कहते हैं। यह आश्विन शुक्ल दशमी को मनाया जाता है। भगवान राम ने इसी दिन लंका पर चढ़ाई की थी और उस पर विजय प्राप्त की थी। इसी लिए यह तिथि 'विजया-दशमी' कहलाती है। यह तिथि शत्रु को परास्त करने के लिए पुण्य तिथि मानी जाती है। 'ज्योतिर्निबन्ध' में लिखा है कि आश्विन की शुक्ल पक्ष की दशमी को तारा उदय होने के समय 'विजय' नामक काल होता है। वह सब कार्य की सिद्धि को देने वाला होता है। आश्विन शुक्ल दशमी पूर्व विद्धा निषिद्ध मानी गयी है। पर विद्धा शुद्ध है। श्रवण-युक्त सूर्योदय व्यापिनी तिथि सर्वश्रेष्ठ है।

विजयादशमी हमारा राष्ट्रीय पर्व है। यह प्रधानतया क्षत्रियों का त्योहार है। साधारण जनता इस पर्व को रामलीला के रूप में मनाती है। शुक्ल पक्ष की नवमी तक रामलीला होती है और दशमी को राम की सवारी बड़े सजधज के साथ निकलती है। इस दिन नीलकंठ पक्षी के दर्शन करना शुभ माना जाता है।

कथा—एक समय पार्वती ने महादेवजी से पूछा कि लोगों में जो दशहरे (विजयादशमी) का त्योहार प्रचलित है, इसका क्या फल है? शिवजी ने कहा कि आश्विन शुक्ल दशमी को नक्षत्रों के उदय होने पर विजय नामक काल होता है, जो सब कामनाओं को देनेवाला होता है। शत्रु को विजय करने वाले राजा को इसी समय प्रस्थान करना चाहिए। इस दिन यदि श्रवण नक्षत्र का योग हो तो और भी अच्छा है, क्योंकि मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् रामचन्द्रजी ने इसी विजय-काल में लंका पर

-चढ़ाई की थी। इसीलिए यह दिन पवित्र माना गया है और क्षत्रिय लोग इसको अपना मुख्य त्योहार मानते हैं। यदि शत्रु से युद्ध करने का प्रसंग भी हो, तो भी इस काल में राजाओं को अपनी सीमा का उल्लंघन अवश्य करना चाहिए। सम्पूर्ण दल-बल सजाकर पूर्व दिशा में जाकर शमी वृक्ष का पूजन करना चाहिए। पूजन करने वाला शमी के सम्मुख खड़ा होकर इस प्रकार ध्यान करे—हे शमी ! तू पापों का नाश करने वाला है और शत्रुओं को भी नष्ट करने वाला है। तूने अर्जुन के धनुष को धारण किया और रामचन्द्रजी से कैसी प्रिय वाणी कही।

यह सुनकर पार्वती बोलीं—"शमी ने अर्जुन का धनुष-बाण कब और किस कारण धारण किया तथा उसने रामचन्द्रजी से कैसी प्रिय वाणी कही, सो कृपाकर समझाइए।"

तब शिवजी बोले—"दुर्योधन ने पांडवों को इस शर्त पर वनवास दिया था कि वे बारह वर्ष प्रकट रूप में वन में फिरें, परन्तु एक वर्ष सर्वथा अज्ञात अवस्था में रहें। यदि इस वर्ष में उनको कोई जान लेगा तो उनको बारह वर्ष और भी वनवास भोगना पड़ेगा। उस अज्ञात-वास के समय अर्जुन अपना धनुष-बाण एक शमी वृक्ष पर रखकर राजा विराट के यहाँ विहडल-वेश में रहे थे। विराट् के पुत्र उत्तरकुमार ने गौवों की रक्षा के लिए अर्जुन को अपने साथ लिया और अर्जुन ने शमी के वृक्ष पर से अपने हथियार उठाकर शत्रुओं पर विजय प्राप्त की थी। शमी ने एक वर्ष पर्यन्त देवता की तरह अर्जुन के हथियारों की रक्षा की थी और जब विजयादशमी के दिन श्री रामचन्द्रजी ने लंका पर चढ़ाई करने के लिए प्रस्थान किया तब भी शमी ने कहा था कि आपकी विजय होगी, इसी कारण विजय-काल में शमी का पूजन होता है।"

राजा युधिष्ठिर के पूछने पर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने उनको समझाया था कि हे राजन् ! विजयादशमी के दिन राजा स्वयं अलंकृत होकर अपने दास लोगों का श्रृंगार करे और हाथी घोड़ों का श्रृंगार करे तथा गान-वाद्य द्वारा मंगलाचार करे। अपने पुरोहित को साथ लेकर पूर्व दिशा में

प्रस्थान करके अपनी सीमा के बाहर जाय और वहां वास्तु-पूजा करके अष्ट दिग्पालों एवं पार्थ देवता की वैदिक मन्त्रों से पूजा करे। तदनन्तर प्रधानतया शमी की पूजा करनी चाहिए। शत्रु की प्रतिकृति अर्थात् पुतला बनाकर उसके हृदय में बाण लगाये और पुरोहित लोग वेद-मंत्रों का उच्चरण करें। पूज्य ब्राह्मणों का पूजन करे तथा हाथी, घोड़ा, अस्त्र-शस्त्रादि सबका निरीक्षण भी करे यह सब क्रिया सीमान्त में करके बाजे-गाजे के साथ अपने महल को लौट आना चाहिए। जो राजा प्रति वर्ष इस विधि से विजया-पूजन करता है, वह सदैव अपने शत्रु पर विजय प्राप्त करता है।

४४/करवा-चतुर्थी-व्रत

कार्तिक कृष्ण चतुर्थी को करवा-चौथ कहते हैं। इस व्रत के करने का अधिकार केवल स्त्रियों को ही है। व्रत रखने वाली स्त्री को चाहिए कि प्रातःकाल शौचादि नित्य-क्रिया से निवृत्त होकर आचमन करके व्रत का संकल्प करे। व्रत का संकल्प करके चन्द्रमा की मूर्ति लिखे और उसके नीचे शिव, षण्मुख और गौरी की प्रतिमा लिखकर षोड़शोपचार से उनका पूजन करे।

पूजन के पश्चात् पुओं से भरे हुए तांबे या मिट्टी के कुल्हड़ ब्राह्मणों को दान करे। चन्द्रमा का उदय हो जाने पर अर्घ्य देकर नीचे लिखी कथा सुने—

कथा—एक समय अर्जुन कीलगिरि पर चले गये थे। उस समय द्रौपदी ने मन में विचार किया कि यहां अनेक प्रकार के विघ्न उपस्थित होते हैं और अर्जुन हैं नहीं, अब मैं क्या करूं। यह विचारकर द्रौपदी ने भगवान् कृष्णचन्द्र का ध्यान किया। भगवान् के पधारने पर उसने हाथ जोड़कर प्रार्थना की कि हे भगवन्! इस प्रकार के विघ्नों की शान्ति का यदि कोई सुलभ उपाय हो तो बताइए।

यह सुनकर श्रीकृष्ण बोले कि एक समय पार्वती ने शिवजी से ऐसा प्रश्न किया था, जिसके उत्तर में शिवजी ने उनको सर्व-विघ्न-विनाशक करवा-चतुर्थी का व्रत बतलाया था। इस कारण हे द्रौपदी ! यदि तुम भी करवा-चतुर्थी के व्रत को विधिपूर्वक करोगी तो सर्व विघ्नों का नाश होगा।

सूतजी ने कहा कि जब द्रौपदी ने व्रत का आचरण किया, तब कौरवों की पराजय होकर पाण्डवों की विजय हुई। इस कारण पुत्र, सौभाग्य और धन-धान्य की वृद्धि चाहने वाली स्त्रियों को इस व्रत को अवश्य ही करना चाहिए।

४५/अहोई आठें

कार्तिक कृष्ण-अष्टमी को लड़के की मां व्रत रहती है। सारे दिन का व्रत रखकर सब प्रकार की कच्ची रसोई विधिपूर्वक बनाई जाती है। संन्ध्या को दीवार में आठ कोष्ठक की एक पुतली लिखी जाती है। उसी के समीप सेई (साही) के बच्चों की और सेई की आकृति बनाई जाती है। जमीन में चौक पूरकर कलश की स्थापना की जाती है। रसोई का थाल लगाकर भोग के लिए तैयार रक्खा जाता है। विधिवत् कलशपूजन के बाद अष्टमी (दीवार में लिखी हुई चित्रकारी) का पूजन होता है। तब दूध-भात का भोग लगाया जाता है और नीचे लिखी कथा कही जाती है—

कथा—किसी स्त्री के सात लड़के थे। कार्तिक के दिनों में दीवाली के पूर्व अपने मकान की लिपाई-पुताई करने के लिए मिट्टी लाने वह बाहर गई थी। वह जहां मिट्टी खोद रही थी, उसी के नीचे सेई की मांद थी। दैवयोग से उस स्त्री की कुदाली सेई के बच्चे को लग गई, जिससे वह तुरन्त ही मर गया। यह देखकर स्त्री को बड़ी दया आई। पर वह तो

मर ही चुका था, अब क्या हो सकता था। इस कारण वह मिट्टी लेकर घर चली आई।

कुछ दिनों के बाद उसका लड़का मर गया। इसके बाद दूसरा लड़का भी मरा। यों ही सालभर के भीतर उसके सातों लड़के मर गये। इस दुःख से वह अत्यन्त दुःखी रहने लगी। एक दिन उसने वयोवृद्ध स्त्रियों में विलाप करते हुए कहा कि मैंने जानकर तो कोई पाप कभी नहीं किया। एक बार मिट्टी खोदने में धोखे से एक सेई के बच्चे को कुदाली लग गई थी। उसी दिन से अभी साल-भर भी पूरा नहीं हुआ, मेरे सातों लड़के मर गये।

तब वे स्त्रियां बोलीं कि आधा पाप तो तुम्हारा अभी कम हो गया जो तुमने चार के कान में बात डालकर पश्चात्ताप किया। अब जो रहा उसका प्रायश्चित्त यही है कि तुम उसी अष्टमी के दिन अष्टमी भगवती के समीप सेई और सेई के बच्चों के चित्र लिखकर उनकी पूजा किया करो। ईश्वर चाहेगा तो तुम्हारा हिंसा-पाप दूर होकर तुम्हें पुनः पूर्ववत् सन्तान की प्राप्ति होगी। यह सुनकर उस स्त्री ने आगामी कार्तिक कृष्ण-अष्टमी को व्रत किया। फिर वह बराबर उसी तरह व्रत और पूजन करती रही। ईश्वर की कृपा से पुनः उसको सात लड़के प्राप्त हुए। तभी से इस व्रत और पूजन की परिपाटी चली है।

४६/बछवांछ-व्रत

कार्तिक-कृष्ण द्वादशी को गोधूलि-वेला में, जब गायें चर कर जङ्गल से वापस आती हैं, तब उन (गायों) की पूजा की जाती है। विशेषतः लड़के की माता सारे दिन निराहार रहती है। संध्या को घर के आंगन में लीपकर चौक पूरा जाता है। उसी चौक में गाय खड़ी करके चन्दन अक्षत, धूप, दीप, नैवेद्य आदि से उसकी विधिवत् पूजा की जाती है।

अधिकांश कुल का आचार्य या कोई पंडित पूजा कराता है। इस व्रत के पूजन में धान का चावल वर्जनीय है। काकुन के चावल से पूजा होती है। उसी से मंत्राक्षत दिया जाता है। कोदों का चावल और चने की दाल तथा काकुन के चावलों के भोजन का महत्त्व है। पूजा की अठवाई बेसन से बनती है। गेहूँ और धान के अतिरिक्त कोई अन्न खाना व्रत वालों के लिए वर्जनीय नहीं है,परन्तु पृथ्वी का गड़ा हुआ कोई भी अन्न वर्जनीय है। गाय का दूध-मट्ठा भी व्रत वालों को न खाना चाहिए।

यह व्रत सभी के यहां नहीं होता। किसी के यहां प्रति तीसरे महीने अर्थात् कार्तिक, माघ, वैशाख और श्रावण चारों महीनों की कृष्ण-द्वादशी को होता है, परन्तु किसी-किसी के यहां श्रावण मास में चार बार पूजन होता है।

बछवांछ या बछवांस दोनों शब्द 'वत्सवंश' के अपभ्रंश मालूम होते हैं। कार्तिक में वत्सवंश की पूजा का रिवाज सारे भारतवर्ष में है। मालूम होता है जिस किसी के यहां दीवाली के त्योहार में कोई खोट होने से पूजन नहीं हो सकता, उसके यहां धन-तेरस के पूर्व द्वादशी को पूजन हो जाता है—कथा की कल्पना भी इसी से मिलता-जुलता आशय सूचित करती है।

४७/धनतेरस

कार्तिक कृष्ण त्रयोदशी को धनतेरस कहते हैं। इसकी प्राचीनता का प्रमाण वैदिक साहित्य में भी पाया जाता है। यमराज वैदिक देवता हैं। धन-त्रयोदशी को यमराज का पूजन होता है, विधि इस प्रकार है—हल जुती हुई मिट्टी को दूध में भिगो सेमर वृक्ष की डाली में लगाये और उसको तीन बार अपने शरीर पर फेरकर कुंकुम का टीका लगाये। पुनः कार्तिक स्नान करे। प्रदोष के समय मठ, मन्दिर, कुवां, बावली,

घाट, कोट, बाग, मार्ग, गोशाला, अश्वशाला और गजशाला आदि स्थानों में तीन दिन पर्यन्त बराबर दीपक रखना चाहिए। यदि तुला राशि का सूर्य हो, तो चतुर्दशी और अमावस्या की शाम को एक जली लकड़ी लेकर तथा उसको घुमाकर पितरों को भी मार्ग दिखाने का विधान है। अमावस्या के दिन प्रातः-काल तैलाभ्यंग करना चाहिए। देव-पूजा समाप्त कर पार्वण श्राद्ध करना और उल्का दर्शन तथा लक्ष्मी-पूजन करने के उपरान्त भोजन करना चाहिए। धन-तेरस के सम्बन्ध में निम्नलिखित किम्वदन्ती लोक में प्रचलित है :

कथा—एक दिन यमराज ने अपने दूतों से पूछा कि मेरी आज्ञा-नुसार जब तुम प्राणियों के प्राण-हरण करते हो, तब तुमको किसी समय किसी के प्राण-हरण करने में दया भी आती है या नहीं ? यदि कभी तुमको दया आई है तो कब और कहां ? यमराज के ऐसे वचन सुनकर दूत बोले कि हंस नाम का एक बड़ा भारी राजा था। वह किसी समय शिकार के लिए वन में गया। दैवात् राजा अपने साथियों से बिछुड़कर और मार्ग भूलकर हेम राजा के राज्य में चला गया। हेम राजा ने महाराजा हंस का उचित स्वागत-सत्कार किया। उसी समय हेम राजा के यहां पुत्र उत्पन्न हुआ। परन्तु छठी के पूजन में देवी ने प्रत्यक्ष होकर कहा कि तुम्हारा यह लड़का चार दिन बाद मर जायगा। जब राजा हंस को यह ज्ञात हुआ तब उसने हेमराज के पुत्र को मृत्यु से बचाने के लिए उसे यमुनाजी के एक खोह में छिपाकर रक्खा। परन्तु युवा होने पर जब उसका विवाह हुआ, तब विवाह के ठीक चौथे दिन हम लोगों ने उसके प्राणों को हरण किया। हे नाथ ! मांगलिक समारोह में ऐसी शोक-जनक घटना का होना वास्तव में अत्यन्त घृणित कार्य था। परन्तु क्या करते, हम लोग परतन्त्र थे ! इसलिए आप कृपा करके ऐसी युक्ति बतलाएं, जिससे प्राणी इस प्रकार अनायास, आपत्ति से उद्धार पा सके। यह वचन सुनकर यमराज ने विधिपूर्वक धन-तेरस के पूजन और दीपदान का विधान बतलाकर कहा कि जो लोग धन-तेरस के दिन मेरे लिए दीप-

दान और व्रत करेंगे, उनकी असामयिक मृत्यु कदापि न होगी।

४८/नरक-चतुर्दशी

कार्तिक मास की कृष्णा चतुर्दशी को नरक-चतुर्दशी का व्रत होता है। इस तिथि पर प्रात काल दिन निकलने से प्रथम ही प्रत्यूष काल में स्नान करना चाहिए। जो मनुष्य इस तिथि में अरुणोदय के पश्चात् स्नान करता है, उसके वर्ष-भर के शुभ कार्यों का नाश होता है। इस पर्व में जो स्नान किया जाय, वह तैलाभ्यंग-पूर्वक होना चाहिए और अपामार्ग का भी शरीर पर प्रोक्षण करना चाहिए।

अपामार्ग को शरीर पर स्पर्श कराकर सर्व बन्धुजनों के सहित स्नान करे। स्नान के पश्चात् शुद्ध वस्त्र पहनकर तिलक लगा, कार्तिक-स्नान-कर तथा यमराज को तर्पणकर तीन-तीन जलांजलि देनी चाहिए। जिसका पिता जीवित हो उसको भी यह तर्पण करना चाहिए। पुनः सायंकाल को दीपदान करना भी उचित है। दीपदान विधि को त्रयोदशी से अमावस्या-पर्यन्त तीन दिवस करना लिखा है। इसका कारण यह है कि वामन भगवान् ने क्रमशः इन्हीं तीन दिनों में राजा बलि की पृथ्वी को नापा था। पृथ्वी नापने के पश्चात् वामन भगवान् के ऐसे वचन सुनकर बलि ने प्रार्थना की कि महाराज! मुझको तो किसी वरदान की आकांक्षा नहीं, परन्तु लोगों के कल्याण के निमित्त एक वरदान मांगता हूं—अर्थात् कार्तिक कृष्ण त्रयोदशी, चतुर्दशी और अमावस्या, इन तीन दिनों में आपने मेरा राज्य नापा है, अतः जो मनुष्य मेरे राज्य में चतुर्दशी के दिन यमराज के हेतु दीपदान करे, उसको यम-यातना न होनी चाहिए और जो मनुष्य इन तीन दिनों में दीपावली करे, उसके घर को श्रीलक्ष्मी-जी कभी न छोड़ें। राजा बलि की प्रार्थना सुनकर भगवान ने कहा कि जो मनुष्य तीन दिनों में दीपोत्सव और महोत्सव करेगा, उसको छोड़कर मेरी प्रिया लक्ष्मी कहीं अन्यत्र न जायंगी।

४९/लक्ष्मी-पूजन-दीपावली

कार्तिक की अमावस्या को यह त्योहार होता है। इस दिन लक्ष्मी-पूजन का विधान है। लक्ष्मी-पूजन की विधि सनत्कुमार-संहिता के आधार पर लिखी जाती है।

कथा—एक समय ऋषियों ने सब मुनीश्वरों से कहा कि हे मुनीश्वरो! अमावस्या के दिन प्रातःकाल ही स्नानकर शक्तिपूर्वक पितृदेव एवं देवताओं का पूजन करे और दधि, क्षीर तथा घी से पर्वण श्राद्ध करके यथा-विधि ब्राह्मणों को भोजन कराये। रोगी और बालक के सिवा अन्य किसी व्यक्ति को दिन में भोजन न करना चाहिए। सन्ध्या समय प्रदोष-काल में लक्ष्मीजी का पूजन करना चाहिए। नाना प्रकार के स्वच्छ और नवीन वस्त्रों से लक्ष्मीजी का मण्डप बनाकर पत्र, पुष्प, तोरण, ध्वजा और पताका आदि से उसको सुसज्जित करे तथा उसमें अनेक देवी-देवताओं के समेत भगवती लक्ष्मी का षोड़शोपचारपूर्वक पूजन करे। पूजन के अन्त में परिक्रमा करनी चाहिए।

मुनीश्वरों ने पूछा कि हे सनत्कुमार! लक्ष्मी के साथ-साथ सब देवताओं के पूजन का क्या कारण है? तब सनत्कुमार ने उत्तर दिया कि राजा बलि के कारागार में लक्ष्मी समस्त देवी-देवताओं के समेत बन्धन में थीं। आज के दिन विष्णु भगवान ने उन सबको कैद से छुड़ाया था और देवता बन्धन-मुक्त होते ही श्री लक्ष्मीजी के साथ क्षीर-सागर में जाकर सो गये थे। इस कारण अब हमको उनके शयन का अपने-अपने घरों में ऐसा प्रबन्ध कर देना चाहिए कि वे क्षीर-सागर की ओर न जाकर स्वच्छ स्थान और सुकोमल शय्या को पाकर यहीं सो रहें। अतः रेशम से बने हुए सुन्दर पलंग पर कोमल गद्दा बिछाकर उस पर सफेद चादर बिछाये। नवीन तकिया और रजाई लगाकर कमल-पुष्पों का मण्डप बनाये, क्योंकि लक्ष्मी का निवास-स्थान कमल-पुष्प ही है। हे मुनीश्वरो! जो लोग लक्ष्मी का इस प्रकार से स्वागत

करते हैं, उनको छोड़कर वह अन्यत्र कहीं नहीं जातीं। इसके विरुद्ध जो लोग आलस्य और निद्रा में पड़कर सो जाते हैं, श्रद्धापूर्वक लक्ष्मीजी का पूजन नहीं करते, वे सदैव दरिद्रता के शिकार बने रहते हैं।

रात्रि के समय लक्ष्मी के पूजन में उनका आवाहन करे और गाय के दूध का खोया बनाकर उसमें मिश्री, लवंग, इलायची, कपूर आदि डालकर उसके लड्डू बनाकर लक्ष्मी को भोग लगाये। इसके अतिरिक्त देशकालानुसार भोज्य, भक्ष्य, पेय, चोष्य चारों प्रकार के पदार्थ तथा फूलादि लक्ष्मी को अर्पण करके तब दीप-दान करे। कुछ दीपकों को सर्वानिष्ट-निवृत्ति के हेतु अपने मस्तक पर घुमाकर चौराहे वा श्मशान में रखवा दे। नदी, पर्वत, महल, वृक्षमूल, गौवों के खिड़क (खरका) या चबूतरा आदि स्थानों में भी दीपक रखना चाहिए। यदि सम्भव हो तो घर के ऊपर भी दीपकों का एक वृत्त बनाना चाहिए। ऊपर जो ब्राह्मण-भोजन कराना लिखा है, वह भी इसी समय होना चाहिए।

राजा को चाहिए कि दूसरे दिन प्रातःकाल गांव के सब बालकों को डौंडी पिटवाकर कहला दे कि आज गांव के सब बालक नाना प्रकार का खेल-खेलें। जब बालक क्रीड़ा करें तब इस बात की खबर रखनी चाहिए कि वे लोग क्या-क्या खेलते हैं। यदि सब बालक या कुछ बालकों का समूह आग जलाकर खेले और उस आग में ज्वाला प्रगट न हो तो जानना चाहिए कि इस वर्ष महामारी या घोर दुर्भिक्ष पड़ने की आशंका है। यदि बालक दुःख प्रकाश करें तो राजा को दुख होगा। यदि सुख करें तो सुख होगा। यदि बालक आपस में लड़ें तो राजयुद्ध होने की सम्भावना होती है। और यदि बालक रोयें तो अनावृष्टि की आशंका की जानी चाहिए। यदि बालक लकड़ी का घोड़ा बनाकर खेलें तो जानना चाहिए कि अपनी किसी अन्य राज्य पर विजय होगी। यदि बालक लिंग पकड़कर क्रीड़ा करें तो जानना चाहिए कि व्यभिचार अधिकता से फैलेगा और यदि बालक अन्न या पानी चुरायें तो अकाल पड़ने की आशंका समझनी चाहिए। इस प्रकार शकुन देखना

चाहिए। इस अवसर पर इन तीन दिनों में जुआ खेलने का भी विधान है। परन्तु स्मरण रहे कि इन तीन दिनों में नरक-स्वरूप दैत्यराज बलि का राज माना जाता है, जिसमें लक्ष्मी और सब देवी-देवताओं को कष्ट सहन करना पड़ा था। अतः अधर्मी राज में अधर्म करना ही श्रेयस्कर माना गया है। अर्धरात्रि के समय राजा को भी नगर की शोभा देखने के लिए निकलना चाहिए।

५०/अन्नकूट

कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा को अन्नकूट का महोत्सव किया जाता है। यह महोत्सव जिस रूप में आजकल होता है, वह श्रीकृष्ण भगवान् के अवतार के पश्चात् द्वापर युग से आरम्भ हुआ है। परन्तु वास्तव में यह महोत्सव अति प्राचीन है। इसका सम्पूर्ण वृत्तान्त नीचे लिखी कथा में वर्णन किया जाता है :

कथा—एक समय एक महर्षि ने कहा कि हे ऋषियो, कार्तिक मास के शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा को अन्नकूट तथा गोवर्द्धन का पूजन करके श्रीविष्णु भगवान् को प्रसन्न करना चाहिए। ऋषियों ने महर्षि की इस बात को सुनकर पूछा कि हे भगवन् ! यह गोवर्द्धन कौन हैं और इसकी पूजा का क्या फल है, उसे कृपाकर कहिए। तब महर्षि ने नीचे लिखी कथा सुनाई :

एक समय श्रीकृष्ण भगवान् अपने समस्त ग्वालबालों समेत गौओं को चराते हुए गोवर्द्धन पर्वत की तराई में जा पहुंचे। वहां पहुंचकर सब ग्वालों ने अपनी-अपनी पोटली खोलकर रोटियां खानी शुरू कीं। भोजन करने के उपपान्त सब ग्वालों ने वन में नाना प्रकार की लताओं का संग्रह करके एक मण्डप बनाना चाहा। श्रीकृष्ण भगवान् के पूछने पर उन्होंने बताया कि आज व्रज में बड़ा आनन्द होगा। घर-घर पक्वान्न-भोजन तैयार हो रहा होगा। इस पर कृष्ण भगवान् ने कहा

कि देव-पूजा करनी है तो अच्छी बात, परन्तु यदि देवता प्रत्यक्ष आकर पक्वान्न भोजन करता हो, तो तुमको अवश्य यह उत्सव मनाना चाहिए। गोपों ने श्रीकृष्ण के ऐसे वचनों से दुःखी होकर कहा कि आपको इस प्रकार देवता की निन्दा न करनी चाहिए। यह किसी सामान्य देवता का महोत्सव नहीं है, किन्तु तैंतीस कोटि देवताओं के अधिपति, वृत्रासुर-जैसे भारी असुर के संहारकर्त्ता और मेघमण्डल के अधिपति महाराज इन्द्र का इन्द्रोज नामक यज्ञ है। जो मनुष्य श्रद्धापूर्वक इस इन्द्र-मख को करता है, उसके देश में अतिवृष्टि और अनावृष्टि न होकर प्रजा सुख भोगती है। इसलिए आप भी इस यज्ञ को आनन्दपूर्वक कीजिए, यही हम लोगों की प्रार्थना है।

भगवान् कृष्ण ने गोपों की ऐसी बातें सुन हँसकर कहा कि यह गोवर्द्धन पर्वत ही सुभिक्ष एवं वृष्टि का कारण है। इसकी पूजा मथुरा और गोकुल के लोगों ने पहले की है और हम गोप लोगों का प्रत्यक्ष हितकर्ता भी यही है। अतः मैं इसको इन्द्र से भी बलवान् जानकर इसी का पूजन करना उचित समझता हूं। कृष्ण की इस बात पर बहुत-से गोप सहमत हो गये और घर पर जाकर उन्होंने इतस्ततः श्रीकृष्ण की बात का मण्डन किया। परिणाम यह हुआ कि नन्दरानी (यशोदा) की प्रेरणा से नन्दजी ने सब गोप-ग्वालों की एक सभा कराई और कृष्ण को बुलाकर उनसे पूछा कि इन्द्र की पूजा से और उसकी तुष्टि से तो सुभिक्ष होकर प्रजा सुखी होती है, परन्तु गोवर्द्धन की पूजा से क्या लाभ होगा, उसे बतलाओ। इसके उत्तर में श्रीकृष्ण भगवान् ने गोवर्द्धन पर्वत की प्रशंसा की और उसकी उपयोगिता बताकर कहा कि प्रत्यक्ष में हम लोग गोप हैं। हमारी आजीविका का विशेष सम्बन्ध गोवर्द्धन पर्वत से ही है। अतः मेरी समझ में इसी की पूजा करनी योग्य है। भगवान् श्रीकृष्णजी के ऐसे सारगर्भित वचन सुनकर सब गोप-ग्वाल अपने-अपने घरों में बने हुए पक्वान्न और दही-दूध लेकर गोवर्द्धन-पर्वत की उपत्यका में जा पहुंचे और श्रीकृष्ण भगवान् की बताई हुई विधि से गोवर्द्धन-पर्वत की पूजा

करने लगे।

श्रीकृष्ण ने अपने आधिदैविक रूप से पर्वत में प्रवेश किया। उस समय गिरिराज ने व्रजवासियों के दिए हुए सब पदार्थों को भक्षण किया तथा उन सबको आशीर्वाद भी दिया, जिससे सब गोपाल अपने यज्ञ को सफल हुआ समझकर अति प्रसन्न हुए।

जिस समय व्रजवासी गोवर्द्धन-पूजन का उत्सव मना रहे थे, उसी समय नारदजी इन्द्र-महोत्सव देखने की इच्छा से वहां आ पहुंचे। उनके पूछने पर व्रजवासियों ने उत्तर दिया कि इस वर्ष श्रीकृष्ण भगवान् की इच्छानुसार इन्द्रोज को स्थगित करके गोवर्द्धन की पूजा की गई है। इतना सुनकर नारदजी उसी समय इन्द्रलोक को चले गये और कुछ म्लानमुख होकर इन्द्र से बोले कि गोकुल के निवासी गोप लोगों ने आपके इन्द्रोज को बन्द करके आपसे बलवान् गोवर्द्धन की पूजा की है। आज से यज्ञादिकों में तो उसका भाग हो ही गया, परन्तु क्या आश्चर्य है कि थोड़े ही समय की कृष्ण की संगति से वे तुम्हारे ऊपर चढ़ाई कर दें और इन्द्रासन भी उनके अधिकार में चला जाय।

नारदजी तो यह कहकर चले गये, परन्तु इन्द्र के मन को बहुत क्षोभ हुआ। अपनी अवज्ञा को न सह सकने के कारण देवराज ने मेघों को आज्ञा दी कि वे गोकुल पर प्रलय-काल जैसी मूसलाधार वर्षा करें और ब्रज-मण्डल का सर्वनाश कर दें। मेघों ने इन्द्र की आज्ञा पाकर जब ब्रज पर मूसलाधार वृष्टि आरम्भ की, तब सब गोप-ग्वाल घबराकर श्रीकृष्ण की शरण में गये और रक्षा के लिए प्रार्थना की।

श्री कृष्ण भगवान ने गोप-गोपिकाओं के आर्त्तनाद को सुनकर कहा कि तुम सब गोवर्द्धन-पर्वत की शरण में चलो। वही तुम्हारी रक्षा करेगा। जब सब ब्रजवासी गोकुल से निकलकर गोवर्द्धन की उपत्यका में गये तब श्रीकृष्ण ने गोवर्द्धन को छतरी की तरह अपने हाथ पर उठा लिया और सब गोप-गोपी उसी की छाया में मेघों की वृष्टि से बच गये। मेघों ने सात दिन तक अपार वृष्टि की, परन्तु सुदर्शन-चक्र के प्रभाव

से ब्रजवासियों पर एक बूंद भी जल न पड़ा । यह कौतुहल देखकर तथा ब्रह्मा के द्वारा श्रीकृष्णावतार की बात जानकर इन्द्र स्वयं ब्रज में आकर श्रीकृष्ण के चरणों पर गिर पड़ा और अपनी मूर्खता पर पश्चात्ताप करके क्षमाप्रार्थना करने लगा। इस प्रकार अपने अपराध को क्षमा कराकर देवराज इन्द्र चले गये। श्रीकृष्ण ने सातवें दिन गोवर्द्धन को नीचे रखा और ब्रजवासियों से कहा कि अब तुम लोग प्रतिवर्ष इसी प्रकार गोवर्द्धन का पूजन करके अन्नकूट-उत्सव मनाया करो। तभी से अन्नकूट का उत्सव प्रचलित हुआ है ।

५१/भ्रातृ-द्वितीया

भ्रातृ-द्वितीया को 'भैयादूज' भी कहते हैं। यह पर्व कार्तिक शुक्ल द्वितीया को मनाया जाता है। इसका प्रधान ध्येय भाई-बहन का मेल है। इस दिन भाई बहन के घर आकर भोजन करता है। बहन भाई की पूजा करती है। इस दिन गोधन कूटा जाता है। गोबर से एक मनुष्य की आकृति बनाकर उसकी छाती पर ईंट रखी जाती है और उस पर स्त्रियां मूसल का प्रहार करती हुई उसे तोड़ती हैं। कूटने से पहले कहानियां कही जाती हैं। घर-घर स्त्रियां गूम, भटकटैया और चना लेकर सरापती हैं। इसके पश्चात् वे अपनी जीभ को भटकटैया के कांटे से दागती हैं। यह सब मध्याह्न के पूर्व ही होता है। इसके पश्चात् बहन अपने भाई के घर जाती है। पहले वह उसे पूजे हुए चने, उसके बाद मिठाई खिलाती है। कभी वह भाई को ही अपने यहां आमंत्रित करती है। मिठाई खाने के बाद भाई अपनी बहन को भेंट देता है। इस प्रकार यह भाई-बहन का त्योहार है ।

कहा जाता है कि इसी दिन यमुना अपने भाई यमसे मिलने के लिए गयी थी। यमराज ने बहन पर प्रसन्न होकर उसे यह वर दिया था कि

जो व्यक्ति इस दिन यमुना स्नान करेगा वह यमलोक नहीं जायगा। इस दिन मथुरा में विश्राम घाट पर स्नान करने का बड़ा माहात्म्य है। लाखों की संख्या में लोग वहां जाते हैं और यमुना-जल में स्नान करते हैं।

५२/सूर्य-षष्ठी व्रत

कार्तिक शुक्ल षष्ठी को सूर्य षष्ठी व्रत होता है। इसे 'डाला छठ' भी कहते हैं। यह व्रत पुत्र के होने पर होता है। पुत्र की दीर्घायु के लिए यह किया जाता है। इसमें तीन दिन उपवास करना पड़ता है। इस व्रत को करने वाली स्त्री को पंचमी के दिन एक बार अलोना भोजन करना पड़ता है। दूसरे दिन षष्ठी को बिना जल के स्त्रियां रहती हैं। उस दिन संध्या को अर्घ्य दिया जाता है। स्त्रियां विविध प्रकार के फल, नारियल, केला और मिठाई आदि पूजा के लिए ले जाती हैं। घाट पर सब स्त्रियां कीर्तन करती हैं और कुछ रात बीतने पर घर आती हैं। रातभर जागरण होता है। दूसरे दिन प्रात:काल वे फिर घाट पर जाती हैं और नदी अथवा तालाब में नहाकर गीत गाती हैं। गीत का विषय सूर्य का उगना ही रहता है। सूर्य भगवान् के उदय होने पर अर्घ्य दिया जाता है। तब यह व्रत समाप्त होता है। इस व्रत में षष्ठी को सायं-काल और सप्तमी को प्रात:काल सूर्योदय होने पर अर्घ्य देने का विधान है।

कथा—एक वृद्ध स्त्री थी। उसके सन्तान नहीं थी। कार्तिक शुक्ल सप्तमी के दिन उसने यह संकल्प किया कि यदि उसके पुत्र होगा तो वह व्रत का पालन करेगी। सूर्य की कृपा से उसे पुत्र उत्पन्न हुआ, पर उसने व्रत नहीं किया। लड़का विवाह योग्य हो गया फिर भी उसने व्रत नहीं किया। अन्त में उसका विवाह भी हो गया। विवाह करके लौटते समय एक जंगल में वर-वधू ने डेरा डाला। उस समय वधू ने पालकी में अपने पति को मरा पाया। इससे वह रोने लगी। उसका रोना सुनकर एक

वृद्धा उसके पास आई और कहने लगी कि मैं ही छटी माता हूं। तुम्हारी सास सदा मुझे फुलसाती रही है। मेरी पूजा उसने नहीं की। मैं तुम्हारे पति को इस समय जिला देती हूं। घर जाकर अपनी सास से इस सम्वन्ध में पूछना। उसके इतना कहते ही वर जी उठा। वधू ने घर पहुंच कर सास से सब बातें कहीं। सास ने अपनी भूल स्वीकार की और सूर्य-षष्टि का व्रत करने लगी। तभी से यह व्रत प्रसिद्ध हुआ।

५३/देवोत्थानी एकादशी

कार्तिक शुक्ल एकादशी को देवठन या देठवन भी कहते हैं। कहा जाता है कि इस दिन क्षीर सागर में सोये हुए विष्णु भगवान् जागे थे।

इसके सम्बन्ध में कथा प्रचलित है कि भाद्रपद मास की एकादशी को विष्णु भगवान् ने शंखासुर नामक महाबली राक्षस को मारा था और विपुलप रिश्रम करने के कारण उसी दिन सो गये थे। उसके बाद कार्तिक शुक्ल एकादशी को जागे थे। विधि-पूर्वक विष्णु भगवान् की पूजा ही इस व्रत का मुख्य ध्येय है।

किसी-किसी प्रान्त में इसी दिन इक्षु (ईख) के खेतों में जाकर सिन्दूर, अक्षत और आभूषण आदि से ईख की पूजा करते हैं और तत्पश्चात् इसी दिन पहले-पहल ईख चूसते हैं।

५४/तुलसी विवाह

कार्तिक शुक्ल पक्ष की एकादशी ही के दिन तुलसी विवाह का भी उत्सव होता है। तुलसी का दूसरा नाम ही विष्णु-प्रिया है। विष्णु भगवान् की स्वर्ण-मूर्ति में प्राण प्रतिष्ठा कराने के बाद उसे पुष्पादि से सजाकर गाजे-बाजे के साथ तुलसी-वृक्ष के सजीव ले जाते हैं और वहां विधिपूर्वक

उनका विवाह कराया जाता है। उस समय स्त्रियां विवाह के गीत आदि भी गाती हैं। इसके सम्बन्ध में पद्म-पुराण की यह कथा प्रचलित है :

कथा—जालन्धर नामक दैत्य के एक परम रूपवती पतिव्रता स्त्री थी। उसका नाम था वृन्दा। स्त्री के पतिव्रत से वह विश्व-विजयी बना हुआ था। उसके भय से ऋषियों ने भगवान् विष्णु से प्रार्थना की कि जालन्धर हमारे धर्मानुष्ठान में विघ्न डालता है। विष्णु भगवान् ने उसकी स्त्री का पतिव्रत नष्ट करके उसका बल क्षीण करने की ठान ली। भगवान् ने वृन्दा के आंगन में किसी मुर्दे का शरीर फेंकवा दिया। वृन्दा उसे पति का शरीर समझकर विलाप करने लगी। उसी समय एक साधु ने आकर मृत शरीर को जीवित कर दिया और वृन्दा ने उसका आलिंगन किया। पीछे वृन्दा को मालूम हुआ कि यह सब विष्णु का छल है। उसका पति तो देवलोक में इन्द्र से युद्ध कर रहा है। वृन्दा का सतीत्व नष्ट होते ही उसका पति युद्ध में हार गया और वह सचमुच मारा गया। इस पर क्रुद्ध होकर वृन्दा ने विष्णु भगवान् को शाप दिया कि जिस प्रकार तुमने मुझे पति-वियोगिनी बनाया है, वैसे ही तुम भी स्त्री-वियोगी बनोगे। इसके बाद वृन्दा जालन्धर के साथ सती हो गई।

विष्णु भगवान् अपने छल पर लज्जित हुए। इस पर देवताओं ने उन्हें समझाया और श्रीपार्वती ने वृन्दा की चिता-भस्म में तुलसी, आंवला और मालती के वृक्ष लगाये। इसमें से तुलसी को भगवान् विष्णु ने वृन्दा का रूप समझा और उसे अपनाया। वृन्दा के शाप से भगवान् को रामावतार में स्त्री-वियोग सहना पड़ा। भगवान की प्रसन्नता के लिए प्रतिवर्ष तुलसी का विवाह उनके साथ कराया जाता है।

५५/भीष्म-पंचक

यह व्रत कार्तिक शुक्ल एकादशी से आरम्भ होकर पूर्णिमा को समाप्त

होता है। इसलिए इसे भीष्म-पंचक कहते हैं।

एकादशी को प्रातःकाल स्नानादि करके पापों के नाश और धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष की प्राप्ति के लिए इस व्रत का संकल्प करे। घर के आंगन अथवा नदी के तट पर चार दरवाजों वाला मण्डप बनाकर उसे गोवर से लीपे और तत्पश्चात् सर्वतोभव की वेदी वनाकर उस पर तिल-युक्त घट की स्थापना करे। पांचों दिन लगातार रात-दिन घी के दीपक जलाये, जाप करे और १०८ आहुतियां दे। इस व्रत की कथा इस प्रकार है :

कथा—राजर्षि भीष्म पितामह महाभारत में जिस समय शर-शय्या पर सो रहे थे, उसी समय भगवान् कृष्ण को साथ लेकर पांचों पाण्डव उनके पास गये। उपयुक्त अवसर समझकर धर्मराज युधिष्ठिर ने भीष्म पितामह से प्रार्थना की कि आप लोगों को कुछ उपदेश दें। युधिष्ठिर की इच्छानुसार पितामह ने पांच दिन तक राज-धर्म, वर्ण-धर्म और मोक्ष-धर्म आदि का महत्वपूर्ण उपदेश दिया। उनका उपदेश सुनकर भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा कि "आपने जो कार्तिक शुक्ल ११ से पूर्णिमा तक पांच दिन उपदेश दिए हैं, उन्हें सुनकर मैं बहुत प्रसन्न हूं। इसलिए आपकी स्मृति स्थापित करने के लिए मैं 'भीष्म-पंचक' व्रत स्थापित करता हूं।"

५६/कार्तिकी पूर्णिमा

कार्तिक की पूर्णिमा को 'त्रिपुरी पूर्णिमा' भी कहते हैं। इस दिन गंगा स्नान और दीप-दान का विशेष महत्त्व है। इस तिथि पर यदि कृत्तिका नक्षत्र हो तो महाकार्तिक होती है और भरणी हो तो विशेष फल देती है। रोहिणी होने पर इसका फल और भी अधिक है। इसी दिन सायंकाल के समय भगवान् का मत्स्यावतार हुआ था। इसलिए इस दिन दिये गए दान का दस यज्ञों के समान फल होता है। यदि इस दिन

कृत्तिका का चन्द्रमा और विशाखा का सूर्य हो तो पद्मक नामक योग होता है जो पुष्कर में भी दुर्लभ है। इस दिन चन्द्रोदय के समय शिवा, संभूति, संतति आदि ६ कृत्तिकाओं का पूजन करना चाहिए। कार्तिकी पूर्णिमा की रात्रि में व्रत करके यदि वृष का दान किया जाय तो शिव-पद की प्राप्ति होती है। इस दिन उपवास करके भगवान का स्मरण करने से अग्निष्टोम के समान फल मिलता है और सूर्य-लोक की प्राप्ति होती है। इसी प्रकार यदि इस दिन स्वर्ण का मेष दान किया जाय तो ग्रहयोग के कष्ट नष्ट हो जाते हैं। प्रत्येक पूर्णिमा को रात्रि में व्रत और जागरण करने से सम्पूर्ण मनोरथ सिद्ध होते हैं।

कथा—कहा जाता है कि इसी तिथि पर शिवजी ने त्रिपुरा राक्षस को मारा था। एक बार त्रिपुरा राक्षस ने एक लाख वर्ष तक प्रयागराज में तप किया जिससे सब चराचर और देवता भयभीत हो उठे। अन्त में सब देवताओं ने अप्सराओं को उसका तप भ्रष्ट करने के लिए भेजा। परन्तु वह उनके फन्दे में नहीं आया। यह देखकर स्वयम् ब्रह्मा उसके पास गए और उससे वर माँगने के लिए कहा। उसने मनुष्य अथवा देवता द्वारा न मारे जाने का वरदान मांगा। ब्रह्मा के इस वरदान से त्रिपुरा निर्भय होकर अत्याचार करने लगा। देवताओं के षड़यंत्र से उसने एक बार कैलाश पर चढ़ाई की। इससे शिव और त्रिपुरा में भयंकर युद्ध हुआ। अन्त में शिवजी ने ब्रह्मा और विष्णु की सहायता से उसका वध किया। तब से इस दिन का महत्व वढ़ गया। इसी दिन त्रिपुरोत्सव भी होता है। इस दिन क्षीर-सागर दान का विशेष महत्व है। क्षीर-सागर का दान २४ अंगुल के पात्र में दूध भर कर तथा सोने या चांदी की मछली छोड़कर किया जाता है।

५७/काल भैरवाष्टमी

मार्गशीर्ष के कृष्ण-पक्ष की अष्टमी को भैरवाष्टमी अथवा काल-

भैरवाष्टमी कहते हैं। इसी तिथि पर मध्याह्न के समय भैरवजी का जन्म हुआ था। अतः इस दिन मध्याह्न व्यापनी तिथि लेनी चाहिए। इस व्रत के करने से व्रती सब पापों से मुक्त हो जाता है। भैरवजी का वाहन कुत्ता है और उनका हथियार दण्ड है। इसलिए उनको 'दण्डपाणि' भी कहते हैं। अतः जो उनकी पूजा करता है वह उनके नगर काशी में जाने पर सुरक्षित रहता है। काशी में भैरवजी के अनेक मन्दिर हैं जिनमें से काशी में कालभैरव अधिक प्रसिद्ध हैं।

मार्गशीर्ष के कृष्ण पक्ष की अष्टमी को रात्रि में जागरण करने का बड़ा माहात्म्य है। मध्य रात्रि में धूमधाम से शंख, घंटा, नगाड़ा आदि बजाकर कालभैरव की आरती करनी चाहिए, रात्रि में शिवजी की कथा सुननी चाहिए। भैरव के लिए रविवार और मंगलवार दिन ग्राह्य हैं। इसलिए यदि यह इन दिनों में पड़ जाती है, तो इसका विशेष महत्व है। भैरवजी की पूजा के साथ उनके वाहन कुत्ता का भी पूजन होता है। भक्त उसे भी मिष्ठान्न, दूध, दही आदि देते हैं। भैरवनाथ और विश्वनाथ दोनों एक ही भगवान शंकर के दो रूप हैं। एक है विकट मूर्ति और दूसरी है सौम्य मूर्ति। सौम्य रूप से भगवान शंकर जगत की रक्षा करते हैं और विकट रूप से अपराधियों को दण्ड देते हैं।

५८/दत्तात्रेय-जन्मोत्सव

भारत के पौराणिक इतिहास में दत्तात्रेय अपनी बहुलता के लिए प्रख्यात हैं। दत्तात्रेय के तीन सिर और छः भुजाएं मानी गई हैं। उन्हें ब्रह्मा, विष्णु, महेश तीनों देवताओं की संयुक्त मूर्ति भी मानते हैं। उनका जन्मोत्सव मार्गशीर्ष कृष्ण दशमी को नीचे लिखी कथा कहकर मनाया जाता है :

कथा—एक समय ब्रह्मा की स्त्री सवित्री, विष्णु की स्त्री लक्ष्मी और शिव की स्त्री पार्वती को अपने-अपने पतिव्रत और सद्गुणों पर गर्व

हो गया। नारद से यह अभिमान भला कब देखा जाता? उन्होंने झट पार्वती के पास जाकर कहा कि मैं संसार भर में भ्रमण करता हूँ, किन्तु अत्रि मुनि की स्त्री अनुसूया के समान पतिव्रता और सद्गुण-सम्पन्न स्त्री मैंने कहीं नहीं देखी। यह सुनकर पार्वती को ईर्ष्या हुई। नारदजी के विदा होते ही उन्होंने शिवजी से अनुसूया का व्रत भंग कर देने की प्रार्थना की।

पार्वती से विदा लेकर नारदजी ब्रह्मलोक को गए और वहां भी सावित्री से अनुसूया की प्रशंसा की। उन्हें भी यह बात नहीं भाई और उन्होंने ब्रह्माजी से अनुसूया का चारित्र डिगा देने का आग्रह किया।

ब्रह्मलोक से चलकर नारदजी विष्णुलोक पहुंचे। वहां भी उन्होंने लक्ष्मी के सामने अनुसूया की प्रशंसा के पुल बांध दिये। फल यह हुआ कि लक्ष्मी ने भी विष्णु से कहा कि जिस प्रकार हो, आप अनुसूया का पतिव्रत भंग कर दें।

संयोग-वश तीनों देवता एक ही समय अनुसूया की कीर्ति नष्ट करने के लिए अत्रि मुनि की कुटी के पास पहुंचे। भिक्षुकों के वेश में जाकर उन्होंने अनुसूया से भिक्षा मांगी। अनुसूया जब भिक्षा देने आई, तब उन्होंने कहा कि हम तो भिक्षा न लेकर इच्छानुसार भोजन करेंगे। अनुसूया ने स्वीकार कर लिया और कहा कि आप लोग नदी में स्नान करके आइये, तब तक मैं भोजन बना रखती हूं। स्नान करके आने के बाद जब अनुसूया ने उन्हें भोजन परोसा तब उन्होंने खाने से इन्कार कर दिया और कहा कि जब तक तुम हमारे सामने नग्न होकर भोजन न परोसोगी, तब तक हम भोजन न करेंगे। यह सुनकर अनुसूया पहले तो क्रुद्ध हुई, पर विचार करने पर अपने पतिव्रत के बल से उसे देवताओं के कपट की बात मालूम हो गई। वह अपने पति अत्रि मुनि के पास गई और उनका पैर धोकर वही जल देवताओं के ऊपर डाल दिया। उस जल के पड़ते ही तीनों देव बाल-रूप हो गये। तब अनुसूया ने नग्न होकर उन्हें भरपेट दूध पिलाया और फिर तीनों को पालने में झुलाने लगी।

इधर जब बहुत दिन हो जाने पर तीनों देवता वापस न आये, तब उनकी स्त्रियां चिन्तित हुईं। अकस्मात् तीनों की भेंट नारदजी से हो गई। उन्होंने अपने पतियों का पता नारद से पूछा। नारद ने कहा कि एक दिन मैंने उन तीनों को अत्रि मुनि के आश्रम की ओर जाते देखा था।

तीनों स्त्रियां अत्रि मुनि के आश्रम पर पहुंचीं और उन्होंने अनुसूया से पूछा कि यहां हमारे पति आये थे? अनुसूया ने पालने की ओर इशारा करके कहा कि वही तुम्हारे पति हैं। अपने-अपने भर्त्ता को पहचान लो। तीनों बच्चे एक समान थे। लक्ष्मी ने ध्यान-पूर्वक देखा और एक बच्चे को विष्णु समझकर उठा लिया, किन्तु वह शिव निकले। इस पर लक्ष्मी का बड़ा उपहास हुआ।

यह दशा देख लक्ष्मी, पार्वती और सावित्री ने अनुसूया से हाथ जोड़कर प्रार्थना की कि हमें अपने-अपने पति को अलग-अलग प्रदान करो। अनुसूया ने कहा कि उन्होंने हमारा दूध पीया है, इसलिए वे हमारे बच्चे हैं और उन्हें हमारे बच्चे बनकर रहना पड़ेगा।

इस प्रकार तीनों देवताओं के संयुक्त अंश से एक मूर्ति बन गई, जिसके तीन सिर और छः भुजाएं थीं। इस प्रकार दत्तात्रेय का जन्म हुआ। इसके बाद अनुसूया ने अपने पति के चरण धोये और वही जल उन बच्चों पर छोड़ दिया, जिससे तीनों देवताओं को पुनः अपना पूर्व-रूप प्राप्त हो गया। प्रसिद्ध है कि दत्तात्रेय ने चौबीस गुरुओं से विविध प्रकार का ज्ञान प्राप्त किया था। इसकी कथा पुराणों में दी हुई है।

५९/औसान बीबी की पूजा

'औसान बीबी की पूजा अशुद्ध है। इसका शुद्ध रूप है—अवसान विधि की पूजा। इस देश में विवाह के अन्त में सात या पांच सौभाग्यवती स्त्रियों का निमन्त्रण करके उनके सौभाग्य का पूजन होता है। उसी को 'औसान बीबी की पूजा' कहते हैं। विवाह के अतिरिक्त अन्य

कार्य की सकुशल समाप्ति के पश्चात् भी सुहागनियों के न्योतने की चाल है। कार्तिक-स्नान के बाद या मलमास स्नान के बाद भी कोई-कोई 'ग्रौसान बीबी की पूजा' करती है। तात्पर्य यह कि कार्य-सिद्ध के बाद यह पूजा होती है। पूर्वी प्रान्तों में इसे 'ग्रचानक देवी' का व्रत कहते हैं।

पूजा के दिन सवेरे पांच या सात सौभाग्यवती स्त्रियों को भोजन करने का निमन्त्रण दे दिया जाता है। प्रायः मध्याह्न के समय स्त्रियां बुलाई जाती हैं। उनके एकत्रित हो जाने पर किसी उत्तम स्थान में एक गोलाकार चौक पूरा जाता है। उस चौक पर गेहूं बिछाकर मिट्टी की सात ठिलियां चक्राकार रक्खी जाती हैं। उन्हीं ठिलियों पर सिंदूर लगाकर एक मिट्टी के कोरे घड़े में जल भर कर कलश स्थापित किया जाता है। उस कलश का पूजन होता है।

पूजन के पहले ही ग्रामन्त्रित सुहागिनों का उबटन स्नान कराके श्रद्धानुसार उनको वस्त्र ग्रौर ग्राभूषण से ग्रलंकृत किया जाता है। तब वे सब पूजा के कलश को घेरकर बैठती हैं। पंचांग-पूजन के बाद सुहागिनें हाथों में अक्षत लेती हैं। पूजा करने वाली यदि सधवा है, तो स्वयं पूजा में सम्मिलित होती है। यदि विधवा है, तो अलग रहती है। तब कथा कही जाती है। कथा समाप्त होते ही कलश पर ग्रक्षत छोड़े जाते हैं। तब कलश के पास वाली मिट्टी की ठिलियों पर का सिंदूर सुहागिनों के ललाट में लगाया जाता है। भुने चने ग्रौर गुड़ का प्रसाद वितरण किया जाता है। इसके बाद उनको भोजन कराकर विदा किया जाता है। रात में कीर्तन होता है। इसकी कथा नीचे लिखी जाती है :

कथा—कोई भाई-बहन थे। भाई को चिड़ियों के पालने का बड़ा शौक था। वह रात-दिन उन्हीं की सेवा-संभाल में लगा रहता था। जब उसकी सगाई पक्की हुई, तब वह दिन-प्रतिदिन दुबला होने लगा। उसकी ऐसी दशा को देखकर बहन ने उससे पूछा कि ज्यों-ज्यों तुम्हारे विवाह के दिन पास ग्राते हैं, त्यों-त्यों तुम दुबले क्यों हुए जाते हो? वह बोला

कि मुझे किसी बात का दुःख तो है नहीं; केवल इसी बात की चिन्ता मुझे लगी रहती है कि विवाह में जब मेरी बारात जायगी, तब तीन-चार दिन यहां मेरी चिड़ियो को चारा-पानी कौन देगा। यदि इनकी सेवा-संभाल में जरा भी सुस्ती या लापरवाही हुई तो, मेरी अति परिश्रम से पाली हुई चिड़ियां बेमौत मर जायंगी।

बहन ने कहा कि तुम इस बात की तनिक भी चिन्ता मत करो। तुम्हारी चिड़ियों को चारा-पानी मैं दूंगी। जब तक तुम विवाह करके लौट आओगे, तब तक मैं तुम्हारी चिड़ियों को किसी प्रकार तकलीफ न होने दूंगी।

कुछ दिनों बाद बारात चली। भाई दूल्हा बनकर चला गया। बहन ने चिड़ियों के चारा-पानी का जिम्मा ले तो लिया, पर व्याह के दिन घर के नेग-चार के काम में व्यस्त रहने के कारण वह समय पर चिड़ियो को चारा-पानी न दे सकी। जब नेग-चार के कामो से अवकाश पाकर वह चिड़ियाखाने में गई, तब देखती क्या है कि अधिकतर चिड़ियां मरी पड़ी हैं। यह देखकर वह बड़े संकट में पड़ गई। मन ही मन वह औसान बीबी का स्मरण करने लगी और कहने लगी कि हे देवी ! यदि आपकी कृपा से चिड़ियां जी उठें, तो मैं दुरैयां कराऊंगी। दैवयोग से मरी हुई सब चिड़ियां जी उठीं। तब बहन ने उनको चारा-पानी दिया।

चिड़ियो को चारा-पानी देकर वह बाहर चली आई और अपने दरवाजे पर यह विचार कर खड़ी हो गई कि यदि कोई इधर से निकले तो उससे कुछ चने भुना मंगाऊ और फिर सुहागिनें न्योत बुलाऊं। इसी समय उसके सामने से बारात निकली। लड़की ने बारातियों को सम्बोधित करके कहा कि कोई मेरे चने भुनाकर ला दो। बारातियों ने इन्कार कर दिया। वह कुछ न बोली।

उस गांव से आगे चलकर बारात ने एक जगह विश्राम लिया। उसी जगह बारात का दूल्हा आप ही आप मूर्च्छित हो गया। लड़की अपने दरवाजे पर खड़ी ही थी, इतने में एक मुर्दे की अर्थी निकली। लड़की

ने मुर्दे के साथ जाने वालों से कहा कि कोई मेरे चने भुना कर लादो, तो मैं सुहागिनें न्योत बुलाऊं। उनमें से किसी ने कहा—क्या हर्ज है, इसके चने भुनाने में कुछ देर भी हो जायेगी, तो हानि नहीं। मुर्दा जलाने को अभी बहुत समय है। उधर कुछ लोग चने भुनाने गये, इधर मुर्दा अर्थी पर से उठकर बैठ गया। लोगों ने बड़ी श्रद्धापूर्वक लड़की को दैवीभाव से नमस्कार करके कहा कि बहन! यह तुमने क्या जादू किया जो मुर्दा जी उठा? उसने जवाब दिया कि यह सब मैं क्या जानूं मेरी दुरैया जानें, औसान बीबी जानें। मैंने औसान बीबी से प्रार्थना की थी कि मेरे भाई की मरी हुई चिड़ियां जी उठें। वे जी उठीं, तब मैं उनकी पूजा के प्रसाद के लिये चने भुनाने चली थी। तुम लोगों ने मुझे चना भुना-कर ला दिये और तुम्हारा मुर्दा जी उठा। यह सब उन्हीं औसान बीबी की माया है। इधर इस लड़की ने घर में जाकर सुहागिनें न्यौतीं, उधर जिनका मुर्दा जी उठा था, उन लोगों ने भी सुहागिनों को न्यौत बुलाया और औसान बीबी की विधिवत् पूजा की।

जिन लोगों का दूल्हा अचेत हो गया था वे लोग उसी जगह से वापस आये। उनमें जो वयोवृद्ध और चतुर मनुष्य थे, उन्होंने लड़की से पूछा कि तूने हमारे दूल्हे को क्या कर दिया जो वह अपने आप अचेत हो गया? तब लड़की ने कहा कि मैं क्या जानूं, मेरी औसान बीबी जानें। जिन लोगोंने उनकी पूजा के लिए चने भुना कर ला दिये, उनका मुर्दा जी उठा और तुमने इन्कार किया, सो तुम्हारा दूल्हा अचेत हो गया, तो इसके लिए मैं क्या करूं। तब वे लोग बोले कि हमको पूजा की विधि बता दो। हम भी घर पहुंचकर औसान बीबी की पूजा करेंगे। लड़की ने उनको पूजा करने की विधि बतला दी।

पूजा का संकल्प करते ही दूल्हा चंगा हो गया। बारात जनवासे की ओर गई। विवहा सकुशल पूर्ण हुआ। तब उन लोगों ने सात सुहागिनें न्योत करके आंचल भरे और औसान बीबी की विधिवत् पूजा की। इधर जब लड़की का भाई ब्याह करके घर आया, तब लड़की की माता

ने भी औसान बीबी का पूजन किया।

उसी समय से विवाह के अंत में औसान बीबी की पूजा की परिपाटी चली है।

६०/प्रदोष-व्रत

प्रदोष का अर्थ है रात्रि का आरंभ। इसी समय इस व्रत के पूजन का विधान है। अतः इसे प्रदोष का व्रत कहते हैं। यह व्रत प्रत्येक मास की त्रयोदशी को किया जाता है। इसे स्त्री और पुरुष दोनों करते हैं। सन्तान की कामना इस व्रत का मुख्य उद्देश्य है। इसके उपास्य देवता हैं महादेव शंकर। प्रदोष-काल में उन्हीं का विधिवत् पूजन होता है। इस व्रत में सांयकाल शंकर का पूजन करके भोजन करना चाहिए। व्रती को एक भुक्त ही रहना चाहिए। दोनों पक्षों की अपेक्षा कृष्ण पक्ष का प्रदोष व्रत यदि शनिवार को पड़ता है तो यह 'शनि प्रदोष' विशेष फलदायक होता है। सोमवार शंकरजी का दिन है। इसलिए यदि प्रदोष सोमवार को पड़ता है तो उसे 'सोमवार प्रदोष' कहते हैं। श्रावण मास का प्रत्येक सोमवार प्रदोष के लिए अत्यन्त उपादेय माना गया है। प्रदोष व्रत की कथा इस प्रकार है :

कथा—प्राचीन काल में एक ब्राह्मणी अपने पति के मर जाने के कारण भीख मांगने लगी। वह अपने पुत्र के साथ प्रातःकाल ही भीख मांगने के लिए निकल जाती और सायंकाल घर आती थी ! एक दिन उसे विदर्भ का राजकुमार मिला जो अपने पिता की मृत्यु हो जाने पर मारा-मारा फिर रहा था। ब्राह्मणी उसे अपने घर लाई और उसका पालन-पोषण करने लगी। एक दिन ब्राह्मणी दोनों बालकों को लेकर शांडिल्य ऋषि के आश्रम में गयी और उनसे शंकर के पूजन की विधि जानकर घर आई। वह प्रदोष व्रत करने लगी।

एक दिन दोनों बालकों ने एक वन में गंधर्व कन्याओं को क्रीड़ा

करते देखा। ब्राह्मण बालक तो घर आ गया, पर राजकुमार नहीं आया। वह अंशुपति नाम की एक गंधर्व कन्या से बातें करने लगा। दूसरे दिन वह घर से फिर उसी स्थान पर गया। वहां अंशुपति अपने माता-पिता के साथ बैठी थी। उसके माता-पिता ने उससे कहा कि तुम विदर्भ-नगर के राजकुमार धर्मगुप्त हो और हम तुम्हारे साथ शंकर की आज्ञा से अपनी पुत्री अंशुमती का विवाह करेंगे। इस प्रकार राजकुमार का विवाह अंशुमती के साथ हो गया। इसके पश्चात् उसने गंधर्व राज विद्रविक की सेना लेकर विदर्भ नगर पर अधिकार कर लिया। वह प्रदोष व्रत का फल था। उसी समय से प्रदोष के व्रत की संसार में प्रतिष्ठा हुई।

६१/सातों वार के व्रत

रविवार, सोमवार और मंगलवार इन तीनों वारों के व्रतों का तो अधिक प्रचार हिन्दू-समाज में है, पर बुद्ध, बृहस्पति, शुक्र, और शनि, इन चार वारों के व्रत यदा-कदा प्रवीजन पाकर किये जाते हैं। वस्तुत: मलमास और कार्तिक में स्नान करने वाली स्त्रियां सातों वारों के व्रत करती हैं। प्राय: रविवार और मंगलवार के व्रतों में फलाहार किया जाता है।

१. रविवार का व्रत—रविवार के व्रत में नमक का भोजन और तैल का सेवन निषेध है। रविवार के व्रतों में पारण फलाहार करने वाले को उचित है कि सूर्य का प्रकाश रहते भोजन कर ले। यदि निराहार अवस्था में सूर्य अस्त हो जाय, तो दूसरे दिन सूर्योदय तक व्रत रखना उचित है। व्रत में फलाहार हो या पारण, भोजन एक बार से अधिक न करना चाहिए। व्रत के अन्त में पूजन के बाद रविवार की कथा इस प्रकार कही जाती है :

कथा—कोई सास-बहू थी। बहू का पति स्वयं सूर्य का अवतार था।

वह सदैव अन्तर्द्धान रहा करता था। समय पर घर आता और फिर चला जाता था। वह जब कभी आता-जाता, तब-तब एक हीरा अपनी मां को और एक अपनी स्त्री को दे जाया करता था। उसी से उनका खर्च चलता था। उस पुरुष का नाम भी सूर्य-बली था।

एक दिन सूर्य बली की माता से उससे कहा कि तुम जो कुछ देते हो, उससे हमारे खाने-पीने को भी पूरा नहीं पड़ता। यह सुनकर लड़के ने कहा कि मैं जो हीरा तुमको देता हूं, उसके मूल्य से तुम्हारा उम्र-भर खाना-पीना चल सकता है। परन्तु तुम फिर भी भूखी रहती हो। इससे स्पष्ट होता है कि तुम्हारी नीयत दुरुस्त नहीं है। तुमको अपने भरण-पोषण के सिवाय अपने कर्त्तव्यों का कुछ ध्यान ही नहीं है। इसी कारण तुम्हारा अघाव नहीं होता और इसी से मैं घर में नहीं ठहरता हूं। तब सास-बहू दोनों ने कहा कि अब से हम लोग नियम-पूर्वक कातिक-स्नान किया करेंगी।

उन्होंने बारह वर्ष तक विधिपूर्वक कातिक स्नान किया। बारहवें वर्ष बहू ने अपने पति सूर्यबल से कहा कि अब हमको कातिक का उद्यापन (शान्ति) करना है। आप इसका प्रबन्ध कर दीजिए। तब सूर्यबली की इच्छा करते ही उनका घर धन-धान्यादि सब सामग्री से परिपूर्ण हो गया। प्रातःकाल कातिक का पूजन करके बहू ने सास को सूर्य भगवान् का पूजन किया। तब सूर्य भगवान ने दर्शन देकर कहा कि जो वर मांगना हो, मांग लो। स्त्री ने कहा कि मेरा पति मुझसे दूर-दूर रहता है, सो मुझे उसके संयोग का वरदान दिया जाय। इस पर सूर्य 'तथास्तु' कहकर अन्तर्द्धान हो गये।

रात्रि होते ही सूर्यवती ने मां से कहा कि आज मैं घर में ही सोऊंगा। यह सुनकर बहू को प्रसन्नता हुई। उसने अच्छी तरह से सेज संवारी। उसका पति आकर उस पर लेट रहा। सूर्य देवता मनुष्य के रूप में शयन करने लगे तो सारे संसार में अन्धकार हो गया। मनुष्यों की बात ही क्या है; सुर, मुनि, नाग, गन्धर्वादि व्याकुल होकर बुढ़िया

के घर दौड़ते आये। सबने बुढ़िया की शुश्रूषा करके कहा कि अपने पुत्र को जगाओ। उसने शयनागार के पास जाकर पुत्र को बुलाया। तब वह उठकर बाहर चला आया। उसने देवताओं से कहा कि जब तक ये सास-बहू कार्तिक नहाएं, तब तक इनके घर गंगा बहें और ऋद्धि-सिद्धियाँ इनके घर वास करें। तब देवताओं ने सर्वसम्मति से सूर्य भगवान् का आदेश स्वीकार किया। तभी से स्त्री-समाज में कार्तिक-स्नान का विशेष माहात्म्य माना गया। कार्तिक स्नान करने वाली स्त्री के घर सम्पूर्ण देवताओं और ऋद्धि-सिद्धियों का वास रहता है तथा कार्तिक-स्नान से सम्पूर्ण पापों का नाश होता है और अन्त में स्वर्ग का वास होता है।

कार्तिक-स्नान करते हुए भी यदि रविवार का व्रत विधिवत न किया जाय तो कार्तिक-स्नान का फल नहीं प्राप्त होता।

कार्तिक के अतिरिक्त जब दूसरे महीनों के सम्बन्ध में, जैसे माघ, वैशाख आदि के स्नान और व्रत में, यह कथा कही जाती है, तब कार्तिक के स्थान में अपेक्षित महीने का नाम योजित कर दिया जाता है।

२. सोमवार का व्रत—साधारणतया सोमवार का व्रत दिन के तीसरे पहर तक रखा जाता है। इस व्रत में फलाहार या पारण का कोई खास नियम नहीं है। किन्तु यह जरूरी है कि दिन-रात में केवल एक ही बार भोजन किया जाय। सोमवार के व्रत में शिव-पार्वती का पूजन होता है। कार्तिक-स्नान करने वाली स्त्रियां सोमवार को जो कथा कहती हैं, वह सोमवती अमावस्या से सम्बन्ध रखती हैं।

इसके सम्बन्ध में यह प्रथा है कि भले घर की स्त्रियां सोमवती अमावस्या को पीपल के या तुलसी के वृक्ष की एक सौ आठ परिक्रमा करती हैं। सौभाग्यवती स्त्रियां संपूर्ण शृंगार करके तुलसी की परिक्रमा देती हुई, कोई पदार्थ, जैसे लड्डू, छुहारा, आम, अमरूद इत्यादि फल या नगद पैसा, एक-एक प्रत्येक परिक्रमा के अन्त में तुलसी या पीपल के वृक्ष पर रखती जाती हैं। यह परिक्रमाओं की गणना की विधि है। पुनः वह पदार्थ ब्राह्मणों में वितरण कर दिया जाता है। परिक्रमा कर

चुकने के बाद धोबिन की मांग सिंदूर से भरकर उसके ललाट में बूंदा लगाया जाता है। उसके आंचल में कुछ मिठाई और पैसे डालकर सौभाग्यवती उसके पैर पड़ती है। तब धोबिन अपनी मांग का सिन्दूर पैर पड़ने वाली की मांग में लगा देती है और अपने ललाट का बूंदा भी लगा देती है। इसी को सुहाग देना कहते हैं। इसके उपलक्ष में जो कथा कही जाती है वह इस प्रकार है—

कथा—एक घर में मां-बेटी और बहू तीन स्त्रियां थीं। उस घर में प्रायः एक साधु भीख मांगने आया करता था। जब कभी बहू उसे भीख देने जाती, तब वह भीख लेकर उसे यह आशीर्वाद दिया करता था कि दूधो नहाओ, पूतों फलों। परन्तु जब लड़की भीख देने जाती, तब साधु कहा करता था कि धर्म बढ़े गंगा स्नान।

एक दिन लड़की ने अपनी माता से कहा कि जो साधु भीख लेने आता है, वह हम दोनों को दो तरह से आशीर्वाद दिया करता है। यह सुनकर माता ने एक दिन बाबा से प्रश्न किया कि आप लड़की को जो आशीर्वाद देते हैं, उसका क्या आशय है? तब साधु ने कहा कि इस लड़की का सौभाग्य खंडित है। इसी कारण मैं ऐसा कहता हूँ। इस पर माता ने साधु से कुछ उपाय पूछा। साधु ने कहा कि तुम्हारे गांव की जो सोना नाम की धोबिन है, उसके घर की यह लड़की टहल किया करे। यदि और कुछ न बन पड़े तो जहां उसके गधे बंधते हैं, उसी जगह को यह रोज झाड़-बुहार कर साफ कर दिया करे। वह पतिव्रता स्त्री है। उसके आशीर्वाद से इस लड़की का सौभाग्य अटल हो सकता है।

साधु यह सलाह देकर चला गया। वह लड़की उसी के दूसरे दिन से सोमा धोबिन के घर जाकर नित्य गधों की लीद उठाकर फेंक आती और थान साफ करके चली आती थी। धोबी-धोबिन दोनों को आश्चर्य था कि हमारे गधों की थान कौन साफ कर जाता है। एक दिन यह रहस्य जानने के लिए धोबिन छिपकर बैठ रही। ज्योंही लड़की गधे की लीद फेंक चुकी और झाड़ू लेकर झाड़ने लगी, त्योंही धोबिन ने

उसका हाथ पकड़ लिया और उससे कहा कि तू भले घर की लड़की है, मेरी टहल करने क्यों आती है ? तब लड़की ने साधु की कही हुई सब बातें उसे बताईं। सोमा धोबिन ने उसे आशीर्वाद देकर विदा किया। पुनः उसके घर जाकर उसकी माता से कहा कि जब इस लड़की की शादी हो तब फेरे (भांवरें) पड़ने के समय मुझे बुला लेना। मैं इसको अपना सौभाग्य दूंगी।

कालान्तर से जब लड़की के विवाह का समय आया, तब उसकी माता ने सोमा धोबिन को निमन्त्रण दिया। सोमा अपने घर से लड़की के घर जाते समय अपने परिवार के लोगों से कह गई कि मेरी गैरहाजिरी में यदि मेरा पति मर जाय, तो जब तक मैं न आऊं, उसकी दाह-क्रिया न करना। जिस समय सोमा ने लड़की की मांग में अपनी मांग का सिंदूर लगाया, उसी समय उसका पति मर गया। घर के लोगों ने विचारा कि यदि वह आ जायगी, तो अधिक विलाप-कलाप करेगी। संभव है कि पति के साथ सती होने को तैयार हो जाय। इसलिए यही उचित है कि उसके आने से पहले लाश को जला दिया जाय। इसी विचार से वे धोबी की लाश को रथी पर रख कर ले चले।

इधर लोग धोबी के शव को लिए हुए श्मशान की ओर जा रहे थे, उधर से सोमा घर को वापस आ रही थी। उसने पूछा कि यह क्या है और कहां लिए जा रहे हो ? लोगों ने कहा कि तेरे पति को जलाने के लिए ले जाते हैं। पास ही एक पीपल का पेड़ था। धोबिन ने अपने पति के शव को उसी जगह रखवा लिया। उसके हाथ में उस समय बेई (मिट्टी का पुरवा जो ब्याह के घर से उसे मिला था) थी। उसने उसको फोड़कर उसके एक सौ आठ टुकड़े किए। अपने पतिव्रत-धर्म का ध्यान और शिव-पार्वती का स्मरण करते हुए उसने पीपल के वृक्ष की एक सौ आठ परिक्रमा कीं। इसके बाद जब उसने अपनी पैती (तर्जनी) चीरकर अपना रक्त पति के शव पर छिड़क दिया तब वह उठ बैठा।

कहा जाता है कि इसी घटना के बाद विवाह में धोबिन से सुहाग

के लिए आने की प्रथा चली है। कार्तिक-स्नान के सम्बन्ध में स्त्रियां जो सोमवार को तुलसी या पीपल की परिक्रमा करती हैं, उसकी विधि इस प्रकार है—पहले सोमवार को धान और पानी से परिक्रमा की जाती है दूसरे को दूध के पिंड से, तीसरे को वस्त्र से और चौथे को धातु के वर्तन और जेवर से। जिसको यह सब करने की गुंजाइश नहीं होती, वे किसी भी चीज से परिक्रमा करके विधि पूरी करती हैं।

३. मंगलवार का व्रत—मंगल को लाल चन्दन, माला, फल, गेहूं, गुड़ मिश्रित पकवान प्रिय हैं। अड़हुल के लाल फूल, लाल वस्त्र और लाल चन्दन से उनकी पूजा की जाती है। व्रती को दिन में एक वार भोजन करना चाहिए। २१ सप्ताह तक यह व्रत करने से मंगल-दोष का नाश होता है।

कथा—एक बुढ़िया थी। वह प्रत्येक मंगल को व्रत किया करती थी उसके पुत्र का नाम मंगलिया था। मंगल के दिन बुढ़िया न तो लीपती थी और न मिट्टी खनतो थी। एक दिन मंगल देवता साधु का वेश धारण कर उसके घर आये और आवाज लगाई। बुढ़िया ने वाहर आकर जवाब दिया कि हमारा एक बालक है। वह गांव में खेलने चला गया है। मैं गृहस्थी का काम कर रही हूं। क्या आज्ञा है कहिए ? तब साधु बोला कि मुझको बड़ी भूख लगी है। भोजन वनाना है। इसके लिए तू थोड़ी-सी जमीन लीप दे, तो तुझको बड़ा पुण्य होगा। यह सुनकर बुढ़िया ने जवाब दिया कि आज तो मैं मंगल व्रती हू। इस कारण लीप तो नहीं सकती, कहिए तो पानी छिड़क कर चौका लगा दूं। उसी जगह आप रसोई वना लें।

साधु ने कहा कि मैं तो गोबर से लिपे हुए चौके में रसोई वनाता हूं। बुढ़िया ने कहा कि जमीन लीपने के सिवाय और जिस तरह से कहिए, मैं आपकी सेवा करने को तैयार हूं। तब बाबा ने फिर कहा कि खूब सोच-समझ कर कहो जो कुछ भी मैं कहूं, तुझे करना होगा। इस पर बुढ़िया ने तीन वार यह वचन दिया कि जो कुछ भी आप कहेंगे, मैं

करूंगी। तब साधु बोला कि अपने लड़के को बुलाकर औंधा लिटा दे। उसी की पीठ पर मैं भोजन बनाऊंगा। बाबा की बात सुनकर बुढ़िया चुप रह गई। बाबा ने फिर कहा कि माई! बुला ला लड़के को, अब सोच-विचार क्या करती है?

बुढ़िया 'मंगलिया' 'मंगलिया' कहकर पुकारने लगी। थोड़ी देर में लड़का आ गया। बुढ़िया ने कहा कि जा तुझे बाबा बुलाता है। लड़के ने बाबा के पास जाकर पूछा—"क्या है महाराज?" बाबा ने कहा कि जा अपनी मां को बुला ला। बुढ़िया आई तो बाबा ने उससे कहा कि तू ही लड़के को लिटा दे और अंगीठी लगा दे। बुढ़िया ने मंगल देवता का स्मरण करते हुए लड़के को औंधा लिटा दिया और उसकी पीठ पर अंगीठी लगा दी। फिर उसने बाबा से कहा कि अब आपको जो कुछ करना हो कीजिए, मैं जाकर अपना काम करूंगी।

साधु ने लड़के की पीठ पर लगी हुई अंगीठी में आग जलाई और उसी पर भोजन बनाया। जब भोजन बन चुका, तब उसने बुढ़िया को बुलाकर कहा कि अब अपने लड़के को बुला ला; वह भी भोग प्रसाद ले जाय। बुढ़िया बोली कि यह कैसे आश्चर्य की बात है कि उसी की पीठ पर आपने आग जलाई, और उसी को अब प्रसाद के लिए बुला रहे हैं। क्या यह सम्भव है कि वह अब भी जीता बचा हो? कृपा करके अब तो आप मुझे उसका स्मरण भी न कराइए। आप भोग लगाइए और जहां जाना हो जाइए।

साधु के बहुत समझाने और आग्रह करने पर बुढ़िया ने ज्योंही आवाज लगाई, त्योंही लड़का एक ओर से दौड़ता हुआ आ गया। साधु ने लड़के को प्रसाद दिया और कहा कि माई! तेरा व्रत सफल है। तेरे हृदय में दया है और अपने इष्ट के प्रति अटल विश्वास तथा निष्ठा है। इस कारण तेरा कभी कोई अनिष्ट नहीं हो सकता।

४. बुधवार का व्रत—बुधवार को शंकरजी का पूजन करना चाहिए और एक वार खाना चाहिए। इस दिन हरी वस्तुओं का भोग विशेष

फलदायक होता है। हरी वस्तुओं का दान भी देना शुभ है।

कथा—एक बनिया दूर-दूर तक वाणिज्य व्यापार करने जाया करता था। एक दिन बनिये की गैरहाजिरी में बुध के दिन उसकी स्त्री के गर्भ से एक सुन्दर बालक पैदा हुआ। बनिये को विदेश में फिरते हुए बारह वर्ष बीत गए। इस बीच उसने बहुत धन पैदा किया। अपने परिश्रम से पैदा की हुई सम्पत्ति को गाड़ियों में भरकर वह घर की ओर चला। जब वह अपने गांव के समीप पहुंचा तब एक जगह उसकी गाड़ियां अटक गईं। बनिए ने गाड़ी चलाने के लिए यथा-साध्य सब उपाय किए, परन्तु बैल अपनी जगह से तिल भर भी नहीं हटे। अन्त में उसने आसपास के गांवों से बड़े-बड़े पंडितों को बुलाकर उनसे उपाय पूछा। पंडितों ने विचार कर कहा कि यदि बुधवार के दिन का उत्पन्न हुआ कोई बालक गाड़ियों को हाथ लगा दे तो संभव है कि गाड़ियां चल जायं। निदान वह बनिया अपने ही गांव में जाकर स्त्रियों से पूछने लगा। स्त्रियों ने कहा कि जैसा बालक चाहते हो, वैसा तो तुम्हारे ही घर में मौजूद है। उसी को ले जाओ और अपनी गाड़ी चला लो।

स्त्रियों के कहने से वह अपने घर की ओर चला गया। अपने द्वार पर पहुंच कर उसने देखा कि एक सुन्दर बालक खेल रहा है। उसने बालक से पूछा कि तुम किसके लड़के हो? उसने उसी का नाम बतला दिया। तब बनिया बोला कि मैं ही तुम्हारा पिता हूं। मेरी गाड़ियां अटक गई हैं, उन्हें चलकर हाथ लगा दो। लड़का तुरन्त पिता के पास चला गया। उसने ज्योंही गाड़ियों में हाथ लगाया, त्योंही गाड़ियां चलने लगीं।

घर जाकर बनिये ने बड़ी खुशी मनाई। लड़के के सब संस्कार कराये और बहुत-सा दान-पुण्य किया। तभी से यह प्रसिद्ध है कि बुधवार का जन्मा हुआ लड़का बड़ा प्रतापी और बुद्धिमान् होता है। जो काम पिता से नहीं बन पड़ता, उसे पुत्र पूरा कर देता है। कहा जाता है कि उसी समय से स्त्रियों में बुधवार का व्रत रहने की परिपाटी चली है।

५. बृहस्पतिवार का व्रत— इस दिन बृहस्पतेश्वर महादेव की पूजा

होती है। पीला फूल, पीला चन्दन, पीला फल, पीली दाल से उनकी पूजा होती है। पीली वस्तुओं का दान शुभ है। और कर्म निषिद्ध है।

कथा—एक बड़ा धनवान साहूकार था। उसकी स्त्री बड़ी कंजूस थी। कभी दान-पुण्य नहीं करती थी। एक बृहस्पतिवार के दिन एक साधु उसके द्वार पर भिक्षा मांगने आया। उस समय वह अपने घर का आंगन लीप रही थी। साधु ने आवाज लगाई, पर उसे उसने कुछ नहीं दिया। साधु चला गया। दूसरे दिन साधु फिर आया। उस दिन स्त्री लड़के को खिला रही थी। इसलिए उसे उस दिन भी उसने कुछ नहीं दिया। साधु बेचारा फिर चला गया। तीसरे दिन भी उसने साधु को टाल देना चाहा। तब साधु ने उससे पूछा कि क्या किसी समय तुमको फुरसत नहीं रहती ? यदि ऐसा हो जाय कि तुमको हमेशा फुरसत रहे, तब तो तुम मुझको दक्षिणा दे सकोगी ? स्त्री बोली कि यदि ऐसा हो जाय तो आपकी बड़ी कृपा होगी। बाबा ने कहा कि तब तुम मेरा कहना करो। बृहस्पतिवार के दिन सब घर का कूड़ा झाड़कर गाय-भैंसों की थान में लगा दिया करो। फिर सिर से स्नान किया करो और अपने घर वालों से कह दो कि वे लोग बृहस्पतिवार को अवश्य बाल बनवाया करें। तुम जब रसोई बनाया करो तब सिद्ध हुए सब पदार्थ चूल्हे के सामने न रख कर चूल्हे के पीछे रखा करो। और शाम को कुछ देर के बाद दिया जलाया करो। इन सब कामों को लगातार चार बृहस्पतिवार करने से ईश्वर चाहेगा तो तुमको फिर कोई काम करने को न रहेगा, काफी अवकाश रहा करेगा। परन्तु मुझे दक्षिणा दिया करना। स्त्री ने कहा कि यदि आपकी बताई तरकीब से मुझको काफी अवकाश मिला, तो अवश्य दक्षिणा दूंगी।

बाबा विधि बतला कर चला गया। साहूकारिन उसके कहे अनुसार सब काम करने लगी। कुछ दिनों के बाद उसकी यह दशा हो गई कि उसके घर जो धन-धान्य का ढेर लगा रहता था, वह समाप्त हो गया और उसे खाने-पीने के भी लाले पड़ गये। कुछ दिनों के बाद फिर वही

साधु आया और उसने पूर्ववत् आवाज लगाई। साहूकारिन तुरन्त बाहर दौड़ी आई और फिर बाबाजी के पैरों पर गिर कर बोली कि आपने अच्छी विधि बताई। अब तो मुझे खाने को भी अन्न नहीं मिलता। तुमको दक्षिणा दूं तो कहां से दूं ?

बाबा ने कहा कि जब तुम्हारे घर में सब कुछ था, तब भी तुम दक्षिणा नहीं देती थीं। अब तुमको काफी अवकाश है, तब भी कुछ नहीं देतीं। अब क्या चाहती हो, सो कहो। तब स्त्री ने हाथ जोड़कर प्रार्थना की और कहा कि मुझे आप ऐसी युक्ति बताइए, जिससे मेरी दशा फिर, जैसी-की-तैसी हो जाय। अब मैं वचन देती हूं कि आप जो उपदेश देंगे, उसी का अनुसरण करूंगी। तब साधु ने कहा कि अपने घरवालों से कह दो कि वे शुक्रवार या बुधवार को बाल बनवाया करें। तुम भी सूर्योदय के पूर्व सोकर उठना, घर में खूब सफाई रखना, संध्या को ठीक समय पर दिया जलाना, रसोई बनाकर चूल्हे के सामने रखना, भूखे-प्यासे को अन्न जल देना और बहन-भानजे को उचित दान-मान से संतुष्ट रखना। इतना कहकर साधु चला गया। स्त्री साधु के आदेशानुसार रहने लगी इससे थोड़े ही दिनों में उसका भण्डार भरपूर हो गया।

६. शुक्रवार का व्रत—इस दिन के इष्ट शुक्राचार्य हैं। इसकी विधि प्रदोष के समान है।

कथा—एक था प्रधान (कायस्थ)का लड़का और एक था साहूकार का लड़का। दोनों में परस्पर बड़ी मित्रता थी। प्रधान के लड़के की स्त्री घर में थी, परन्तु साहूकार के लड़के की स्त्री का गौना नहीं हुआ था। उसकी स्त्री अपने पिता के घर थी। दिन भर दोनों मित्र साथ-साथ रहते। रात्रि को जब एक-दूसरे से अलग होकर अपने-अपने घरों को जाने लगते, तब प्रधान का लड़का अपने मित्र से कहा करता कि हम तो घर जाकर आराम से सोएंगे। तुम भी घर जाकर पड़ रहना।

एक दिन साहूकार के लड़के ने मित्र से पूछा कि तुम जो यह रोज कहा करते हो कि हम घर जाकर सो रहेंगे, तुम भी घर जाकर पड़ रहना;

इसका क्या मतलब है ? तब प्रधान का लड़का बोला कि मैं जो कुछ कहता हूं, बहुत ठीक कहता हूं । मैं जब बाहर से घर जाता हूं, तब मेरे सोने के कोठे में दिया जलता हुआ मिलता है । स्त्री ब्यालू का थाल लगाये, पान बनाये, सेज बिछाये, हमारी प्रतीक्षा करती रहती है । वह अति प्रेम से मेरा स्वागत करती है । मेरे पैर धोकर ब्यालू परोसती है । इस प्रकार मैं सुख से सोकर रात्रि बिताता हूं । पर जब तुम घर जाओगे और ब्यालू के लिये कहोगे, तब तुम्हारी मां-बहन और भावज वगैरह कोई तुमको ब्यालू दे देंगी । ब्यालू करके तुम किसी कोने में पड़ कर सो रहोगे । सवेरे झटपट उठोगे और काम में लग जाओगे । इस प्रकार हमारे तुम्हारे रात्रि गुजारने में बहुत अन्तर है ।

मित्र की बात सुनकर साहूकार के लड़के को बात लग गई । उसने भी अपनी स्त्री को लाने का विचार किया और घर आकर ससुराल जाने की तैयारी करने लगा । घर के लोगों ने समझाया कि अभी द्विरागमन का समय नहीं है । शुक्र का उदय होने पर जाना और विदा करा लाना । परन्तु लड़के ने किसी की बात नहीं मानी । ससुराल चला गया ।

दामाद को सहसा आया देखकर ससुराल वालों को आश्चर्य हुआ । उन्होंने उससे आने का कारण पूछा । लड़के ने जवाब दिया कि मैं विदा कराने आया हूं । इस पर वहां भी सब लोगों ने उसे समझाया कि इस तरह विदा नहीं होती । आपको सगुन-साइत से आना चाहिए । लड़का राजी नहीं हुआ । तब उन लोगों ने लाचार होकर लड़की को उसके साथ भेज दिया ।

कुछ दूर चलने पर सूर्योदय होते ही शुक्र-देवता मनुष्य के रूप में साहूकार के लड़के के सामने आ गये । वह रास्ता रोककर खड़े हो गए और पूछा कि स्त्री चुरा कर कहां लिये जाता है ? लड़के ने जवाब दिया कि अपनी ब्याही को विदा कराकर लिये जाता हूं, इसमें चोरी की कौन-सी बात है ? तब शुक्र-देवता ने कहा कि यह तेरी ब्याही नहीं, मेरी ब्याही है । मेरी आज्ञा के बिना ही तू लिवाये जाता है ! यह चोरी नहीं

तो और क्या है ? इस बात से साहूकार का लड़का बहुत नाराज हुआ। परन्तु शुक्र देवता ने स्त्री का हाथ पकड़ लिया। इस पर दोनों में झगड़ा हो गया। एक कहता था, मेरी व्याही है। दूसरा कहता था, तेरी नहीं, मेरी व्याही है। वे दोनों इसी तरह झगड़ते हुए पास के गांव में चले गये। उन्होंने वहां लोगों से पंचायत करने के लिए कहा। इस पर गांव के मुखिया-पंच इकट्ठे हुए। एक प्रवीण पंडित भी उन पंचों में था।

पचों ने वनिए के लड़के का बयान लेकर शुक्र-देवता का बयान लिया। उन्होंने कहा कि सनातन धर्म के माननेवाले सम्पूर्ण आर्य-सन्तान में यही परिपाटी है कि वे देव उठ जाने पर शुक्र का उदय होने के पश्चात् ही कोई शुभ अनुष्ठान करते हैं। द्विरागमन की विदा तो शुक्र के अस्त में होती ही नहीं। विवाह के बाद जब तक द्विरागमन न हो जाय, तब तक स्त्री मेरी व्याही मानी जाती है। मैं शुक्र देवता हूं। इसलिए यह स्त्री इसकी नहीं, अभी मेरी है। यह सुनकर पंचों ने शुक्र-देवता के ही पक्ष में फैसला किया। उन्होंने कहा कि तुम इस लड़की को इसके बाप के घर वापस कर आओ। शुक्र का उदय होने पर विदा करा-कर ले जाना। तब साहूकार का लड़का लाचार होकर स्त्री को फिर ससुराल वापस छोड़कर घर चला गया। फिर शुक्र का उदय होने पर विधिपूर्वक वह विदा कराई गई। तब पति-पत्नी दोनों आनन्दपूर्वक रहने लगे।

७. शनिवार का व्रत—इस दिन शनि की पूजा होती है। काला तिल, काला वस्त्र, लोहा, तेल, काली मूंग, शनि को विशेष प्रिय हैं। शनि का कष्ट दूर करने के लिए यह व्रत किया जाता है। शनि-स्तोत्र का पाठ विशेष हितकर है।

कथा—यादव कुल-श्रेष्ठ श्रीकृष्ण की श्रेष्ठ पटरानी का नाम रुक्मिणी था। रुक्मिणी की एक छोटी बहन बड़ी ही कर्कशा और दरिद्र प्रकृति की स्त्री थी। इसी कारण कोई राजकुमार उसके साथ विवाह नहीं करता था। एक दिन रुक्मिणी ने उसके विवाह के लिए श्रीकृष्ण से प्रार्थना की।

श्रीकृष्ण ने कुलक्ष्मी का विवाह एक मुनि के साथ करा दिया।

मुनिवर ज्ञानी-ध्यानी साधु महात्मा थे। रात-दिन वह भजन-पूजन में लगे रहते थे। इस कारण स्त्री को उनके साथ झगड़ने का मौका ही नहीं मिलता था। परन्तु जब मुनि भगवान का पूजन करके संध्या-सवेरे शंख बजाते थे, तब उनकी स्त्री धाड़ मारकर रोती थी। इस बात से मुनि को बड़ा दुःख होता था।

एक दिन मुनि ने स्त्री से पूछा कि तुमको क्या अच्छा लगता है? जिस बात में तुम्हारा जी लगे उसी के अनुकूल मैं तुम्हारा प्रबन्ध कर दूं। वह बोली कि जितने काम तुम करते हो, उन सबसे मुझे घृणा है। पितृपूजा, देवार्चन, दान-पुण्य, होम-जप तथा यज्ञादि कर्मों से मुझको बड़ी घृणा है। मुझे तो ऐसी जगह अच्छी लगती है, जहां खूब कलह होता हो। जीवों को उत्पीड़ित और सन्तप्त देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता होती है। तब मुनि ने कहा कि अच्छा मेरे साथ चलो, मैं तुमको ऐसे ही स्थान पर पहुंचाये देता हूं। वहां तुम्हारा जी लगेगा। तब स्त्री मुनि के साथ-साथ चली। मुनि ने सघन जङ्गल में एक बड़ा ऊंचा पीपल का पेड़ देखकर स्त्री को उसी पर बिठा दिया और आश्रम को चले गये।

आधी रात को कुलक्ष्मी रोने लगी। उसी समय रुक्मिणी श्रीकृष्ण को ब्यालू करा रही थीं। बहन का रोना सुनकर उन्होंने उलाहना देते हुए कहा कि आपने अच्छी जगह मेरी बहन की शादी कराई। वह वन-वासी मुनि उसे न जाने कहां जङ्गल में छोड़ आया है। सुनिए, वह इस समय कैसा विलाप कर रही है। तब भगवान ने कहा कि तुम्हारी बहन पूरी कंकाली है। वह मुनि के भजन-पूजन में बाधा देती होगी। इसी कारण मुनि ने उसे निकाल दिया होगा। संसार में भले के साथी सब होते हैं, बुरे का साथी कोई नहीं होता। तब रुक्मिणी ने फिर प्रार्थना की कि अब उसका निर्वाह कैसे हो? इसका कुछ उपाय कीजिए। रुक्मिणी की बात मानकर श्रीकृष्ण उसी समय उस स्थान पर गए, जहां कुलक्ष्मी पीपल के पेड़ पर बैठी रो रही थी। उन्होंने उससे पूछा कि इस समय यहां बैठी क्यों रो रही हो? वह बोली कि मुनि मुझको बिठाकर चले

गये हैं। यहां अकेली बैठे-बैठे जी घबड़ाता है। इसी कारण रोती हूं। श्रीकृष्ण ने कहा कि तुम मुनि को हैरान-परेशान करती होगी, उनके भजन-पूजन में बाधा देती होगी, इसी कारण उन्होंने तुमको त्याग दिया है। मैं अब मुनि को तो दबा नहीं सकता। अगर तुम इस बात पर राजी हो जाओ कि अब कभी अपने पति के प्रतिकूल आचरण न करोगी, तो कुछ उपाय हो सकता है। यह सुनकर वह बोली कि मैं आपकी आज्ञा मानने को तैयार हूं, पर क्या करूं, अपने स्वभाव से लाचार हूं।

इस पर श्रीकृष्ण ने कहा कि ऐसी कलह-कारिणी के लिए एकांत-वास से अच्छा और कोई उपाय नहीं हो सकता। इसलिए मेरी आज्ञा है कि अब तुम सदैव इसी वृक्ष पर वास करो। इसमें सम्पूर्ण देवताओं का वास है। मेरी अर्द्धाङ्गिनी लक्ष्मी का भी इसी में निवास है। शनि-वार के दिन जो कोई सूर्योदय के पूर्व पीपल के वृक्ष की पूजा करेगा; वह तो लक्ष्मीजी को पहुँचेगा; परन्तु जो सूर्योदय के बाद पीपल की पूजा करेगा वह पूजन तुमको अर्पित होगा। पुन: जिनकी पूजा तुमको मिलेगी, उन्हीं के घर में तुम्हारा वास भी होगा।

६२/श्रीसत्यनारायण-व्रत

श्री सत्यनारायण व्रत किसी दिन भी किया जा सकता है। इसकी विधि यह है : पत्तों के खंभ, आम के पत्तों के वंदनवार, पंच-पल्लव, सुवर्णमूर्ति (भगवान् की प्रतिमा—खासकर शालिग्राम-शिला), कलश, यज्ञोपवीत, पंचरत्न (मोती, मूंगा, सोना, चांदी, तांबा) ग्रहों की स्थापना के लिए लाल कपड़ा (खारुआं या भगवान् के आसन के लिए श्वेत वस्त्र), चावल, चन्दन, केशर, अबीर, गुलाल, धूप, पुष्प, तुलसी-दल, नारियल, सुपारी अनेक प्रकार के फल, माला, पञ्चामृत (दूध, दही, घी, शहद और शक्कर), पुण्याहवाचन, कलश, भगदवर्थं पीठम् (पीढ़ा);

दक्षिणा के लिए द्रव्य, नैवेद्य; प्रसाद के लिए पंजीरी, अठवाई, केला या ऋतु के जो फल मिल सकें।

श्रीसत्यदेव के पूजन का व्रती जिस दिन कथा सुनना चाहे, उस दिन सवेरे स्नान करके श्रीसूर्य भगवान को हाथ जोड़े। इसके बाद लाल रंगवाले स्वर्ण के रथ में बैठे हुए लोक को प्रकाश देने वाले श्रीसूर्य-भगवान के अंतर्यामी श्रीकृष्ण भगवान को मानकर उनका श्रद्धापूर्वक नमस्कार करे और चंदन, चावल, धूप दीपादि से सूर्यदेव की पूजा करके इस प्रकार प्रार्थना करे—हे सब ग्रहों के स्वामी, तेज के अधिष्ठाता, महान तेजवान्! राजाओं के निमित्त बड़ों के निमित्त, इन्द्र का इन्द्रियों के निमित्त और सम्पूर्ण ग्रहों की शान्ति के निमित्त मैं श्रीसत्यदेव का पूजन करना चाहता हूं, अतः मैं आपके द्वारा सबको पत्र-पुष्प जो कुछ हैं, श्रद्धापूर्वक अर्पण करता हूं। स्वीकार कीजिए।

पुनः चन्द्रमा, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु, केतु आदि सात ग्रहों के अन्तर्यामी श्रीसत्यदेव को जानकर उन सबको एक-एक करके नमस्कार करे। तदनन्तर सर्वभूतों के स्वामी; काल के महाकाल, सदैव कल्याणकारी शिवजी की आत्मा में विष्णु भगवान को स्थित जानकर नमस्कार और प्रार्थना करे कि श्रीदेवी, लीलादेवी और भूदेवी आपकी पत्नी हैं, दिन-रात पखवाड़े हैं, नक्षत्र तुम्हारे स्वरूप हैं, अश्विनीकुमार तुम्हारे तेज में दोनों प्रकाशित हैं, सो हे विष्णुदेव! कृपा करके मुझको वैकुण्ठलोक का वास दो, मुझे दुःखों से मुक्त करो। हे लक्ष्मी के अन्तर्यामी श्रीमन्नारायण! मैं आपको नमस्कार करता हूं।

सवेरे इस प्रकार व्रत का संकल्प करके व्रती सारे दिन निराहार रहकर विष्णु भगवान का ध्यान या गुण-गान करता रहे। सायंकाल को पूजन का विधान करे। वस्तुतः संक्रांति, पूर्णमासी, अमावस्या या एकादशी में से किसी दिन सत्यदेव का पूजन अति उत्तम माना गया है। वैसे जिस दिन का संकल्प किया हो, उसी दिन कर सकता है। दिन-भर व्रत करने के बाद सायंकाल के समय स्नान करके पूजन के स्थान में आकर

आसन पर बैठकर आचमन करे तथा पवित्र धारण करे तब श्रीगणेशजी के अन्तर्यामी श्रीमन्नारायण, गौरी के अन्तर्यामी श्रीहर, वरुण के अन्तर्यामी श्री विष्णु आदि देवताओं की प्रतिष्ठा और आह्वान करके संकल्प करे—आज इस गोत्र और इस नाम वाला मैं (जो नाम हो) सब पापों के नाश के लिए, जो आपत्तियों की शान्ति के लिए और सब मनोरथ सिद्धि के लिए सब सामग्री उपस्थित है, इससे आपका पूजन करता हूं । पुन: गौरी, गणेश, वरुण देवता आदि पांचों लोकपालों और नवग्रह आदि का षोडशोपचार-पूजन करके प्रार्थना करे—मैं श्रीसत्यदेव का पूजन और कथा श्रवण करता हूं, सो आप सिद्धि प्रदान करें । तदनन्तर अर्घ्यपाद्य, आचमन, स्नान, चन्दन, चावल, धूप, दीप, नैवेद्य, आचमनीय, जल, सुगन्धित ताँबूल, फल, दक्षिणा आदि युक्त विधिवत मन्त्रों सहित पूजन के पूर्व पुष्प हाथ में लेकर श्री सत्यनारायण का ध्यान करे । इस प्रकार सत्यदेव का पूजन करके हाथों में पुष्प लेकर प्रार्थना करके श्रीसत्यदेव पर पुष्प छोड़े फिर ध्यानपूर्वक कथा श्रवण करे ।

कथा—नैमिषारण्य में एक समय शौनकादि ऋषियों ने श्रीसूतजी पौराणिक से कहा कि जिस व्रत या तप के प्रभाव से मनुष्य मनोवांछित फल पा सकता है, उसका विधिवत वर्णन कीजिए । श्री सूतजी बोले कि एक बार इसी प्रकार नारदजी के प्रश्न करने पर श्रीविष्णु भगवान ने उनको जो व्रत बताया था, उसी को मैं तुमसे कहता हूं, सावधान होकर सुनिए :

कथा—किसी समय काशीपुरी में शतानन्द नामक एक अति-दरिद्र ब्राह्मण रहता था । वह भूख-प्यास से व्याकुल हो पृथ्वी पर भीख मांगता फिरता था । एक दिन श्रीविष्णु देवता ने वृद्ध ब्राह्मण के रूप में प्रकट होकर शतानन्द को सत्यनारायण व्रत का सविस्तार विधान बताया और अन्तर्द्धान हो गये ।

शतानन्द अपने मन में सत्यनारायण का व्रत करना निश्चय करके घर गया । इसी चिंता में उसे सारी रात नींद नहीं आई । सवेरा होते

ही वह सत्यनारायण के व्रत का अनुष्ठान करके भिक्षा के लिए गया, तो उस दिन उसे बहुत धन-धान्य भिक्षा में मिला। संध्या को घर पहुंचकर उसने विधिपूर्वक सत्यदेव का पूजन किया। सत्यनारायण की कृपा से वह थोड़े ही दिनों में ऐश्वर्यवान हो गया। वह जब तक जीवित रहा, प्रति-मास सत्यदेव का पूजन और व्रत करता रहा। अंत में वह विष्णुलोक को गया।

ऋषियों ने पूछा कि शतानन्द के बाद फिर किसने यह व्रत किया? इसके उत्तर में उन्होंने कहा कि सूतजी! शतानन्द वैभववान होकर एक समय बन्धु-बान्धव समेत कथा सुन रहे थे। उसी समय एक लकड़हारा भूखा-प्यासा वहां आ पहुंचा। उसके पूछने पर ब्राह्मण ने कहा कि यह सत्यनारायण का व्रत मनोवांछित फल का देनेवाला है। मैं पहले बहुत दरिद्र था। इसी व्रत के करने से मुझे यह सब ऐश्वर्य प्राप्त हुआ है। यह सुनकर लकड़ी बेचनेवाला बहुत प्रसन्न हुआ। वह प्रसाद पाकर और जल पीकर चला गया।

श्रीसत्यदेव का मन में स्मरण करता हुआ वह लकड़ी बेचने बाजार में गया। उस दिन उसे लकड़ियों का दुगुना मूल्य मिला। उसने उन्हीं पैसों से केले, दूध, दही, शक्कर आदि पूजन की सामग्री मोल ली और घर चला गया। घर में उसने अपने भाई-बन्धु और पास-पड़ोसी के लोगों को एकत्र करके विधिपूर्वक सत्यनारायण का पूजन किया और श्रीसत्यदेव की कृपा से बड़ा धनवान और ऐश्वर्यवान हो गया। उसने यावज्जीवन इस लोक में सब तरह के सुख पाये और मरने पर सत्यलोक में गया। इसके बाद सूतजी ने एक कथा और भी कही। उन्होंने कहा कि प्राचीन समय में उल्कामुख नाम का एक राजा था। वह बड़ा ही सत्यवादी और जितेन्द्रिय था। उसकी रानी भी बड़ी धर्मनिष्ठ थी। एक समय राजा रानी समेत भद्रशील नदी के किनारे श्रीसत्यनारायण की कथा सुन रहे थे। उसी समय एक बनिया वहां पहुंचा। बनिये की नौका में असंख्य रत्न और अनेक प्रकार के मूल्यवान पदार्थ भरे थे। नदी के किनारे नाव

लगा कर वह पूजा की जगह पर गया। वहां का चमत्कार देखकर उसने राजा से उसके संबंध में पूछा। राजा ने उत्तर दिया कि हम अतुल तेज-वान विष्णु भगवान का पूजन कर रहे हैं। यह व्रत मनुष्य को मनोवांछित फल देने वाला है। राजा की ऐसी वाणी सुनकर बनिया अपने घर गया।

अपने घर जाकर उसने अपनी स्त्री से उक्त व्रत का सारा हाल कहा और यह भी संकल्प किया कि जब मेरे सन्तान होगी, तब मैं यह व्रत करूंगा। उसकी स्त्री का नाम लीलावती था। वह कुछ दिनों बाद गर्भ-वती हुई। दस महीने पूरे होने पर उसके एक कन्या पैदा हुई। वह कन्या चन्द्रमा की कलाओं की भांति दिन-प्रतिदिन बढ़ने लगी। इस कारण उसका नाम कलावती रखा गया। एक दिन लीलावती ने पति से कहा कि पहले जिस व्रत का संकल्प किया था, उसे अब तक आपने नहीं किया, इसका क्या कारण है? तब बनिये ने कहा कि कन्या के विवाह के समय व्रत करूंगा। यह कहकर बनिया अपने काम-धन्धे में लग गया और कन्या दिन-प्रतिदिन बड़ी होने लगी। कन्या को वय-प्राप्त देखकर बनिये ने उत्तम वर की खोज में जहां-तहां दूत भेजे। उसके दूतों ने कंचनपुर नामक नगर में एक बनिये का अति सुन्दर सुशील और गुणवान बालक देखा। उसी के साथ उसने सगाई कर दी और विधिपूर्वक उसके साथ विवाह कर दिया परन्तु फिर भी बनिये ने संकल्प किये हुए सत्यदेव के व्रत को नहीं किया, जिससे सत्यदेव उस पर अप्रसन्न हो गए।

कुछ दिनों बाद बनिया व्यापार के लिए बाहर चला गया। ससुर-दामाद दोनों समुद्र के किनारे रत्नसारपुर में व्यापार करने लगे। इसी बीच सत्यदेव ने कोप करके उनको शाप दिया। रत्नसारपुर के राजा का नाम चन्द्रकेतु था। दैवात उसके खजाने में चोर घुसे और बहुत-सा धन, रत्न चुरा ले गये। राजा के सिपाहियों ने चोरों का पीछा किया। चोरों ने जब देखा कि सिपाहियों से बचना कठिन है, तब उन्होंने राज-कोष का सब धन उस जगह डाल दिया, जहां बनियों का डेरा था और भाग गये। राजदूत चोरों को खोजते हुए उसी जगह जा पहुंचे और

बनियों को चोर समझकर उन्होंने पकड़ लिया। राजा के पास खबर पहुंची कि चोर पकड़े गये हैं, तब उसने हुक्म दिया कि दोनों चोर कारागार में डाल दिये जायं। बनियों ने अपनी सफाई पेश करने के लिए बहुत कुछ कहा, पर सत्यदेव के कोप के कारण किसी ने कुछ नहीं सुना। राजा ने उनका सब धन अपने खजाने में रखवा लिया।

इधर लीलावती और कलावती मां-बेटी दोनों पर भी बड़ी विपत्ति पड़ी। एक दिन कलावती अत्यन्त भूख-प्यास से व्याकुल एक देव-मंदिर में चली गई। वहां सत्यनारायण की कथा हो रही थी। वहां बैठकर वह कथा सुनने लगी। प्रसाद लेकर जब वह घर आई तब कुछ रात्रि हो गई थी। माता के पूछने पर उसने सब बात कह दी। उसकी बात सुनकर लीलावती भी व्रत करने के लिये तैयार हुई। उसने बन्धु-बान्धव समेत श्रद्धापूर्वक कथा सुनी और विनीत भाव से प्रार्थना की और कहा कि मेरे पति ने संकल्प करके जो व्रत नहीं किया, उसी से आप अप्रसन्न हुए थे। अब कृपा करके उनका अपराध क्षमा कीजिए। लीलावती की इस विनम्र प्रार्थना पर सत्यनारायण प्रसन्न हो गये।

सत्यदेव ने स्वप्न में राजा चन्द्रकेतु को दर्शन देकर कहा कि सवेरा होते ही दोनों बनियों को कारागार से छोड़ दो और उनका सारा धन दे दो, नहीं तो पुत्र-पौत्र समेत तुम्हारा सारा राज नष्ट कर दूंगा। इतना कहकर सत्यदेव अन्तर्द्धान हो गये। सवेरे राजा की आज्ञा से बनियों की बेड़ियां काट दी गईं और उन्हें मुक्त कर दिया गया।

राजा से विदा होकर दोनों बनिये ब्राह्मणों को धन बांटते हुए आनंद-पूर्वक घर की ओर चले। वे थोड़ी ही दूर गये होंगे कि सत्यनारायण संन्यासी के रूप में उनके पास आकर बोले कि तुम्हारी नौकाओं में क्या है? इसके उत्तर में बनिये ने हंसते हुए कहा कि इन नौकाओं में लतापत्रों के सिवाय और कुछ भी नहीं है। यह सुनकर संन्यासी ने कहा कि तुम्हारा वचन सत्य हो। इतना कहकर संन्यासी वहां से चला गया और थोड़ी दूर जाकर ठहर गया। दण्डी के

चले जाने पर वनिये शौचादि क्रिया के लिए नावों पर से उतरे। तब उन्होंने देखा कि दोनों नौकाएं हलकी होकर ऊपर उठ रही हैं। यह देखकर उनको बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने नौकाओं में जाकर जो देखा तो वहां लता-पत्र भरे हुए थे। यह देखकर वनिया तो वेहोश होकर गिर पड़ा, परन्तु उसके दामाद ने दृढ़तापूर्वक कहा कि इस प्रकार घबड़ाने की कोई बात नहीं है। यह सब दण्डी स्वामी की करामात है। चलकर उनसे प्रार्थना कीजिए तो उनकी कृपा से फिर सब जैसे-का तैसा हो जाएगा। दामाद की बात मानकर वनिया दण्डी स्वामी के पास दौड़ा गया और उनके चरणों में गिरकर भक्तिपूर्वक क्षमा मांगी।

उसकी विनीत और भक्तिमय स्तुति सुनकर भगवान प्रसन्न हो गये और इच्छित वरदान देकर वे उसी जगह अन्तर्द्धान हो गये। बनियों ने नावों के पास आकर देखा, तो वे धन-रत्नों से परिपूर्ण थीं। तब उसने कहा कि भगवान सत्यदेव ने कृपा करके मुझे मनोवांछित वरदान दिया है। अब मैं अवश्य भगवान का पूजन करूंगा। तदनन्तर उसने उसी जगह पूजन किया और कथा सुनी। तब वह घर की ओर चला।

अपने नगर के पास पहुंचकर उसने लीलावती के पास अपने आने का समाचार भेजा। उस समय लीलावती श्रीसत्यनारायण की कथा सुन रही थी। उसने पुत्री कलावती से कहा कि तुम्हारे पिता आ गये। शीघ्र ही कथा पूरी करके उनके स्वागत के लिए चलो। माता की ऐसी वाणी सुनकर कलावती तो इतनी प्रसन्न हुई कि वह कथा का प्रसाद लेना भी भूल गई और कथा पूरी होते ही पिता और पति के स्वागत के लिए दौड़ी गई। परन्तु ज्यों ही नदी के किनारे पहुंची, त्यों ही बनिये के दामाद की नौका जल में डूब गई। यह देखते ही वनिया हाय-हाय करके छाती पीटने लगा और रोने लगा। लीलावती भी दामाद के शोक में विलाप करने लगी। कलावती तो डूबे हुए पति के खड़ाऊं लेकर सती होने को उद्यत हुई। उसी समय आकाशवाणी हुई— 'हे वणिक ! तेरी कन्या सत्यदेव के प्रसाद का अनादर करके पति से मिलने के लिए दौड़ी आई है।

यदि वह जाकर प्रसाद ले और फिर आए, तो उसका पति जी उठेगा,' यह सुनते ही कलावती घर की ओर दौड़ी गई और सत्यदेव का प्रसाद लेकर जब नदी के किनारे आई, तब देखती क्या है कि उसके पति की नौका नदी के जल पर तैर रही है।

बनिया भी यह देखकर प्रसन्न हो गया। वह बन्धु-बान्धव समेत अपने घर गया और जब तक बनिया जीवित रहा, प्रति पूर्णमासी, अमावस्या अथवा संक्रान्ति को श्रीसत्यनारायण की कथा सुनता रहा।

उक्त कथा कहने के पश्चात् श्रीसूतजी ने एक और कथा कही। उन्होंने कहा कि कोई एक तुंगध्वज नामक राजा था। वह प्रजापालन में तत्पर एवं महान् प्रतिभाशाली था। एक बार वह वन में शिकार खेलने गया। बहुत-से जंगली जानवरों को मार कर वह जब महल की ओर जा रहा था, तब उसने देखा कि एक बरगद के पेड़ के नीचे बहुत-से गोप-ग्वाला इकट्ठे होकर सत्यनारायण की कथा सुन रहे हैं। राजा ने न तो सत्यदेव को नमस्कार किया, न पूजन के पास गया। परन्तु गोपगण राजा को देखकर स्वयं प्रसाद लेकर दौड़े और राजा के सामने प्रसाद रख दिया। राजा प्रसाद की कुछ भी परवा न करके महलों की ओर चला गया। राज-द्वार पर पहुंचते ही उसे मालूम हुआ कि उसके पुत्र-पौत्र, धन-धान्यादि सब नष्ट हो गये हैं। तब उसे ध्यान आया कि मैंने सत्यनारायण के प्रसाद का अनादर किया है। उसी के कारण इस दुःख को प्राप्त हुआ हूं। यह सोचकर राजा वहां दौड़ा गया, जहां लोग पूजन कर रहे थे। उसने उन सबके साथ मिलकर श्रद्धा और भक्ति से सत्यदेव का पूजन कराकर प्रसाद पाया। फिर जो घर आया तो देखता क्या है कि उनकी नष्ट हुई सम्पत्ति पुनः पूर्ववत् सम्पन्न है और मृत पुत्र-पौत्रादि भी जी उठे हैं। तब से वह राजा सदैव समय-समय पर श्री सत्यनारायण का व्रत करता रहा।

६३/दशारानी का व्रत

हमारे महर्षियों ने अपने अनुभव से यह सिद्ध किया है कि मनुष्य अथवा किसी भी वस्तु की स्थिति का सहसा परिवर्तन किसी अलौकिक शक्ति द्वारा होता है। उसी शक्ति का नाम दशा है। जब मनुष्य की दशा अनुकूल होती है, तब उसका कल्याण होता है, जब प्रतिकूल दशा होती है, अच्छा काम करने से भी बुरा प्रभाव पैदा होता है। इसी दशा को दशा भगवती या दशारानी के नाम से संबोधन करके हमारे देश की स्त्रियां इसकी अनुकूलता के लिए इसका व्रत और पूजन करती हैं तथा उसके प्रति श्रद्धा बढ़ाने के लिए कथा भी कहती हैं।

जब तुलसी के समान वृक्षों में, जो एक जगह से उखाड़कर दूसरी जगह लगाया हुआ न हो, वरन् जहां उगे वहीं हो, बाल निकले, कलोरी गाय बछड़ा जने, पहलौंठी घोड़ी के बछेड़ा हो, स्त्री के प्रथम गर्भ से बालक उत्पन्न हो, तब इन बातों का समाचार पाकर दशारानी के व्रत का संकल्प किया जाता है। किन्तु यह शर्त आवश्यक है कि बच्चे जो पैदा हुए हों, अच्छी घड़ी में हुए हों। ऐसी स्थिति में दशारानी का गंडा लिया जाता है।

नौ सूत कच्चे धागे के और एक सूत व्रत रहने वाली के अंचल के, इस प्रकार दस सूत का एक गंडा बनाकर उसमें गांठ लगाई जाती है। दिन-भर व्रत रहने के बाद शाम को गंडे की पूजा होती है। नौ व्रत तक तो शाम को पूजा होती है, परन्तु दसवें व्रत में मध्याह्न के पूर्व ही पूजा होती है। जिस दिन दशारानी का व्रत हो, उस दिन जब तक पूजा न हो जाय, किसी को कोई वस्तु, यहां तक कि आग भी नही दी जाती। पूजा के पहले उस दिन किसी का स्वागत भी नहीं किया जाता।

एक नोकवाले पान पर चन्दन से दशारानी की प्रतिमा का आभास अंकित किया जाता है। पृथ्वी पर चौक पूरकर उस पर पटा और पटा पर पान रखा जाता है। पान के ऊपर गंड़े को दूध में बोरकर रख दिया

जाता है। हल्दी और अक्षत से उसकी पूजा होती है और घी, गुड़, बताशा आदि का भोग लगता है। हवन के अन्त में कथा कही जाती है। कथा हो चुकने पर पूजा की सामग्री को गीली मिट्टी के पिंड में रखकर मौन होकर उसे व्रत वाली भेंटती है, फिर आप ही उसे कुआं या ताल आदि जलाशय में सिराकर तब पारण करती है। पारण करते समय किसी से बोलना वर्जित है। जितना पारण सामने परोस ले, उसमें से कुछ छोड़ना भी नहीं चाहिए। थाली धोकर पी लेना चाहिए।

पहली कथा—एक घर में कोई सास-बहू थीं। बहू का पति विदेश गया हुआ था। एक दिन सास ने बहू से गांव में जाकर आग लाने और भोजन बनाने के लिए कहा। वह गांव में आग लेने गई, तब किसी ने उसको आग नहीं दी और कहा कि जब तक दशारानी की पूजा न हो जायगी आग न मिलेगी। बहू बेचारी खाली हाथ घर आई। जब सास ने उससे पूछा, तब बहू ने कण्डा उसके सामने पटक दिया और कहा कि गांव-भर में दशारानी की पूजा है, इसलिए कोई आग नहीं देता।

शाम को सास आग लेने के लिए गांव में गई, तब स्त्रियों ने उसे स्वागत पूर्वक बिठाया और कहा कि सवेरे बहू आई थी; परन्तु हमारे यहां पूजा नहीं हुई थी, इसी कारण आग नहीं दे सकी। सास आग लेकर अपने घर के दरवाजे तक पहुंची ही थी कि एक व्यक्ति बछवा लिए आया और उसके पीछे ब्याही कलोरी गाय आती दिखाई दी। उस स्त्री ने उससे पूछा कि यह गाय क्या पहलौठी ब्याई है ? आदमी ने कहा, हां। उसने फिर पूछा कि बछवा है या बछिया ? उसने जवाब दिया कि बछवा है। सास ने घर में जाकर बहू से कहा, आओ, हम तुम भी दशारानी के गंडे लें और व्रत रहें। दोनों ने गंडे लिए। सवेरे से व्रत आरम्भ किया। नौ व्रत पूरे हो चुकने के बाद दसवें दिन गंडे की पूजा होती थी। सास-बहू दोनों ने मिलकर गोल-गोल वेले हुए, दस-दस अर्थात् कुल बीस फरे बनाये। इक्कीसवां एक बड़ा फरा गाय को दिया। पूजन करने के बाद सास-बहू दोनों पारण करने बैठीं।

उसी समय बुढ़िया का लड़का विदेश से आ गया। उसने दरवाजे स आवाज लगाई। सुनकर मां ने मन में कहा कि क्या हरज है, उसे जरा देर बाहर ठहरने दो। मैं पारण कर चुकूंगी, तब किवाड़ खोल दूंगी। परन्तु बहू को रुकने का साहस नहीं हुआ। अपनी थाली का अन्न इधर-उधर करके झट पानी पीकर वह उठ खड़ी हुई। उसने जाकर किवाड़ खोले। पति ने उससे पूछा कि माता कहां है ? स्त्री ने कहा कि वह तो अभी पारण कर रही हैं। तब पति बोला कि मैं तेरे हाथ का जल अभी नहीं पिऊंगा, मैं बारह बरस में आया हूं। इतने दिनों तक न जाने तू कैसी रही। माता आयेगी, वह जल लायेगी, तब जल पिऊंगा। यह सुनकर स्त्री चुपचाप बैठ रही।

माता पारण करने के बाद जब अपनी थाली धोकर पी चुकी, तब वह लड़के के पास गई। लड़के ने सादर पैर छुए। माता उसे आशीर्वाद देती हुई भीतर घर में लिवा ले गई। माता ने थाली परोसकर रखी। बेटा भोजन करने बैठ गया। उसने हाथ में प्रथम ग्रास लिया ही था कि फरों के टुकड़े जो बहू ने अपनी थाली से फेंक दिए थे, आपसे-आप उचककर उसके सामने आने लगे। उसने मां से पूछा—"यह सब क्या तमाशा है !" मां बोली, "मैं क्या जानूं, बहू जाने।" यह सब सुनते ही लड़का आग-बबूला हो गया। वह बोला—"ऐसी बहू मेरे किस काम की, जिसके चरित्र की तू साक्षी नहीं है। उसको अभी निकाल बाहर करो। यदि वह घर में रहेगी, तो मैं घर में न रहूंगा।"

माता ने पुत्र को व्रत के पारण का सब हाल बताकर हर तरह से समझाया, परन्तु उसने एक भी न मानी। वह यही कहता रहा कि उसे निकाल बाहर करो, तभी मैं घर में रहूंगा। मां ने सोचा, बहू को थोड़ी देर के लिए बाहर कर देती हूं, इतने में लड़के का गुस्सा शान्त पड़ जायगा। उसकी बात रह जायगी, तब फिर मैं उसे घर में डाल लूंगी। उसने बहू से कहा—"देहरी के बाहर जाकर उसारे के नीचे खड़ी रह।" जब बहू ओरी के नीचे खड़ी हुई तब उसारा बोला, "मुझे इतना भार छानी

छप्पर का नहीं है, जितना तेरा है, दशारानी के विरोधी को मैं छाया नहीं दे सकता।" तब वह वहां से चलकर घिरौंची के पास गई। घिरौंची बोली—"मुझसे हटकर खड़ी हो, मुझे इतना भार घड़ों का नहीं है, जितना तेरा है।" वह वहां से भी हटकर घूरे पर जाकर खड़ी हुई। तब घूरा बोला—"मुझे इतना भार सब कूड़े का नहीं है, जितना तेरा है, चल हटकर खड़ी हो।" इसी तरह वह जहां-कहीं जाती, वहीं से हटाई जाती थी। इस कारण वह अपने जी में अत्यन्त दुखी होकर जंगल को भाग गई। जंगल में भूखी-प्यासी फिरती-फिरती वह एक अंधकूप में गिर पड़ी। गिरी सही, पर उसे चोट न आई। वह नीचे जाकर बैठ गई।

उसी समय राजा नल उस जंगल में शिकार खेलते-खेलते वहां पहुंचे। उनके साथ के सब लोग बिछुड़ गये थे। वह प्यास के मारे भटकते हुए उसी कुएं पर आये, जिसमें उक्त स्त्री गिरी हुई थी। राजा नल के भाई ने कुएं में लोटा डाला, तो स्त्री ने उस लोटे को पकड़ लिया। तब भाई ने राजा से कहा कि इस कुएं में तो किसी ने लोटा पकड़ रक्खा है। तब राजा ने कुएं की जगत पर जाकर कहा कि भाई! पुरुष है तो मेरे धर्म का भाई है, और यदि स्त्री है तो मेरी धर्म की बहन है। तुम जो कोई भी हो, बोलो। हम तुमको ऊपर निकाल लेंगे। स्त्री ने आवाज दी। इस पर राजा ने उसे कुएं से बाहर निकलवा लिया और वह उसे हाथी पर बिठाकर अपनी राजधानी में ले आये।

महाराज को शिकार से लौटकर महलों की ओर आते देखकर धावनों ने महारानी के पास जाकर खबर दी कि महाराज आ रहे हैं और एक रानी भी साथ ला रहे हैं। रानी अपने मन में बड़ी दुःखी हुई। वह सोच ही रही थी कि इसी बीच महाराज सामने आ पहुंचे। तब रानी ने हाथ जोड़कर विनय की—"महाराज! मुझसे ऐसी क्या बात बन पड़ी, जो आप मेरे रहते दूसरा विवाह कर लाये हैं।" इस पर नल ने हंसकर उत्तर दिया कि वह जो आई है, तुम्हारी सौत नहीं, ननद है, मेरी बहन है। तुमको उसके साथ मेरी सगी बहन-जैसा बर्ताव

करना चाहिए। यह सुनते ही रानी का मुंह प्रसन्नता से कमल की तरह खिल उठा। उसने स्वगत कहा—"अब तक मैं ननद का सुख न जानती थी, अच्छा हुआ जो भाग्य से ननद आ गई।" राजा ने उसका नाम मुंहबोली बहन रखा और उसके लिए एक अलग महल बनवा दिया। उसी में वह आनन्द से रहने लगी। इस प्रकार बहुत दिन बीत गये।

एक दिन राजा की एक घोड़ी ब्याई। तब राजमहल की स्त्रियां बधाई गाने लगीं। मुंहबोली बहन ने अपनी दासियों से कहा—"बाहर जाकर देखो तो सही, किस बात की बधाई बज रही है।" उन्होंने बाहर से आकर कहा, "महाराज की घोड़ी अच्छी घड़ी में एक उत्तम बछेड़ा ब्याई है, उसी की बधाई गाई जा रही है।" उसने पूछा—"पहलौंठी ब्याई है या दूसरी-तीसरी बार?" उन्होंने जवाब दिया—"ब्याई तो पहले ही है।" तब उसने रानी के पास जाकर कहा, "आओ भावज! हम तुम दोनों दशारानी के गंडे लें। रानी ने पूछा, "किसके गंडे और कैसे गंडे हैं, सो मुझे समझाओ।" तब वह बोली, "भाई की एक घोड़ी पहले-पहल बछेड़ा ब्याई है। दशारानी के व्रत का भी यही नियम है कि पहले-पहल जब गाय या घोड़ी या स्त्री का प्रसव सुने, तब गण्डा लेकर व्रत आरम्भ करे। नौ व्रत करने के बाद दसवें दिन गण्डे का पूजन करके विसर्जन करे।" इसी के साथ उसने पारण के पदार्थ और नियम बतलाये। तब रानी बोली—"ननद! तुम्हारा व्रत तुमको फले। मैं पूड़ी और दूध की साढी खानेवाली रानी-महारानी, भला बनफरा, गोले की पपड़ी खाकर कैसे रह सकती हूं? ऐसा खाना खाय मेरी बला।"

स्त्री बोली—"भाभी! मुझे जो चाहो सो कह लो, परन्तु व्रत के सम्बन्ध में कुछ भी मत कहो। मैं इसी व्रत के कारण मारी-मारी फिरी और तुम्हारे देश में आई हूं।" तब रानी ने उदासीनता के साथ कहा, "मुझे क्या पड़ी है। तुमको रुचे सो करो। मैं मना तो नहीं करती।" स्त्री ने श्रद्धापूर्वक गण्डा लिया। नौ दिन तक नौ व्रत किये, नौ कथाएं कहीं। दसवें दिन विधिवत पूजन किया, गोला-फरा बनाये और शाम को

पारण करने बैठी। उसी समय उसके पति को कुछ अनायास प्रेरणा-सी हुई। वह अपनी माता से आज्ञा लेकर घर से बाहर हो गया।

घूमता-फिरता वह राजा नल की राजधानी में पहुंचा और अपनी स्त्री का पता लगाने लगा। एक कुएं पर उसने औरतों को बातें करते सुना। एक बोली, "राजा हाल में मुंहबोली बहन लाये हैं। वह बड़ी ही सुन्दर स्त्री है, आजकल उसी का किया हुआ सब कुछ होता है।" दूसरी बोली, "वह जैसी सुन्दर है, वैसी ही धर्मात्मा भी है। जब से आई है, तभी से उसने सदाव्रत खोल रखा है। जो उसके दरवाजे पर जाता है, सादर इच्छा भर भिक्षा पाता है।" तीसरी बोली, "वह जैसी धर्मात्मा है, वैसी ही सदाचारिणी भी है।" चौथी बोली, "वह जैसी सदाचारिणी है, वैसी ही सर्वप्रिया भी है, भीतर-बाहर से सभी लोग उससे खुश हैं।" पांचवीं बोली, "यह तो सच है, परन्तु अब तक पता न चला कि वह कौन है, और कहां की है?"

स्त्रियों की बातें सुनकर वह साधु के वेश में राजा नल की मुंहबोली बहन के महलों के द्वार पर जा पहुंचा। वहां जो उसने आवाज लगाई, तो क्षेत्र के प्रबन्धकर्ता उसे भिक्षा देने लगे। उसने भिक्षा लेने से इन्कार कर दिया और कहा, "जब क्षेत्रवाली खुद आकर भिक्षा देगी, तब लूंगा, नहीं तो नहीं लूंगा।" तब लोगों ने उससे कहा, "इस समय वह दशारानी का व्रत करके पारण कर रही हैं। जब निश्चिन्त हो जायंगी, तब तुमको भिक्षा देंगी। तब तक ठहरे रहो।" वह चुपचाप बैठा रहा। पारण कर लेने के बाद वह मुट्ठी में मोती भर कर आई, परन्तु सामने अपने पति को पल्ला फैलाये देखकर वह मुस्कराती हुई लौट गई। दोनों ने एक-दूसरे को अच्छी तरह पहचान लिया।

रानी ने ननद को मुस्कराते देखकर पूछा, "जिस दिन से तुम आई हो, आज तक मैंने तुमको कभी हंसते नहीं देखा। आज इस विदेशी को देखकर हंसी हो इसका क्या कारण है?" उसने उत्तर दिया कि वह विदेशी तो तुम्हारे ही घर का है।" रानी ने पूछा, "तब वह ऐसे

क्यों आये ?" उसने कहा, "अभी वह मेरा पता लगाने चले आये हैं।" रानी ने राजा से कहा, "तुम्हारी मुंहवोली वहन के घर के लोग आये हैं।" राजा ने कहा, "उनसे कह दिया जाय कि अभी यहां से घर जाकर वहां से अपनी हैसियत से आयें, तव मैं वहन की विदाई करूंगा।"

तव वह घर को वापस चला गया। उसने माता से कहा, "तुम्हारी वहू राजा नल के यहां उसकी वहन होकर रहती है। नित्य सदाव्रत देती है और नियम-धर्म से दिन विताती है।" तव माता ने आज्ञा दी कि तुम जाओ, उसे लिवा लाओ। वह डोली-पीनस वाजे, कहार आदि यथोचित सजधज के साथ फिर से राजा नल के नगर में गया। राजा ने समधी की हैसियत से उनका स्वागत किया और कुछ दिन उसे मेहमानी में रखकर विधिपूर्वक वहन की विदाई की। जब वह महल से बाहर निकलकर चलने लगी, तब महल भी उसके पीछे-पीछे चलने लगे। तब रानी बोली "ननदजी ! तुम चलीं और मेरा महल भी ले चलीं। जरा लौटकर पीछे की ओर देखती जाओ।" ज्यों ही उसने लौटकर देखा, त्यों ही राजा का सम्पूर्ण राजसी वैभव सहसा लुप्त हो गया।

वह स्त्री तो अपने पति के साथ जाकर आनन्द से रहने लगी, परंतु राजा नल का यह हाल हो गया कि वे राजा-रानी दोनों कमरी-कथरी ओढ़े फिरने लगे। उनके रूपकार पत्थर के हो गये और अटाले (भोजनालय) में पत्ते खड़खड़ाने लगे। तव राजा नल बोले, "रानी ! जहां राज किया, वहां इस दशा में नहीं रहा जाता। इसलिए यहां से भाग चलना उचित है।" रानी पतिव्रता स्त्री थी। उसने राजा की आज्ञा मानना और उनकी विपत्ति में उनका साथ देना सहर्ष स्वीकार किया। राजा-रानी दोनों महल से निकलकर चल दिये। चलते-चलते एक गांव के पास पहुंचे। वहां वेर के वृक्षों में अच्छे-अच्छे वेर लगे हुए थे। राजा-रानी दोनों भूखे थे। इसलिए वे वेरों के नीचे जाकर वेर वीनने लगे, परन्तु वेर लोहे के होते जाते थे। राजा-रानी वेरों को उसी जगह फेंककर आगे बढ़े। किसान

खेत काट रहे थे। राजा ने उन लोगों से कहा कि यदि आज्ञा दो तो हम भी तुम्हारे साथ खेत काटें। उन्होंने जवाब दिया, "तुम लोग क्या काटोगे, दो मुट्ठी वालें ले लो और भूनते-खाते अपने रास्ते चले जाओ।" राजा ने वालें ले लीं और जब उनको भूनकर तैयार किया तब उनमें से अन्न के दानों के बजाय कंकड़ झड़ने लगे। और आगे चले तो एक कहार तरबूज बेच रहा था। उसने एक तरबूज राजा को दिया। वह राजा के हाथ में जाते ही काठ का हो गया। और भी आगे चले तो एक जगह सुरा गाय राह चलते यात्रियों को इच्छानुसार दूध देती थी। राजा ने जाकर गाय से दूध मांगा, तो गऊ ने चांदी का पात्र भर दिया। परन्तु रानी के हाथ में पात्र जाते ही काठ हो गया और उसमें का दूध रक्त हो गया। राजा-रानी गऊ के पैर पकड़कर आगे चले।

उधर से एक बनिया बनीजी करके चला आता था। उसने राजा नल को पहचान लिया। तब उसने राजा-रानी के भोजन-भर को सेर-भर आटा दिया। वे आटा लेकर एक नदी के किनारे गये। वहां रानी भोजन बनाने लगी और राजा स्नान करने लगा। उसी नदी में मछुआरे मछलियां पकड़ते थे। उन लोगों ने राजा को चार मछलियां भेंट कीं। रानी ने रोटियां सेंककर और मछलियां भूनकर रक्खीं। जब आये और भोजन करने बैठे तब रोटियां ईंट हो गईं और मछलियां उछलकर नदी में चली गईं। वहां से चलकर वे अपनी मुंहबोली बहन के यहां गये। बहन ने सुना कि उसके भाई-भौजाई आये हैं। उसने पूछा कि कैसे आये ? औरतों ने कहा कि लटके चीथड़ा, भूकें कूकरा। ऐसे आये और कैसे आये ? यह सुनकर उसे बड़ी लज्जा आई। उसने उन्हें एक कुम्हार के यहां ठहरा दिया। शाम को थाल सजाकर बहन खुद भावज से मिलने कुम्हार के घर गई। उसने सामने थाल रक्खा तो भावज ने कहा, "इस थाल में जो कुछ भी हो, कुम्हार के चक्के के नीचे रख दो और चली जाओ।" वह थाल का सामान चक्के के नीचे रखकर चली गई। थोड़ी देर में राजा ने आकर रानी से पूछा, "कहो, बहन आई

थी, कुछ लाई थी ?" रानी ने कहा—"आई तो थी, पर जो कुछ लाई थी, मैंने इसी चक्के के नीचे रखवा दिया है ।" राजा ने जो वहां देखा, तो कंकड़-पत्थरों के सिवा और कुछ भी नहीं था । राजा समझ गया कि यह सब कुदशा का कारण है । यह सम्भव नहीं कि जिस वहन को मैंने अन्धकूप से निकाला, सब कुछ दिया, वह मेरे लिये कंकड़-पत्थर लाये ।

तब वे लोग वहां से भी चलकर अपने मित्र के घर गये । मित्र ने सुना कि उसके मित्र आये हैं, तो उसने पूछा, कैसे आये हैं ? लोगों ने कहा, "कमरी ओढें, कथरी बिछावें, मांग-मांगकर खावें । ऐसे आये और कैसे आये ?" मित्र ने दुखी होकर कहा, "कोई हानि नहीं । जैसे आये, वैसे अच्छे आये, आखिर मित्र हैं । उनको महलों में लिवा लाओ ।" राजा-रानी दोनों मित्र के महलों के भीतर जाकर ठहर गये । मित्र ने बड़े आदर-भाव से उनका स्वागत किया, भोजन कराया और एक कमरे में उनके सोने के लिए पलंग बिछवा दिये । उस कमरे में खूंटी पर नौलखा हार टंगा हुआ था और पलंग की पाटी पर विजुरिया खांड़ा रक्खा था । आधी रात के समय राजा सो गये थे । रानी उनके पैर दबा रही थी । उसने देखा कि हार-वाली खूंटी के पास दीवार में एक मोर का चित्र बना है । वह हार को धीरे-धीरे निगल रहा है और खांड़ा पलंग की पाटी में समाता जाता है । रानी ने राजा को जगाकर यह दृश्य दिखाया । तब राजा ने कहा—"यहां से भी चुपचाप भाग चलना चाहिए, नहीं तो सवेरे चोरी का कलंक लगेगा । तब मित्र को क्या मुख दिखावेंगे ?" निदान राजा-रानी दोनों रात ही को उठकर भाग चले ।

राज-दम्पति चलते हुए एक अन्य राजा की राजधानी में पहुंचे । वहां अतिथि और भिक्षुओं को सदाव्रत दिया जाता था । राजा-रानी भी सदाव्रत लेने गये । उस समय सदाव्रत बन्द हो चुका था । वहां के अधिकारियों ने कहा कि यह लोग न जाने कहां के अभागे आये हैं कि उन्हें देने के लिए कुछ भी नहीं बचा । फिर भी उन्हें मुट्ठी-मुट्ठी चने दे दो । इस प्रकार अनादर और कुवाच्य सहित दान लेना अस्वीकार

करते हुए राजा-रानी वहां के दानाध्यक्ष की निन्दा करते हुए बोले कि ऐसी कंजूसी है तो सदाव्रत देने का नाम क्यों करते हैं। इस पर दानाध्यक्ष ने कहा कि ये भिक्षुक बड़े घमण्डी मालूम होते हैं। भीख मांगते हैं और गालियां भी देते हैं। इनको हवालात में वन्द कर दो। इस तरह राजा-रानी दोनों एक कोठरी में बन्द कर दिये गये। मुट्ठी-मुट्ठी चने दोनों को खाने के लिये मिलने लगे।

जिस कोठरी में राजा-रानी कैद थे, उसी के सामने से आम रास्ता था। एक मेहतरानी राजा की घुड़साल को पारकर उसी रास्ते से निकला करती थी। एक दिन वह बहुत देर से निकली। तब रानी ने उसे पूछा कि आज तुमने इतनी देर कहां लगाई? वह बोली कि आज राजा की घोड़ी ब्याई थी। उसी की टहल में ज्यादा देर हो गई। रानी ने पूछा कि घोड़ी पहली बार ब्याई है या दूसरी बार?" मेहतरानी ने कहा—"पहली बार।" फिर रानी ने पूछा—बछेड़ा हुआ या बछेड़ी?" उसने जवाब दिया—"बछेड़ा हुआ है और अच्छी साइत में हुआ।" तब रानी ने राजा से कहा—"एक बार मैंने तुम्हारी मुंहबोली बहन के गण्डे का अनादर किया था। उसी दिन से अपनी दशा बदल गई है, इसीलिए आज मैं दशारानी का गंडा लेती हूं" राजा ने कहा, "सो तो ठीक है, परन्तु यहां पूजा की सामग्री कहां से आयेगी? कैसे नियम-धर्म निबहेगा?" रानी ने कहा, "वही दशारानी सब कुछ करेंगी। मैं तो उन्हीं का नाम लेकर गंडा लेती हूं। फिर जो होगा, देखा जायगा।"

तब नौ तार राजा की पाग के और एक तार अपने अंचल का लेकर रानी ने गंडा वनाया और उसी समय से व्रत ठान लिया। थोड़ी देर में राजा खुद घोड़ी का बछेड़ा देखने के लिए उसी रास्ते से निकला। राजा ने नल-दमयन्ती को कोठरी में बन्द देखकर पूछा कि ये लोग कौन हैं और किस अपराध के कारण यहां बन्द हैं? पहरेदारों ने कहा कि ये लोग भिक्षा लेने आये थे। आपको आशीर्वाद के बदले गालियां देते थे। इसी कारण दानाध्यक्ष ने इन लोगों को कैद करा दिया था। राजा ने

कहा कि यह तो इनका कोई अपराध नहीं है। इनको मनोनीत भिक्षा न मिली होगी, इसी से गालियां देते होंगे। इनको संतुष्ट करना चाहिए या कैद कर देना चाहिए ! इनको अभी कोठरी से निकाल बाहर करो। राजा की आज्ञानुसार उसी समय नल-दमयन्ती दोनों कोठरी से बाहर निकाले गये। राजा उनके पांव में पद्म और माथे में चन्द्रमा का चिह्न देखकर पहचान गया कि यह राजा नल और रानी दमयन्ती हैं। तब उसने विनीत भाव से क्षमा-प्रार्थना की और उन्हें हाथी पर विठाकर अपने महल में ले गया।

कुछ दिनों बाद उस राजा का आतिथ्य-सत्कार स्वीकार करके राजा नल पूरे सजधज से अपनी राजधानी की ओर चले। पहले वह अपने मित्र के यहां गये। मित्र ने राजा नल के आने की खबर सुनकर पूछा, "मित्र आये तो कैसे आये ?" लोगों ने कहा कि अबकी बार तो बड़े ठाट-बाट से, हाथी-घोड़े से, डंका-निशान से, पालकी-पीनस से और फौज भी साथ लेकर आये हैं। मित्र ने कहा, "अच्छी बात है, आने दो। मेरे तो जैसे तब थे, वैसे अब हैं। आखिर मित्र तो हैं !" राजा-रानी दोनों मित्र के महल में गये। उन्होंने सादर उनका स्वागत करके उसी स्थान में फिर से उनको डेरा दिया, जहां वे पहले टिके थे। आधी रात के समय राजा सो रहे थे, रानी पैर दबा रही थीं। तब उसने देखा कि मोर का चित्र जो हार लील गया था, उसे उगल रहा है और खांड़ा खाट की पाटी से बाहर निकल रहा है। रानी ने राजा को जगाकर दिखाया। राजा ने अपने मित्र को बुलाकर वह चरित्र दिखाया। तब मित्र बोला कि मैंने न तब तुमको चोरी लगाई थी, न अब लगाता हूं। यह सब कुदशा का कारण था। आप निश्चय रखिए, मेरे मन में कोई मैल नहीं है।

मित्र के यहां से चलकर राजा मुंहबोली बहन के यहां गये। उसने जब सुना कि राजा भैया आये, तब उसने पूछा, "कैसे आये ?" लोगों ने कहा, "जैसे राजाओं को आना चाहिए, वैसे आये और कैसे आये ?" उसने कहा, "उनको मेरे महल में आने दो।" जब राजा नल का हाथी

वहन के महल की ओर बढ़ा, तब रानी बोली, "आप बहन के घर जाइये, मैं तो उसी कुम्हार के घर जाकर ठहरूंगी, जिसके यहां पहले टिकी थी।" राजा ने कहा, "जिसके कारण इतने दुःख उठायें, तुम उसी से फिर झगड़ा मोल लेती हो, यह तो अच्छा नहीं करतीं।" परन्तु रानी न मानी। वह कुम्हार के यहां ठहरी। राजा बहन के घर चले गये। शाम को ननद भावज के लिए थाल लगाकर चली। उसने भावज के सामने जाकर थाल रख दिया। तब भावज सोने-चांदी के गहने उतार-उतार कर रखने लगी और कहने लगी—"खाओ रे! मेरे सोने--रूपे के गहनो! खाओ। हम नंगे-भूखे क्या खायेंगे।" यह देखकर ननद बोली कि यह उपालंभ टिठोली किस पर कसती हो? मुझसे तो जो कुछ हो सका, सो तब लाई थी, वही अब भी लाई हूं। विश्वास न हो तो चक्का के नीचे अब भी देख लो। सचमुच चक्का उठाकर देखा तो उसके नीचे मणिमाणिकों का ढेर लगा था। रानी देखकर सन्न रह गई। वह बोली, "ननद! तुम्हारा कोई दोष नहीं है, यह सब मेरी कुदशा का कारण था।"

रानी ने ननद का लाया हुआ सब सामान वापस कर दिया। कुछ अपनी तरफ से भी दिया, परन्तु पूजा का न्योता न दिया। वहां से चल-कर राजा सुरा गाय के पास आये, तो उसने सब सेना समेत राजा को यथेच्छ दूध पिलाया। वहां से आगे चले, तब तरबूजों वाला कहार मिला। उसने सबको अच्छे-अच्छे तरबूज खिलाये। आगे चलकर राजा नदी के तट पर पहुंचे तो वहां पड़ाव पड़ गया। राजा का आला चेताया गया। जब भोजन तैयार हो गया, तब राजा भोजन करने बैठे। उस समय नदी में उछलकर गिरी हुई भुनी-भुनाई मछलियां आप से आप थाली में आकर गिर पड़ीं। वे रोटियां, जो ईंटें हो गई थीं, फिर से रोटियां हो गईं। तब राजा ने पूछा कि यह सब क्या कौतुक है? कुछ समझ में नहीं आता। रानी बोली कि ये वही मछलियां और रोटियां हैं, जो उस दिन अपने काम में न आई थीं। मैं यदि आपसे कहती कि

मछलियां जल में उछल गईं और रोटियां ईंट हो गईं तो आप न मानते। इसी कारण मुझको वहाना करना पड़ा था। वहां से आगे चले तो किसान लोग वोझ वांधे हुए होरहा लिये रास्ते में खड़े थे। राजा की सब फौज ने उन्हें भूनकर वालें चबाईं। दो एक राजा ने भी खाईं। और भी आगे चले तो वहां वेर के पेड़ों से वेर टपकने लगे। राजा की सब सेना ने खूब वेर खाये।

जब राजा नल की फौज अपनी राजधानी के पास पहुंची तब वहां के लोग घबड़ा उठे। उन्होंने कहा कि अपने राजा पर तो विपत्ति पड़ी हैं, वह वाहर भटकते फिरते हैं। यह कोई शत्रु चढ़ आया है। इसको नजराना देकर मिलाना चाहिए। अस्तु, वे लोग हीरा-मोती थालों में भर-भरकर राजा से मिलने गांव से बाहर आये। अपने राजा को पहचान कर उनको बड़ा आनन्द हुआ। वे बड़ी श्रद्धा-भक्ति-पूर्वक महाराज के आगे होकर उन्हें महलों में लिवा ले चले।

राजा-रानी ने महलों में प्रवेश करके तुरन्त ही दशारानी की पूजा का प्रवन्ध किया और उस नगर की सब सौभाग्यवती स्त्रियों को आमंत्रित किया। भगवती के भोग के लिए सब तरह के पकवान बनाये गये। आटे की बटी हुई दस बत्तियां, दस गुड़ या शक्कर की गुझियाँ और दस-दस अठवाइयां सुहागिनों के आंचल में डाली गईं। सुहागिनों का शृंगारादि करके दशारानी की पूजा आरम्भ हुई। कलश स्थापित होकर जोर माणिक (दिया) जलाया गया तो बत्ती ही न जलीं। तब पण्डितों ने विचार करके कहा कि यदि कोई न्योता पानेवाला न्योतने को रह गया हो, तो स्मरण किया जाय। उसके आ जाने पर दीपक जल जायगा। रानी ने कहा कि मैंने और तो सभी को न्योता दिलवा दिया है, सिर्फ मुंहबोली बहन को न्योता नहीं दिया है। पण्डितों ने कहा कि उसे शीघ्र बुलाइये। राजा ने अपना द्रुतगामी रथ भेजकर मुंहबोली बहन को बुला लिया। उसने कलश का माणिक प्रज्ज्वलित किया। बड़ी धूम-धाम से पूजा हुई। अन्त में सुहागिनों को भोजन कराकर विदा

किया गया। उसी समय राजा ने राज में हुक्म जारी किया कि अब से मेरी प्रजा के लोग दशारानी का व्रत किया करें।

भगवती दशारानी ने जैसे राजा नल के दिन फेरे, ऐसे ही वह सब के दिन फेरें।

दूसरी कथा—एक राजा थे। उनके दो रानियां थीं। जेठी रानी को कोई संतान नहीं थी, किंतु छोटी रानी के एक पुत्र था। राजा छोटी रानी और उसके पुत्र को बहुत प्यार करते थे। यह देखकर बड़ी रानी को डाह और ईर्ष्या होती थी। वह सौतियाडाह के कारण राजकुमार के प्राणों की प्यासी हो गयी थी। एक दिन राजकुमार खेलता हुआ अपनी विमाता के चौक में चला गया। विमाता ने उसके गले में एक काला सांप डाल दिया। राजकुमार की माता दशारानी का व्रत करती थी। वह लड़का दशारानी का दिया हुआ था। अस्तु दशारानी की कृपा से लड़के के गले में पड़ा हुआ सांप आप ही सरककर भाग गया।

दूसरे दिन राजकुमार की विमाता ने उसे विष के लड्डू खाने को दिये। वह लड्डू लेकर ज्योंही खाने लगा, त्योंही दशारानी ने किसी दासी के वेश में प्रकट होकर लड्डू छीन लिये। विष देने पर भी लड़का नहीं मरा, तब रानी को बड़ी चिंता हुई कि किसी-न-किसी तरह इसको मारना चाहिए। तीसरे दिन जब राजकुमार पुनः उसके आंगन में खेलने गया, तब रानी ने उसे पकड़कर गहरे कुएं में डाल दिया। यह कुआं उसके आंगन में था, इस कारण किसी को कुछ पता भी न चला कि राजकुमार कहां गया, क्या हुआ ?

उत्तम जलाशय, शुद्ध स्वच्छ मकान तथा ऐसी ही दिव्य वस्तुओं में सदैव दशारानी का वास रहता है। विमाता ने राजकुमार को कुएं में डाला और दशारानी ने उसे बीच ही में रोक लिया। जब दोपहर का समय हुआ और कुंवर कहीं नहीं दिखाई दिया, तब राजा-रानी को बड़ी चिंता उत्पन्न हुई। जहां-तहां लोग उसकी तलाश करने लगे। इधर दशा-रानी को इस बात की चिन्ता हुई कि राजकुमार के माता-पिता उसके

लिए व्याकुल हो रहे हैं। उसको उनके पास पहुंचाना चाहिए, परन्तु पहुंचावे तो किस प्रकार ?

राजकुमार को तलाश करनेवाले लोग हताश होकर बैठ रहे। राजा-रानी दोनों दु.खी होकर पुत्र-शोक में बैठकर रोने लगे। तब दशारानी एक भिखारिणी के वेश में कुंवर को गले से लगाये हुए राज-द्वार पर जा पहुंची। राजकुमार को एक वस्त्र में छिपाये हुए भिखारिणी ने भिक्षा के लिए सवाल किया। तब सिपाहियों ने उसे दुत्कार कर कहा कि कहां तो राजा का कुमार खो गया है, और सभी लोग दुःख और चिंता में व्याकुल हो रहे हैं और ऐसे में तुझे भिक्षा की पड़ी है ? चल हट जा यहां से ! तब दशारानी बोली—"भाइयो ! पुण्य का प्रभाव बड़ा होता है ! यदि मुझे भिक्षा मिल जाय तो सम्भव है कि खोया हुआ राजकुमार मिल जाय !" यह कहकर वह देहरी के भीतर पैर रखने लगी। तब सिपाहियों ने उसे आगे बढ़ने से रोका। उसी समय दशारानी ने एक वस्त्र में से बालक का पैर उघार दिया। सिपाहियों ने समझा कि अभी कुंवर इसके हाथ में है, इसे जाने दो, और कुंवर को भीतर छोड़ आने दो। उधर से बाहर जाने लगेगी तब पकड़ कर बिठा लेंगे।

दशारानी कुंवर को लिये हुए भीतर चली गई। उसने राजकुमार को चौक में छोड़ दिया और वहां से वापस होकर चल दी, परन्तु रानी ने उसे देख लिया था। उसने डांटकर कहा कि खड़ी रह, तू कौन है ? तूने तीन दिन से मेरे लड़के को छिपाकर रख छोड़ा था। तूने ऐसा क्यों किया ? ठहर जा, इसका जवाब तो लेती जा। दशारानी उसी क्षण ठहर गई। उसने कहा कि रानी ! मैं तुम्हारे पुत्र को चुराने-छिपानेवाली नहीं हूं। मैं ही तेरी आराध्य देवी दशारानी हूं। तुझे सचेत करने आई हूं कि तेरी सौत तुझसे ईर्ष्या-द्वेष रखती है। वही तेरे पुत्र का घात करने की चिंता में रहती है। तुझको उचित है कि अपने पुत्र को कभी उसके पास न जाने दे। एक बार उसने कुंवर के गले में सर्प डाल दिया था, उसे मैंने भगाया। दूसरी बार उसने विष के लड्डू उसे खाने को दिये थे,

उनको मैंने इसके हाथ से छीना। अबकी उसने इसे कुंए में डाल दिया था, सो इस बार भी मैंने उसकी रक्षा की। इस समय भिखारिन बनकर तुमको चेतावनी देने आई हूं।

तब रानी भगवती के पैरों पर गिर पड़ी। उसने विनीत भाव से प्रार्थना की कि जैसे कृपा करके आपने साक्षात दर्शन दिए हैं वैसे ही अब इसी महल में सदैव रहिए। मुझसे जो सेवा-पूजा बनेगी, सो करूंगी। तब दशारानी ने उत्तर दिया कि मैं किसी घर में नहीं रहती। जो श्रद्धा-पूर्वक मेरा ध्यान-स्मरण करता है, उसी के हृदय में रहती हूं। मैंने तुझे साक्षात दर्शन दिया इसके उपलक्ष्य में तुम सुहागिनों को न्योतकर उनको यथाविधि आदर-सत्कार से भोजन कराओ और अपने नगर में तथा राज्य में ढिंढोरा पिटवा दो कि सभी लोग मेरा गंडा लिया करें और व्रत किया करें।

यह कह दशारानी अन्तर्द्धान हो गई। रानी ने शहर भर की सौभाग्य-वती स्त्रियों को निमन्त्रण देकर बुलाया। उबटन से लेकर शिरोभूषण शृंगार तक उनकी यथाविधि सुश्रूषा करके गहने आदि देकर आंचल भरे और भोजन कराकर विदा किया। शहर और राज्य में भी ढिंढोरा पिटवा दिया कि अब सब लोग दशारानी के गंडे लिया करें।

तीसरी कथा—एक साहूकार था। उसका बड़ा परिवार था। पांच बेटे, उनकी पांच बहुएं तथा एक लड़की थी। लड़की का विवाह हो चुका था, किंतु द्विरागमन की विदा नहीं हुई थी। इस कारण लड़की माता-पिता के घर में ही थी।

एक दिन साहूकारिन दशारानी के गंडे लेने लगी। उसकी बहुओं ने भी गंडे लिए। उसी समय उन्होंने सास से पूछा कि क्या ननदजी का भी गंडा लिया जायगा? सास ने कहा कि अवश्य। तब वे बोलीं कि उनकी तो विदाई होने वाली है। यदि व्रत के पहले ही विदा हो गई तब। सास ने कहा कि मैं पूजा का सब समान साथ में दे दूंगी। वह अपने घर जाकर पूजा कर लेगी।

लड़की ने दशारानी का गंडा तो ले लिया, परन्तु पूजन के पहले ही उसकी ससुराल से उसके पति आ गये। माता ने विधिपूर्वक लड़की की विदाई की और उसकी पालकी में पूजा का सब सामान रख दिया। जब वह अपने घर पहुंची, तब वहां घर के आंगन में गलीचा बिछ गया। उसी पर वह जाकर बैठ गई। पास-पड़ोस की स्त्रियां नई बहू को देखने जुट आईं। सब लोग उसकी सुन्दरता और गहने कपड़े की प्रशंसा करने लगीं। किसी की नजर सब कुछ छोड़कर उसके गले के गंडे पर जा पड़ी। वह बोली कि बहू की मां बड़ी टुटकाइन है। इतना जेवर होते हुए भी दो तागे सूत के उसके गले में क्यों पहना दिये हैं, सो समझ में नहीं आता। जहां एक ने यह बात कही, वहां सभी की नजर गंडे पर पड़ी। सभी स्त्रियों ने गंडे के संबन्ध में कुछ-न-कुछ राय प्रकट की।

संध्या को सास-ननद, देवरानी-जेठानी, घर की सभी स्त्रियां जुटकर बैठीं तो उसी गंडे की चर्चा करने लगीं। किसी ने कुछ कहा, किसी ने कुछ। सारांश यह कि सभी ने सूत के गंडे की निन्दा की। सुनते-सुनते नई बहू का जी ऊब गया। तब उसने गंडे को तोड़कर जलती हुई बोरसी में डाल दिया। गंडे में आग लगते ही उनके घर में आग लग गई। धन-धान्य सब जल गया। सब आदमी अपने-अपने प्राण लेकर भागे। उस जले घर में स्त्री-पुरुष दोनों रह गये, बाकी सब तीन-तेरह हो गये।

घर का सब सामान जल चुका था, न खाने को अन्न था न पहनने को वस्त्र। इस कारण दोनों जन भी गांव छोड़कर चल दिये। आगे स्त्री, पीछे उसका पति। दोनों चलते-चलते उस गांव में पहुंचे, जहां की वह लड़की थी। उसने पति से कहा कि जब तक कोई जीविका नहीं है, तब तक तुम भाड़ झोंककर पेट भरो। मैं भी किसी मजदूरी की चिंता करती हूं। पति भाड़ झोंकने लगा और स्त्री एक कुएं की जगत पर जा बैठी।

उस कुएं पर सारे गांव की स्त्रियां पानी भरने आती थीं। उस लड़की की भावजें भी आईं और उसे वहां बैठी देखकर बोलीं कि दहन !

तुम तो किसी भले घर की लड़की मालूम होती हो। कैसे बेकार बैठी हो? कहो किसी के यहां रहोगी तो नहीं? लड़की बोली कि अवश्य रहूंगी, परन्तु न तो नीच टहल करूंगी, न खराब खाना खाऊंगी। बड़ी भावज बोली कि हमारे घर में तुम्हारे लिए नीच काम है ही नहीं, जब से हमारी ननद ससुराल चली गई है, तब से हमारे बच्चे हैरान होते हैं। तुम उन्हीं को खिलाती रहना और हमारे घर से सीधा लेकर अपना भोजन बनाकर खाया करना। उसके राजी होने पर स्त्रियां अपने घर गईं और सास से बोलीं कि माताजी! कुएं की जगत पर एक अनाथ दुखिनी लड़की बैठी है, वह हमारे यहां रहने और तुम्हारे नाती खिलाने पर राजी है। तुम्हारी आज्ञा हो तो उसे रखलें। सास ने कहा कि खुशी से रख लो, परन्तु इतना कहे देती हूं कि पीछे से कलह न करना। सब बहुओं ने कहा कि नहीं करेंगी। तब सास ने आज्ञा दे दी। वे दूसरी बार पानी भरने गईं और दुखिनी को अपने घर लिवा लाईं। वह अपनी भावजों के लड़के-बच्चे खिलाती और बना-खाकर निर्वाह करती हुई रहने लगी। दैवात फिर से दशारानी के गंडे लेने का अवसर आया। सास ने कहा कि बहुओं! आओ सब बैठकर गंडे लेवें। बहुओं ने पूछा कि क्या दुखिनी का गंडा भी लिया जायगा? सास ने कहा, कि जब वह घर में रहती है, तब उसको क्यों बाहर किया जाय; उसे भी गंडा लेना चाहिए। तब बहुओं ने कहा कि इसी तरह रोकते-रोकते तुमने ननदजी का गंडा लिया था। आखिर पूजा न हो पाई और उसकी बिदाई हो गई। अब दुखिनी को गंडा लिवाती हो, यदि पूजा होने के पहले यह भी चली गई तब? सास बोली कि तब क्या हानि है! तुम्हारी ननद ने अपने घर जाकर पूजा की होगी। दुखिनी पूजा होने तक यहां रहेगी, तो अपनी पूजा में शामिल हो जायगी, न होगा चली जायगी, जहां जायगी वहां पूजा कर लेगी।

सर्वसम्मति से दुखिनी ने भी दशारानी का गंडा लिया। नौ दिन तक कथा-कहानी होती रही। व्रत-पूजन यथाविधि हुआ। दसवें दिन साहूकार की पांचों बहुओं और उसकी सास ने सिर से स्नान किया, घर

में गोबर से चौका लगाया, चौक पूरा और पूजा की तैयारी करने लगीं, तब दुखिनी बोली कि भाभी ! मुझे फटा पुराना कपड़ा मिल जाय, तो मैं भी स्नान कर आऊं। तब बहुओं ने सास से पूछा कि हमारे पास ननदजी की साड़ी रखी है, कहो तो इसे दे दें। जब ननदजी आयेंगी तब उनके लिए दूसरी साड़ी आ जायगी। सास ने कहा कि दे दो, मुझे क्या ? तुम्हारी ननद झगड़ा न करे। तुम जानो, तुम्हारा काम जाने।

अपनी पुरानी साड़ी लेकर दुखिनी स्नान करने गई। उसने सिर से स्नान करके साड़ी पहनी और गीले बाल बिखराये हुए घर आई। यहां पूजा होना आरम्भ हो गई थी। वह ज्यों ही पूजा के पास आकर बैठी, त्योंही एक भावज ने कहा कि यह दुखिनी तो साक्षात ननदजी की उनहार है। इस पर सास ने नाराज होकर कहा कि तुम लोग बड़ी चंचल हो। पूजा के समय भी बक-बक लगा रखी है। चुप रहो, मुझे कथा कह लेने दो। तुम्हारी बात में मैं कथा का सिलसिला भूल जाती हूं। बहुएं चुप हो गईं।

दुखिनी समेत घर की सब स्त्रियों ने पारण किया। फिर सब इकट्ठी बैठकर एक दूसरी का सिर गूंथने लगीं। एक ने दुखिनी से कहा कि आ, मैं तेरा सिर गूंथ दूं। वह दुखिनी का सिर गूंथते हुए बोली कि जैसी गूंथ इसके सिर में है, वैसी ही गूंथ हमारी ननद के सिर में थी। इस पर साहूकारिन क्रुद्ध होकर बोली कि मेरी लड़की अपने ससुराल में सुख देख रही होगी। उसकी तुम कहां इस दुखिनी से उनहार देती हो।

सास ने बहू को दुत्कार तो दिया, परन्तु उसकी बात मन में लग गई। उसने दुखिनी से कहा कि आज रात तुम मेरे पास लेटना। रात को जब बहुएं सो गईं, तब बुढ़िया ने पूछा कि क्यों दुखिनी ! तेरे नैहर में कोई कभी था ? उसने जवाब दिया कि ऐसे ही पांच भाई, पांच भौजाई, तुम जैसी मां और पिता-से पिता थे। पुनः बुढ़िया ने पूछा कि फिर क्या हुआ ? वह बोली कि मैंने अपने नैहर में दशारानी का गंडा लिया था। उसका पूजन नहीं हो पाया, विदा ससुराल को हो गई। वहां स्त्रियों ने

मेरे गले में गण्डा देखकर हंसी उड़ानी शुरू की। तब मैंने उस गण्डे को आग में डाल दिया। उसी गंडे के साथ-साथ सारा घर जलकर भस्म हो गया। सब लोग तीन-तेरह हो गये। हम दोनों जने भागकर यहां चले आये। माता ने पूछा कि तेरा पति कहां है? दुखिनी ने जवाब दिया कि वह तो भड़भूजों के यहां भाड़ झोंकते हैं।

साहूकारिन अपनी लड़की को पहचानकर उसके गले से लगकर रोने लगी। उसके रोने का शब्द सुनकर पांचों लड़के उसके पास आये। तब बुढ़िया ने कहा कि यह दुखिनी कोई और नहीं, तुम्हारी सगी बहन है। तुम्हारा बहनोई भूंजे के यहां भाड़ झोंकता है। दशारानी के कोप से इसकी ऐसी गति हुई है।

सवेरा होते ही पांचों भाई भूंजे के घर गये और उसे जैसे-तैसे पकड़ कर घर लाये। उन्होंने उनका क्षौर कराकर स्नान कराया, और उत्तम वस्त्र पहनाए। तब तो वह सुन्दर साहूकार दिखाई देने लगा। कुछ दिनों ससुराल में रहकर जब वह अपने घर गया तब उसने देखा कि घर के सब लोग पहले की तरह सुख से हैं। इसके बाद वह ससुराल आया। तब उसके सास-ससुर ने दुखिनी को उसके साथ विदा कर दिया।

दुखिनी अपनी दशा पर विचार करती हुई जब ससुराल जा रही थी तब मार्ग में उसे एक नदी मिली। उस नदी में स्नान करके अप्सराएं दशारानी का गंडा ले रही थीं। उनका एक गंडा अधिक था। उनमें से एक बोली कि यदि इस डोली में कोई उच्च वर्ण की स्त्री हो, तो उसी को गंडा दे देना चाहिए। उन्होंने डोली के पास जाकर पता लगाया और दुखिनी को गंडा दे दिया।

जब दुखिनी घर पहुंची तब उसकी सास सूप सजाये, ननद कलश लिये और देवरानी-जिठानी अन्य मांगलिक वस्तुएं लिये उसका स्वागत करने लगीं। नेग-दस्तूर हो चुकने के बाद दुखिनी ने आसन पर बैठते ही कहा कि तुम लोगों ने तब की बार दशारानी के गंडे की निन्दा की थी, इसलिए सब का बिछोह हुआ और घर का धन-धान्य स्वाहा हो गया।

राम-राम करके ठिकाने लगे हैं। अब की कोई मेरे गंडे की चरचा न करना। जब मेरा व्रत हो, तब श्रद्धापूर्वक पूजा करना। सबने खुशी से उसकी बात मान ली। नौ दिन कथा-कहानियाँ हुईं। दसवें दिन विधि से गंडे की पूजा हुई। सात सुहागिनें न्योती गईं। महावर आदि से उनका शृंगार कराकर आंचल भरे गये। इस प्रकार खुशी से दशारानी का पूजन हुआ। दशारानी ने जैसे दुखिनी की दशा फेरी, वैसो ही वह सब पर कृपा करें।

चौथी कथा—एक राजा था। उसकी रानी बड़ी ही सुकुमार थी। वह फूलों की सेज में सोया करती थी। एक दिन फूलों की सेज में एक कच्ची कली बिछ गई। उस रात्रि को रानी को नींद नहीं आई। राजा ने पूछा—"प्रिये ! आज तुमको नींद क्यों नहीं आती ? क्या कोई पीड़ा है।" तब रानी बोली कि आज सेज पर एक कच्ची कली रह गई है वही मेरे शरीर में गड़ती है। इसी से नींद नहीं आती। उसी समय ज्योति-स्वरूप दीपक हंसा। यह देखकर राजा ने हाथ जोड़कर ज्योति-स्वरूप से प्रार्थना की—"स्वामी ! आप क्यों हंसे ? कृपाकर इसका भेद बताइये।" ज्योति-स्वरूप ने पुनः हंसकर उत्तर दिया कि अभी तो रानी कच्ची कली के कारण ही उसकती-फुसकती है, कल सवेरा होते ही जब सिर पर बोझा ढोवेगी तब क्या होगा ? राजा ने पूछा कि क्या मेरे देखते, मेरे जीते जी ऐसा होना संभव है ? तब दीपक ने दृढ़ता-पूर्वक उत्तर दिया—"हां, संभव है, तुम्हारे जीते जी संभव है।" ज्योति-स्वरूप की ऐसी भविष्यवाणी सुनकर राजा ने अपने मन में कहा कि देववाणी असत्य नहीं हो सकती। रानी को अवश्य बोझा ढोना पड़ेगा; परन्तु यह हो सकता है कि यदि मैं इसको जीते जी समुद्र में बहा दूं, तो संभव है कि यह बोझा ढोने से बच जाय; क्योंकि जब समुद्र में वह डूब जायगी, तब बोझा कौन ढोवेगा।

राजा ने उसी समय रानी से कहा—"चलो, हम तुमको नैहर भेज आयं। कुछ दिन तुम वहीं रहना।" रानी ने कहा कि मेरे नैहर में तो

कोई भी नहीं है, वहां किसके यहां रहूंगी ? राजा ने जवाब दिया कि तुमको मालूम नहीं है, तुम्हारे गोत्रज-संबंधी बहुत अच्छी दशा में हैं। मैं उन्हीं के पास तुमको भेज देता हूं। रानी नैहर जाने को तैयार हो गई। उसने राजा की आज्ञानुसार बहुमूल्य आभूषणों से अपने को संवार कर तैयार किया। तब राजा ने उसे संदूक में बिठाकर नदी में बहवा दिया।

वह नदी समुद्र में ऐसी जगह जाकर मिलती थी, जहां उस राजा के बहनोई का राज्य था। समुद्र से मोती की सीपें निकाले जाने का राजा का ठेका था। रानी का सन्दूक बहता हुआ जब उस जगह पहुंचा, तब राजा ने मल्लाहों को हुक्म देकर सन्दूक को पानी से बाहर निकलवा लिया और उसे महल में भेजकर हुक्म दिया कि इस सन्दूक को अंदर मेरे सोने के कमरे में रक्खा जाय। जब तक मैं न आऊं, इसे कोई छुए भी नहीं। राजा के शयनागर में सन्दूक पहुंचते ही रानी ने सुना कि राजा ने उसे समुद्र में पाया है, तब वह फौरन उसे देखने के लिए चली गई। उस समय पहरेदार वहां से हट गया था। रानी ने कौतुकवश सन्दूक खोला। उसने देखा कि उसके भीतर एक सर्वाङ्ग सुन्दरी सोलह शृङ्गार, बारहों आभूषण किये बैठी है। रानी ने अपने जी में सोचा कि अगर राजा इसको इस दशा में देखेगा, तो इसी का हो रहेगा, मुझको त्याग देगा। इसलिए इस स्त्री की हुलिया बिगाड़कर सन्दूक में बन्द कर देना चाहिए। तदनुसार उसने रानी के जेवर-कपड़े सब उतवारकर उसे मैले-कुचैले, फटे-पुराने कपड़े पहना दिए और सन्दूक बन्द करवा दिया।

राजा जब बाहर से महल में आया, तब उसने रानी को अपने सोने के कमरे में बुलाया और पूछा कि क्यों रानी तुमने देखा, इसमें क्या है। रानी ने जवाब दिया कि मैंने कुछ नहीं देखा-सुना कि क्या है, क्या नहीं है। राजा ने रानी के सामने सन्दूक खुलवाया, तो उसमें फटे-पुराने कपड़े पहने एक भिखारिणी-सी दीख पड़ी। रानी ने कहा कि यह तो कोई निर्वासित भिखारिणी नीच जाति की दिखाई देती है। इसको कारखाने में भिजवा दिया जाय। वहां लकड़ी ढोती रहेगी और खाना पाती रहेगी।

राजा ने रानी के कहे अनुसार उसे कारखाने में भेज दिया।

एक दिन रानी की सहेलियां नदी में स्नान करके दशारानी के गण्डे ले रही थीं। एक गण्डा उनका अधिक था। वे इसी विचार में थीं कि यह किसको दिया जाय ? दैवयोग से उसी समय लकड़ीवाली रानी वहां जा पहुंची। उन्होंने उससे कहा कि बहन ! यदि तुम कोई नीच वर्ण न हो, तो हमारा गंडा ले लो। रानी ने कहा कि मुझे गंडा लेने से इन्कार नहीं है, परन्तु मुझे तो खाने भर को मिलता नहीं। इनकी पूजा कैसे करूंगी। वे बोलीं कि तुम इसकी चिंता मत करो, हम रोज इसी जगह स्नान करने आया करेंगी। नौ दिन तक कथा कहा करेंगी, तुम भी नित्य कथा सुन जाया करो। दसवें दिन पूजा होगी, तब तक दशारानी चाहेंगी, तो अवश्य तुम्हारी दशा बदल जायगी। रानी ने श्रद्धापूर्वक दशारानी का ध्यान करके गण्डा ले लिया।

उसी दिन रानी के पति को यह चिन्ता उत्पन्न हुई कि रानी को सन्दूक में रखकर बहा तो दिया था, परन्तु उसका कोई समाचार नहीं मिला कि क्या हुआ। किसी तरह उसकी टोह लगानी चाहिए। अस्तु, राजा एक नौका पर सवार होकर नदी-द्वारा यात्रा करता हुआ अपने बहनोई के यहां पहुंचा। सन्ध्या को ब्यालू करके जब वह लेटने लगा, तब बहन से बोला कि मेरे हाथ-पैरों में बहुत दर्द है। किसी दबाने वाले को बुला दो। तब उस रानी ने लकड़ी ढोनेवाली भिखारिणी को बुलाकर हुक्म दिया कि आजकी रात तू मेरे भाई के पैर दबा दे। वह बड़े संकोच में पड़ गई। अपने जी में अनेक संकल्प-विकल्प करती थी कि पर-पुरुष का शरीर छुऊं तो कैसे छुऊं। रानी बराबर अपनी बात पर दबाव दे रही थी। इसीलिए लाचार होकर उसे स्वीकार करना पड़ा।

राजा के पैर दबाते-दबाते रानी को उसके पांव का पद्म देख पड़ा। रानी चुपचाप रोने लगी और उसके आंसू राजा के पैरों पर टपक पड़े। तब उसने पूछा कि "क्यों री दासी, तू क्यों रोती है ? तू अपना भेद मुझे बता। मेरे कारण तुझे किसी प्रकार की हानि न पहुंचेगी।" तब वह बोली

कि जैसा पद्म आपके पैर में है, वैसा ही मेरे पति के पैर में था। पहले दिनों की याद आने से मुझे रुलाई आ गई है।

तब राजा बोला कि मैं समझ गया। अब तुम पैर मत दबाओ, आराम से सोओ। जो तुम्हारे भाग्य में लिखा था, वह तुमको भोगना ही पड़ा। मैंने उसके टालने के लिए जो उपाय रचा था, उसका उल्टा नतीजा हुआ। तुमको मेरे जीते-जी लकड़ी ढोनी ही पड़ी। राजा ने अपनी धोती उतारकर रानी को दे दी। रानी एक कोने में पड़कर सो गयी।

सवेरा हुआ। बहुत दिन चढ़ आया। परन्तु अतिथि राजा सोकर नहीं उठा, न पैर दबानेवाली दासी बाहर निकली। तब उसकी बहन को चिंता हुई। थोड़ी देर बाद दासी बाहर निकल आई और कारखाने में काम करने चली गई। रानी ने अपने भाई के पास जाकर उसे जगाया। तब वह बोला कि मेरे माथे में पीड़ा है, मैं अभी नहीं उठूंगा। इस समय मेरा जी बहुत व्याकुल हो रहा है, मुझे अधिक मत सताओ।

रानी ने पूछा कि आखिर बात क्या है? कुछ कहो भी? राजा ने कहा कि बड़ी लज्जा की बात है। मैंने तुम्हारी भावज को जान-बूझकर तुम्हारे पास इसलिए भेजा था कि यहां इसे आराम से रक्खा जाएगा परन्तु तुम उससे मजदूरों के साथ लकड़ी ढुलवाती हो। क्या मैंने इसीलिए उसे तुम्हारे पास भेजा था? तब बहन बहुत लाचार होकर बोली कि नदी में बहती-बहती न जाने कौन कहां की चली आई है। अब जाना सो माना। यह कहकर उसने दासियों को भेजा कि उस लकड़ीवाली को चुपचाप मेरे पास बुला लाओ।

जब दासी रानी आई तो उसकी ननद ने आदरपूर्वक उसके पैर पकड़े और विनीत भाव से माफी मांगी।

कुछ दिनों बहन के पास रहने के पश्चात राजा अपनी रानी को साथ लेकर अपनी राजधानी लौट आया। रानी ने अपने महल में पहुंच-कर सुहागिनें न्योतीं, धूमधाम से दशारानी के गंडे की पूजा की और

गांव भर में ढिढोरा फेर दिया कि आज से अमीर-गरीब सब दशारानी के गंडे लिया करें और श्रद्धापूर्वक पूजा किया करें। जिस किसी के पास पूजन-पारण की सामग्री की कमी हो, वह राजा के कोठारसे ले जाया करें।

जिस प्रकार दशारानी ने सुकुमारी रानी के दिन फेरे, वैसे ही वह अपने सब भक्तों के दिन फेरें। श्रोता-वक्ता सभी का कल्याण हो।

पांचवीं कथा—कोई सास-बहू थीं। सास ने एक दिन सवेरे बहू से कहा कि जाओ, आग लाकर भोजन बनाओ, बड़ी भूख लगी है। बहू हाथ में कंडी लेकर आग लेने गांवमें गई। उस दिन गांव भर में घर-घर दशारानी की पूजा थी, इस कारण किसी ने उसको आग नहीं दी। वह लौट आयी। संध्या-समय वह पड़ोसनों के पास गई और उनसे बोली कि मेरी सास तो गण्डा लेती नहीं है, परन्तु अबकी बार जब गण्डे पड़ें, तब मुझको बताना और पूजन की विधि भी बता देना तो मैं भी गण्डा लूंगी। इसके बाद जब गण्डे पड़े तब बहू ने सास की चोरी से दशारानी का गंडा लिया। नौ दिन तक उसने किसी न किसी बहाने पड़ोसनों के पास जा-जाकर कथा-कहानियां सुनीं। दसवें दिन उसे चिन्ता हुई कि अब पूजा कैसे करूंगी। तब वह मन ही मन दशारानी का ध्यान करके मनाने लगी कि यदि बुढ़िया आज कहीं बाहर चली जाय, तो मैं शान्तिपूर्वक पूजा कर लूं। दशारानी की कृपा से उसी दिन बुढ़िया को खेतों पर जाने की सूझी। उसने बहू से कहा कि तुम भोजन बनाकर तैयार करना, तब-तक मैं खेत-खलियान तक होकर वापिस आती हूं। यदि मुझे अधिक देर हो, तो मुझे खेत पर ही खाना दे जाना। बहू तो यही चाहती थी। उसने सास की आज्ञा को शिरोधार्य करके कहा कि आप जाइये और घर के काम-काज से निश्चिन्त रहिये।

ज्योंही बुढ़िया ने पीठ फेरी त्योंही बहू ने पूजा की तदवीर लगाई। उसने सिर से स्नान करके विधिवत दशारानी की पूजा की। तदनन्तर वह पूजा की सामग्री मिट्टी के गोले में रखकर उसे भेंटकर सिराने के

लिए ले जानेवाली ही थी कि बुढ़िया आ गई। उस वक्त बहू को जब और कुछ उपाय न सूझा तब उसने जल्दी से उस गोले को छाछ की मटकी में छिपा दिया। उसने सोचा कि जब बुढ़िया फिर कहीं बाहर जायगी, तब गोला मट्ठे में से निकाल कर सिरा आऊंगी।

बुढ़िया ने आते ही बहू की खबर ली। उसने पूछा कि तू मेरे खाने को क्यों नहीं लाई? अब तक क्या करती रही? उसने जवाब दिया कि आज मैंने सिर से नहाया है, इसी कारण रसोई करने में देर हो गई है। मैं थाल परोसती हूं, भोजन कीजिए। बुढ़िया का गुस्सा कुछ शान्त हुआ। वह पैर धोकर चौके में बैठी ही थी कि उसका लड़का भी आ गया। वह भी माता के साथ भोजन करने बैठ गया। बुढ़िया भोजन करके उठना ही चाहती थी कि लड़का बोला—"मुझे तो छाछ चाहिए।" बुढ़िया ने बहू से कहा—"उठ, छाछ दे दे।" उसने कहा—मैं तो रसोई के भीतर हूं, आप क्यों न दे दें।" बुढ़िया भोजन करके उठी। हाथ धोकर मट्ठा लेने गई, परन्तु ज्योंही उसने छाछ की मटकी उठाई कि उसमें कुछ खड़-खड़ाता हुआ सुनाई दिया। उसने हाथ डालकर देखा तो एक बड़ा सोने का गोला था।

सास ने आश्चर्य में होकर बहू से पूछा—"अरी, इसमें यह क्या है? इसे तू कहां से लाई है? यहां क्यों छिपा रक्खा है? मैं समझ गई, इसीसे तू छाछ देने नहीं आई थी। इसका भेद बता, नहीं तो अभी तेरी खबर लेती हूं।" वह बोली—"मैं क्या जानूं, मेरी दशारानी जाने। मैंने तुम्हारी चोरी से दशारानी का गण्डा लिया था और तुम्हारी चोरी से पूजा की थी। तुम आगईं, इसलिए मैं गण्डा सिराने न जा सकी। तब मैंने उसे छाछ की मटकी में छिपा रक्खा था। दशारानी ने उसे सोने का कर दिया, तो इसके लिए मैं क्या करूं।"

बुढ़िया ने बहू को गले से लगा लिया और कहा कि अब मैं भी तेरे साथ गण्डा लिया करूंगी और विधिवत व्रत और पूजन किया करूंगी। हे दशा-रानी! जैसे तुमने मुझको दिया, वैसे ही अपने सब भक्तों को दिया करो।

छठी कथा—एक घर में कोई देवरानी-जेठानी थीं। उनके कोई सन्तान नहीं होती थी। वे मेहनत-मजदूरी करके पेट पालती थीं, नेम-धर्म, व्रत-पूजन कुछ भी नहीं करती थीं। एक दिन दोनों सवेरे-सवेरे गांव में आग लेने गईं, परन्तु किसी ने उनको आग नहीं दी। उस दिन गांव भर में दशारानी का पूजन था। दोनों खाली हाथ घर आकर एक दूसरे से कहने लगीं कि आज तो गांव भर में दशारानी का पूजन है, कोई आग देती ही नहीं। क्या किया जाय ? आखिर जेठानी बोली कि कुछ हानि नहीं, आज अपने लोगों का भी व्रत सही। शाम को जब आग मिलेगी, तब रसोई बना-खा लेंगी।

सन्ध्या के समय जेठानी अपनी एक पड़ोसन के घर आग लेने गई। पड़ोसन ने उसे स्वागतपूर्वक बिठाया। जेठानी ने पूछा कि दशारानी का पूजन करने से क्या होता है। उसने जवाब दिया कि जिस बात की इच्छा करके गण्डे लिये जायं, वह इच्छा पूर्ण होती है। तब जेठानी बोली कि बहन ! अबकी बार जब गण्डे पड़ें तब मैं भी गण्डा लूंगी और पूजन करूंगी।

जेठानी आग लेकर पड़ोसन के घर से बाहर निकली ही थी कि गाएं चरकर आती हुई दिखाई दीं। ग्वाला पीछे-पीछे आ रहा था। उसके कंधे पर एक बछवा था और एक गाय उसको चाटती हुई उसके पीछे-पीछे आ रही थी। पड़ोसन ने पूछा—"भैया ! तुम्हारी गाय पहली ही ब्यान है या दोहला-तेहला ?" उसने कहा कि पहली ही ब्यान है। पुनः स्त्री ने पूछा कि बछवा ब्याई है या बछिया ? ग्वाला ने जवाब दिया कि बछवा है। तब उसने जेठानी से कहा कि लो, अब घर जाकर दशारानी का गण्डा ले लो। नौ दिन तक कथा-कहानियां सुनना, दसवें दिन सिर से स्नान करके पूजन करना। दशारानी चाहेंगी तो दस दिन के भीतर ही तुम्हारी मनोकामना पूर्ण हो जायगी। उसने अपने घर जाकर देवरानी को यह बात बताई। निदान दोनों ने दशारानी के गण्डे लिये और दशारानी का ध्यान-स्मरण करके यह मनौती मनाई कि यदि हमारे सन्तान

पैदा होगी, तो हम सुहागिनें न्योतकर दुरैया करायेंगी।

दशारानी के गण्डे की पूजा होने के पहले ही देवरानी-जेठानी दोनों गर्भवती हुईं। नौ महीने नौ दिन के बाद दोनों के गर्भ से दो सुन्दर बालक जन्मे। बालकों के जन्म-सस्कार के बाद ही देवरानी ने कहा कि लड़के होने पर जो सुहागिनें न्योतने की मनौती की थी, उनको न्योत देना चाहिए। जेठानी ने कहा कि अभी ऐसी क्या जल्दी पड़ी है, जब लड़कों की पसनी (अन्न-प्राशन-संस्कार) होगी, तब न्योत देंगी। जब लड़कों की पसनी हुई, तब भी देवरानी ने दुरैया की याद दिलायी, परन्तु जेठानी ने फिर भी बात टाल दी और कहा कि जब लड़कों का मुंडन होगा, तब सुहागिनें न्योती जायंगी। होते-होते कुछ दिनों बाद लड़कों का मुंडन हुआ, तब भी देवरानी ने जेठानी से कहा, परन्तु फिर भी जेठाना ने कहा कि जब लड़के बड़े होंगे, उनकी सगाई होगी, उसी दिन सुहागिनें न्योती जायंगी।

लड़के बड़े हो गये। उनका सगाई-सम्बन्ध भी पक्का हो गया। फिर भी जेठानी ने सुहागिनें नहीं न्योतीं। उसने कहा कि जिस दिन लड़कों की भांवरें पड़ेंगी, उसी दिन सुहागिनें न्योतकर उत्सव के साथ पूजा की जाएगी। तब देवरानी बोली कि बहन! तुम चाहे जब करना, पर मैं तो मण्डपाच्छादन के दिन ही सुहागिनें न्योतूंगी। देवरानी ने जैसा कहा था, वैसा ही किया। उसने मंडवा के दिन सुहागिनें न्योत दीं, परन्तु जेठानी ने कुछ भी परवाह न की। मंडपाच्छादन के बाद मातृकापूजन करके और बारात सजा-कर दोनों दूल्हे ब्याहने चले।

जिस लड़के की माता ने मंडवा के दिन सुहागिनें न्योती थीं, उसका विवाह बड़ी धूम-धाम से सकुशल पूर्ण हो गया, परन्तु जिसकी माता ने सुहागिनें नहीं न्योंती थीं उसको ठीक भांवरों के समय दशारानी बीच मंडप से हरकर ले गईं। दूल्हा को सहसा गायब होते देख वर-कन्या दोनों पक्षों में हाहाकार मच गया। उसकी बारात खाली हाथ घर वापस आई। परन्तु लड़की की माता बड़े संकट में पड़ गई कि अब यह अध-

ब्याही लड़की किसके सर मढ़ी जायगी। पास-पड़ोस की चतुर स्त्रियों ने लड़की की माता को समझाया और ब्याह का जो सीधा-सामान बचा हुआ था, उसे उसी लड़की के हवाले कर दिया। लड़की मंगते-भिखारी लोगों को सदाव्रत देने लगी। एक दिन एक साधु तीर्थयात्रा करता हुआ उसी गांव की ओर आया। गांव से बहुत दूर घने जंगल में एक बड़ा पीपल का पेड़ था। लोग उस पेड़ को पारस पीपल कहते थे। उसी पेड़ में दशा-रानी का निवास था। साधु चलता-चलता शाम को उसी पेड़ के नीचे ठहर गया। वहां अंधेरा हो गया। दिया पर बत्ती पड़ी कि झाड़ूदार ने आकर उसी पेड़ के पास मैदान में झाड़ू लगाई, सक्का (भिश्ती) नें आकर जमीन छिड़की और माली ने आकर फूल बिखेर दिये। तब अनेक देवता अनेक प्रकार की पोशाकें पहने हुए वहां आ-आकर यथा-स्थान बैठने लगे। सबसे पीछे स्वर्ग से राजा इन्द्र का सिंहासन उतरा। उसी के साथ अनेक अप्सराएं साज-सामान समेत वहां आईं और इन्द्र के सिंहासन के सामने नाचने लगीं।

उसी समय दशारानी अधब्याहे लड़के को गोद में लिए हुए पीपल के पेड़ से उतरीं। इन्द्र के साथ-साथ स्वर्ग से एक सुरा गऊ भी आई थी। उसने दो कटोरा दूध दिया। लड़के ने अधब्याही के भाग का एक कटोरा अलग रख दिया और एक कटोरा दूध पी लिया जब तक नाच तमाशा होता रहा, दशारानी लड़के को गोद में लिए बैठी रहीं। सवेरा होते ही देवताओं का दरबार भंग हुआ। साधु भी वहां से चलकर गांव में चला आया।

साधु गांव में भिक्षा मांगता उसी अधब्याही लड़की के घर आया। लड़की ने उसके लिए भोजन बनाकर तैयार किया। बाबाजी भोजन करने बैठे। तब लड़की ने तीन पत्तल परोसकर एक को अधब्याहे वर के नाम से अलग सरका दिया, एक पत्तल बाबाजी के सामने परोसा और एक पत्तल उसने अपने सामने रक्खा। बाबाजी ने अपने आप कहा—"वाह ! जो बात वहां देखने में आई थी, वही बात यहां भी देखने में

आई" लड़की ने पूछा —"क्या कहा बाबाजी ?" बाबा ने बात टालते हुए कहा—"हम वैरागी लोग ऐसी अनेक बातें कहा करते हैं। तुमको इन बातों से क्या प्रयोजन है ? तुम तो भोजन करो और भगवान का भजन करो।" लड़की हठ कर गई। उसने कहा कि जब तक आप इसका भेद नहीं बतलायेंगे, मैं भोजन नहीं करूंगी। फिर भी बाबा चुप रहे। तब लड़की बोली कि आप साधु हैं, मैं सती हूं। आप या तो उस वचन का भेद बताइये, जो आपने कहा है या मेरा शाप लीजिये। तब बाबा ने रात का सारा हाल उसे बता दिया। अन्त में उसने बाबा के साथ उस पीपल के पास जाना निश्चय किया।

बाबा आगे-आगे चले, लड़की उसके पीछे हो ली। बाबा लड़की को पारस पीपल के पास छोड़कर चले गये। जब सन्ध्या हुई, तब नित्य की तरह झाड़ूदार ने झाड़ू लगाई, सक्का ने जमीन छिड़की, माली ने फूल बिखराये। राजा इन्द्र आये और परियों का नाच-गाना होने लगा। उसी समय दशारानी पीपल पर से उतरकर दरबार में बैठीं। लड़के ने सुरा गाय से दूध लिया और उसने अधब्याही का कटोरा अलग रखकर ज्यों ही अपना कटोरा मुंह से लगाया, त्योंहि लड़की कटोरा हाथ में लेकर वर के सामने आ गई। वह बोली कि अपना भाग लेने के लिये मैं उपस्थित हूं और जो आज्ञा दी जाय, सो सेवा करूं। तब वह बोला कि मैं इस तरह तुमको नहीं मिल सकता। मैं दशारानी की सेवा में रहता हूं। अभी मुझे दरबार में जाकर उन्हीं की गोद में बैठना होगा। यदि तुम मुझको चाहती हो, तो दशारानी को प्रसन्न करके उनसे मुझको मांग लो। तब मैं तुम्हारा हो सकता हूं।

लड़का दशारानी की गोद में जा बैठा। लड़की अप्सराओं के साथ नाचने लगी। जब सवेरा हुआ तब दशारानी ने कहा कि यह नई नाचने वाली लड़की बहुत नाची है। उसे बुलाकर उन्होंने कहा कि मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूं। मांग ले जो कुछ मांगना हो। लड़की ने दशारानी से वचन ले लिया कि जो मांगूं सो पाऊं। तब उसने दौड़कर अपने पति को

पकड़ लिया और कहा कि मुझे यही चाहिए। दशारानी ने कहा—"तूने मांगा तो बहुत, परन्तु मैं वचन दे चुकी हूं। इस कारण तेरा वर तुझे दे देती हूं।"

राजा इन्द्र ने पूछा कि भगवती ! यह सब क्या भेद है, जरा मुझे भी बताइये ? तब दशारानी बोली कि यह लड़का मेरे ही वरदान से पैदा हुआ था। इसकी माता ने मनौती मानी थी कि जब लड़का पैदा होगा तब सुहागिनों को न्यौता दूंगी, परन्तु उसने आज तक अपना वचन पूरा नहीं किया। इसी कारण मैं अपने दिये हुए बालक को विवाह-मण्डप से हर लाई थी। यह इसकी अध-व्याही स्त्री है, परन्तु पतिव्रता है। इसी कारण यह देव-समाज में पहुंचकर मुझसे अपना पति छीने लिये जाती है। दशारानी के ऐसे वचन सुनकर इन्द्र समेत सब देवताओं ने वर-कन्या के ऊपर फूल बरसाए।

तब तक साधु बाबा भी वहां आ गये। साधु बाबा, उसके पीछे दूल्हा और उसके पीछे लड़की, इस प्रकार तीनों गांव की ओर चले। जब वे लोग गांव के समीप पहुंचे, तब लोगों ने लड़की के पिता को खबर दी कि तुम्हारी लड़की अपने दूल्हा के साथ आ रही है। जिस दिन से लड़की चली गई थी, प्रथम तो उसी घड़ी से वह लोकापवाद के मारे घर से बाहर नहीं निकलते थे, अब जो और भी नई बात सुनने में आई तो उसने किवाड़ बन्द कर लिये। उसने समझा लड़की बाबा के साथ-साथ आ रही होगी, उसी सम्बन्ध में लोग मेरा उपहास कर रहे हैं। किन्तु, जब गांव के गण्य-मान्य और प्रतिष्ठित लोगों ने भी उससे वही बात कही, तब वह लजाता-शरमाता घर से बाहर आया, और जब उसने दरवाजे पर सचमुच लड़की के साथ दामाद को खड़ा देखा तब उसकी प्रसन्नता का पार न रहा। उसने इसी खुशी में बहुत दान-पुण्य किया, बधाई बजवाई और फिर से विवाह की तैयारी की परन्तु लड़की ने अपनी माता से कहा कि इस तरह ब्याह पूरा नहीं पड़ेगा। वहां सुहागिनों को न्योता देकर जब बारात यहां आवे तब विवाह के नेग किये जायं। लड़की के बाप ने

लड़के के घर खबर भेजी। वहां सुहागिनों को न्योतकर बारात चली। बड़ी धूमधाम से विवाह हुआ। वर-वधू दोनों अपने घर गये। तब फिर से लड़के की माता ने सुहागिनें न्योतीं।

उसी समय से विवाह में भांवरों के दिन वर के घर सुहागिनें न्योतने की चाल चली है। दशारानी ने जैसी सती की दशा फेरी वैसी वह कथा के श्रोता-वक्ता सभी का कल्याण करें।

सातवीं कथा—एक बुढ़िया ब्राह्मणी थी। वह बहुत गरीब थी। उसका एक लड़का भी था। एक दिन वह लड़के से बोली कि बेटा! कुछ ऐसा उद्यम करो, जिससे चार पैसे की आय हो और अपना निर्वाह हो। अब तो मेरे हाथ पैर नहीं चलते। तब लड़का गांववालों के गोरू चराने लगा। एक दिन लड़का पशुओं को पानी पिलाने नदी के घाट पर गया। वहां स्त्रियां स्नान करके दशारानी के गंडे ले रही थीं। उनका एक गंडा अधिक था। उनमें से एक ने कहा कि पूछो तो यह लड़का किसका है? यदि किसी उच्च वर्ण का हो, तो इसी को गंडा दे दें। एक स्त्री ने लड़के से पूछा कि तुम्हारे घर में कौन है? लड़के ने जवाब दिया कि मेरी एक बुढ़िया माता है फिर स्त्री ने पूछा कि तुम कौन हो? वह बोला कि हूं तो ब्राह्मण, पर कोई काम न मिलने के कारण गोरू चराता हूं।

स्त्रियों ने लड़के को एक गण्डा देकर कहा कि तुम इसे घर ले जाकर अपनी माता को देना और कहना कि इसका पूजन और व्रत करे। हम लोग तुमको सीधा और पूजा की सामग्री भी देते हैं, सो भी ले जाकर माता को दे देना। लड़के ने गण्डा ले लिया। फिर सब स्त्रियों ने उसे सीधा दिया। लड़का उस सामान की गठरी बांधकर घर आया। उसने दरवाजे से ही माता को पुकारकर कहा कि गठरी उतार ले, बोझ से मरा जाता हूं। माता दौड़ी आई। गठरी का सीधा सामान देखकर वह बहुत खुश हुई। उसने लड़के से पूछा कि यह सब कहां से लाये हो? लड़के ने बुढ़िया से सब हाल कहकर दशारानी का गण्डा भी उसे दे दिया।

बुढ़िया ने गण्डे को प्रेम-पूर्वक लेकर माथे से लगाया। उसी दिन से वह व्रत करने लगी। नौ दिन कथा-कहानी कहती रही। दसवें दिन उसने गण्डे के पूजन की तैयारी की। वह देहरी के बाहर लीप रही थी कि उसी समय एक अति वृद्ध दरिद्र स्त्री द्वार पर आकर बोली कि क्या करती हो बहन ? उसने जवाब दिया कि आज मेरे घर दशारानी का पूजन है, इसलिए लीप रही हूं। तब दशारानी ने कहा कि मुझे बहुत प्यास लगी है, थोड़ा पानी पिला दो। तब बुढ़िया ने कहा कि मैं तो मिट्टी के बरतन से पानी पीती हूं, लोटा लुटिया मेरे कुछ है ही नहीं, तुमको पानी दूं तो काहे से दूं ? एक कटोरी ही मेरे घर में है, वह भी न जाने कहां पड़ी होगी। जरा तुम ठहरो, कटोरी उठा लाऊं, तब तुमको पानी पिलाऊंगी।

बुढ़िया हाथ धोकर कटोरी लेने अन्दर गई। तब तक मैली-कुचैली बुढ़िया, जो स्वयं दशारानी थी, उसकी घिरौंची पर एक सोने का घड़ा रखकर अन्तर्द्धान हो गई। बुढ़िया कटोरी लेकर घिरौंची के पास गई। वहां सोने का घड़ा रक्खा देखकर बहुत घबराई और अपने मन में सोचने लगी कि यह रांड कहां कि बला उठाकर रख गई है। मुझे चोरी लगेगी, बुढ़ापे में इज्जत जायेगी। वह इसी चिंता में बुढ़िया की खोज में बाहर निकली। तब तक उसका लड़का आ गया। उसने पूछा कि किसे खोजती हो मां ? वह बोली कि एक बुढ़िया न जाने कहां से आई और यहां सोने का घड़ा रखकर भाग गई है। लड़के ने कहा कि वही तो दशारानी थीं। उन्होंने यह घड़ा तुमको दिया है। अब की जो फिर कभी आवें तो उनका अच्छी तरह स्वागत करना और सब प्रकार से उनकी आज्ञा-पालन करना। तुम जब नहाने जाओ तो नदी के घाट पर जो चीजें तुमको मिलें, उनको दशारानी का दिया हुआ समझकर अंगीकार करना, किसी से पूछ-ताछ न करना कि यह चीज किसकी है, यहां कहां से आई है ?

बुढ़िया नदी में नहाकर खड़ी हुई, तो सामने सोने का गडुआ भरा-

भराया रक्खा दिखाई दिया और उत्तम वस्त्र एक किनारे रक्खे थे। बुढ़िया ने किसी से पूछ-ताछ किये विना ही उन वस्त्रों को पहन लिया। गडुआ हाथ में लेकर वह घर चलने को तैयार हुई। तब चार कहार डोली लिये आ पहुंचे और बुढ़िया से बोले कि यह डोली तुम्हारे लिये आई है, इसी में बैठकर घर चलो। बुढ़िया डोली में बैठकर घर आई, तो देखती क्या है कि जहां उसकी टूटी-फूटी झोंपड़ी थी, वहां कंचन के महल खड़े हैं। बुढ़िया ने महल के भीतर जाकर श्रद्धा और भक्तिपूर्वक दशारानी के गंडे की पूजा की और अन्त में हाथ जोड़कर यह वरदान मांगा कि महारानी! जैसे तुमने मुझको यह सम्पत्ति दी है, वैसे ही मेरे लड़के का विवाह हो जाय, तब यह सब शोभा दे। कुछ दिनों बाद लड़के का विवाह हो गया और बहुत ही सुन्दर सुशीला बहू घर में आ गई। तब बुढ़िया ने दशारानी से दूसरा वर मांगा कि जैसे मेरे बहू-बेटा हैं, वैसे ही पोते पाऊं। कुछ दिनों बाद बुढ़िया के लड़के को भी लड़का हो गया।

एक दिन बुढ़िया ने बहू को समझाया कि मेरी यह सब सम्पत्ति दशारानी की दी हुई है। उन्हीं की कृपा से तुम भी इस घर में आई हो। यदि मैं मर जाऊं और कभी एक मैली-कुचैली बुढ़िया तुम्हारे घर आए तो उसका विनयपूर्वक स्वागत करना। यदि उसकी नाक वहती हो उसे आंचल के छोर से पोंछना, घिन नहीं करना। प्रार्थना करना कि हे माता! यह सब आपका ही दिया हुआ है। जब कभी दशारानी के गंडे पड़ें, तब उनको अवश्य लेना और श्रद्धापूर्वक उनकी पूजा करना। जब कभी तुम पर कोई संकट पड़े, तब सुहागिनें न्योतना। दशारानी की कृपा से तुम्हारी सब इच्छाएं पूरी होंगी।

कुछ दिनों बाद बुढ़िया मर गई। तब दशारानी ने सोचा कि अब चलकर देखना चाहिए कि वह सास के वचन को कहां तक पालन करती है? अतः वह एक वृद्धा भिखारिणी का वेश धारण कर उसके घर आई। उन्हें देखते ही बहू उठकर खड़ी हो गई, पांव पड़े, दंडवत की और बालक

को उसकी गोद में डाल दिया। उसकी ऐसी श्रद्धा-भक्ति देखकर दशा-रानी ने आशीर्वाद दिया कि तेरी धर्म-बुद्धि है, तो भगवान सदैव तेरा भला करेगा, भंडार भरपूर रहेगा, कभी किसी बात की चिंता तुझे न सतायेगी, जो इच्छा करेगी सो फल पायेगी।

दशारानी ने जैसी कृपा-दृष्टि बुढ़िया ब्राह्मणी पर की वैसी ही अपने सब भक्तों पर करें। कथा के श्रोता-वक्ता सभी का कल्याण हो।

आठवीं कथा—एक राजा के दो रानियां थीं। राजा की अति प्यारी रानी का नाम था लक्ष्मी देवी। इसी कारण राजा की दूसरी रानी पटरानी होने पर भी कुलक्ष्मी कहलाती थी। एक दिन लक्ष्मी रानी ने मान किया। वह काठ की पाटी ले, मलिन वस्त्र पहन कोप-भवन में जा लेटी। राजा ने उससे पूछा कि तुम चाहती क्या हो? वह बोली कि कुलक्ष्मी रानी को देश-निकाला दे दो।

राजा की प्यारी न होते हुए भी कुलक्ष्मी रानी पटरानी थी। लोक-लज्जा के कारण उसे सहसा निकाल सकने से लाचार होकर राजा ने उन्हें उनके नैहर भेजने का निश्चय किया। उन्होंने रानी को एक पीनस में सवार कराया और आप घोड़े पर सवार होकर साथ चले। एक सघन वन में पहुंचकर राजा ने पीनस रखवा दी और कहारों को वहां से हटा दिया। इसके बाद वह घोड़ा दौड़ाते हुए अपने महल में जा पहुंचे। कुलक्ष्मी रानी को बाट देखते सारी रात बीत गई। सबेरा हो आया। रानी को प्यास लगी हुई थी, इसलिए वह डोली के बाहर निकली। उसने देखा कि डोली एक पीपल के वृक्ष के नीचे रक्खी है, दूर तक कहीं आबादी का नामोनिशान नहीं है। रानी ने आस-पास पानी खोजा, परन्तु कहीं कोई जलाशय दिखाई नहीं दिया।

रानी ने एक सारस की जोड़ी को एक तरफ जाते देखा। वह उन्हीं के पीछे हो गई। चलते-चलते वह कुछ देर के बाद एक नदी के तट पर पहुंच गई। रानी ने उसी नदी में शौचादि से निवृत्त होकर स्नान किया और जल पीया। जिस घाट पर रानी ने स्नान किया, उसी घाट पर

कुछ स्त्रियां स्नान कर रही थीं। स्नान करके उन्होंने दशारानी के गंडे लिए। उनके पास एक गंडा अधिक था। एक ने रानी से गंडा लेने के लिए कहा। रानी गंडा लेकर वहां से चली आई और अपने डोले में आकर बैठ गई। थोड़ी देर में दशारानी एक बुढ़िया का वेश धारण कर आई और रानी से बोली कि बेटी! यहां बैठी क्या कर रही है? रानी ने पूछा कि पहले तुम यह बताओ कि तुम कौन हो? बुढ़िया ने कहा कि मैं तो तेरी मौसी हूं। तब रानी उसके गले से लिपटकर रोने लगी। उसने अपनी विपत्ति की कहानी आद्योपान्त बुढ़िया को कह सुनाई और अन्त में यह कहा कि अब मुझे केवल तुम्हारा आश्रय और भरोसा है।

दशारानी की कृपा से उसी जगह माया का शहर बस गया। रानी के भाई-भौजाई आदि सारा नैहर आप ही वहां प्रगट हो गया। रानी ने अपने परिवार में मिलकर नौ दिन तक दशारानी के माहात्म्य की कथा-कहानियां कहीं। दसवें दिन गण्डे की पूजा होती थी। उसी दिन सवेरे दशारानी ने कहा कि तुम आज नदी में स्नान करने जाओगी, वहां तुमको जो स्वर्ण कलश मिलें, उसको ले लेना और जो डोली तुमको लेने के लिए आए, उसमें निःसंकोच सवार हो जाना। किसी प्रकार संकल्प विकल्प में पड़कर यह मत पूछना कि डोली किसकी है?

रानी नदी में स्नान करने गई। वह स्नान करके जल से बाहर निकली, तो किनारे दो सोने के कलश रक्खे दिखाई दिए। उन्हीं के पास सुन्दर रेशमी वस्त्र संवारे हुए रक्खे थे। रानी ने वस्त्र बदलकर घड़े भरे, और ज्यों ही अपने स्थान की ओर चलना चाहा, त्यों ही एक डोला सामने से आता दिखाई दिया। रानी समझ गई कि हो-न-हो इसी डोली के बारे में मौसी ने मुझे सूचना दी थी। वह फौरन डोली में सवार होकर अपने घर गई। वहाँ मामा के परिवार की सब स्त्रियों-समेत रानी ने दशारानी के गण्डे की पूजा की सुहागिनों को भोजन कराए, तब पारण किया। तदनन्तर रानी अपने नैहर के परिवार में आनन्दपूर्वक हिल-मिलकर रहने लगी।

कुछ दिनों बाद सहसा राजा को रानी का स्मरण हुआ। उसके ध्यान में आया कि कुलक्ष्मी रानी को जिस दिन से मैं जंगल में छोड़ आया हूं, उस दिन से आज तक उसका कोई समाचार नहीं मिला, चलकर देखना तो चाहिए कि उसकी क्या गति हुई है। जब वह रानी को खोजने के लिए चलने लगा, तब मन्त्रियों ने समझाया कि अब रानी का आप से मिलना नहीं हो सकता। राजा ने किसी की बात पर ध्यान नहीं दिया। वह चलता-चलता उस स्थान पर पहुंचा जहां वह रानी का डोला रख आया था। परन्तु उसे यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि जहां सघन-वन था, वहां सुन्दर नगर बसा हुआ है। राजा के प्रश्न करने पर नगर के लोगों ने कहा कि कुलक्ष्मी रानी का नगर है। तब तो राजा और भी आश्चर्य में डूब गया। वह बार-बार यही विचार करता था कि यह जगह तो वही है, जहां मैं अपनी रानी को छोड़ गया था। क्या उसी के नाम से यह नगर बसा हुआ है।

राजा ने महलों के पास जाकर इत्तिला कराई कि अमुक राजधानी का राजा मिलने आया है। रानी ने राजा को पहचान कर उत्तर दिया कि मैं ऐसे दगाबाज राजा से मिलना नहीं चाहती। परन्तु उसकी मौसी ने समझाया कि पति परमेश्वर के बराबर होता है। उससे विमुख होकर कभी पीठ न देनी चाहिए। तुमको यही उचित है कि उनका स्वागत करो, यथाशक्ति सत्कार करो और नियम-पूर्वक मिलो। रानी ने राजा को महल के भीतर बुलवाया और वहीं डेरे पर ठहराया। दोपहर को राजा भोजन करने गये। उनके साथ एक नाई था। वह भी राजा के समीप ही खाने को बैठा। रानी राजा तथा उस नाई को परोसने लगी।

पहली बार ज्योंही रानी ने नाई के सामने पत्तल रक्खी, त्योंही उसने रायते का एक छींटा रानी के पैर पर डाल दिया। रानी ने उसकी इस क्रिया को नहीं जाना। दूसरी बार रानी परोसने आई तब दूसरी पोशाक पहनकर आई। राजा मन में सोचने लगा कि यहां तो एक क्या, कई रानियां हैं। सभी एक-सी हैं। इनमें यदि मेरी रानी हो, तो मैं उसे

पहचान नहीं सकता।

डेरे पर आकर राजा ने नाई से कहा कि यहां तो कई रानियां हैं। यह कैसे मालूम हो कि अपनी रानी कौन है? नाई बोला कि रानी तो एक ही है, वह पोषाकें बदल-बदलकर परोसने आई, इससे आपको भ्रम हुआ है। राजा ने पूछा कि तूने कैसे जाना कि रानी एक ही है। वह बोला कि मैंने पहले ही रानी के पैर पर रायते का छींटा डाल दिया था। जब दूसरी बार वह परोसने आई, तब भी छींटा बदस्तूर देखा।

इसी बीच रानी ने राजा को अपने महल में बुलाया। वहां सेज सजी हुई थी। उसी पर राजा को बिठाकर उसने पान दिये। राजा लेट गया, रानी पैर दबाने लगी। तब राजा ने कहा कि रानी! बहुत दिन हो गए, अब राजधानी को चलो। रानी ने जवाब दिया कि मैं नहीं जाती। उस दिन की याद कीजिए। मैंने ऐसा क्या अपराध किया था जिसके कारण आपने मुझे वनवास दिया? आपने जिस सौत की बात मानकर ऐसा अनादर किया था, अब उसी को लिए हुए बैठे रहिए। आप तो मेरा सर्वनाश कर चुके थे। यह तो सब मेरी मौसी की बदौलत है कि मैं जीती बच गई। इस पर राजा ने रानी को बहुत समझाया और अपने किये पर पश्चात्ताप करते हुए माफी मांगी। तब रानी बोली कि मैं केवल एक शर्त पर आपके साथ चल सकती हूं। आप मेरी मौसी से यह वरदान मांगिए कि यह शहर और यह बाग-बगीचे आपकी राजधानी के समीप पहुंच जायं, जिससे जब मेरा जी चाहे आपके महल में रहूं और जब जी चाहे, तब मौसी के दिए हुए महल में चली जाऊं। मेरी मौसी बड़ी दयावान और भोली-भाली हैं। सम्भव है कि वह आपकी बात को न टालें। राजा ने रानी की मौसी (दशारानी) के पास जाकर निवेदन किया। उसी समय दोनों शहर पास-पास हो गये, मानों एक दूसरे के ही भाग हैं। राजा ने दशारानी की कृपा का प्रभाव जानकर शहर भर में ढिंढोरा पिटवा दिया कि अब से सभी लोग दशारानी की पूजा किया करें।

भगवती दशारानी ने कुलक्ष्मी रानी पर जैसी कृपा की, वैसी वह आपत्ति में पड़ी हुई स्त्री मात्र पर दया करके उसे ठिकाने लगावें।

नवीं कथा—एक वृक्ष पर दो पक्षी (नर और मादा) रहते थे। मादा पक्षी के बच्चे नहीं होते थे। जब वह चार चिड़ियों में मिलकर बैठती तब प्रायः वे उसको बंध्या कहकर उससे घृणा करती थीं। इससे चिड़िया अपने चित्त में अत्यन्त दुःखी रहती थी। वह चिड़ियों के समाज से बहुत कम मिलती-जुलती थी। एक दिन वह अपनी स्थिति पर विचार करती हुई अकेली एक नदी में पानी पीने गई। वहां स्त्रियां दशारानी के गण्डे ले रही थीं। उनका एक गण्डा अधिक था। उन्होंने आपस में कहा कि यहां कोई स्त्री या मनुष्य तो है नहीं, जिसको यह गण्डा दे देते, न हो इस चिड़िया के गले में गंडा बांध दो। यह नित्य इसी जगह आकर कथा सुन लिया करेगी। इसको पूजन की विधि बतला दी जायगी, तो पूजन के दिन यह पूजन भी कर लेगी। तदनुसार उन्होंने चिड़िया के गले में गंडा बांधकर उसे समझा दिया कि नौ दिन तक बराबर तू इसी जगह आकर कथा सुन लिया कर। दसवें दिन इक्कीस गेहूं लेकर एक गेहूं दशारानी के नाम नदी में डाल देना। बाकी बीस गेहूं तुम खुद चुग लेना। चिड़िया ने नौ दिन तक प्रेम-पूर्वक कथा-कहानी सुनी। दसवें दिन स्त्रियों की बताई विधि के अनुसार गंडा पानी में डालकर पारण किया।

कुछ दिनों के बाद उस चिड़िया के बहुत बच्चे पैदा हुए। अन्य चिड़ियों को बड़ा आश्चर्य हुआ और वे बोलीं कि इसके बच्चे तो होते ही नहीं थे, यह कैसे हुए! वह बोली कि जब मेरे बच्चे नहीं थे, तब तो तुम लोग मुझको बंध्या कहकर दुत्कारती थीं, अब जो दशारानी ने मुझको दिये, तो तुम कोसती हो। चिड़ियों ने उससे पूछा तो उसने गंडा लेने का हाल क्रमशः कह सुनाया और सबको पूजा की विधि भी बतला दी। तब जंगल की सब चिड़ियां दशारानी का व्रत करने लगीं।

दसवें दिन गंडे की पूजा के बादपहले दिन ही की कथा कही जाती है।

६४. आर्य-समाज का जन्म और उत्सव

स्थापना-दिवस—चैत्र सुदी पंचमी दिन शनिवार (१० अप्रैल, १८-७५ ई०) को स्वामी दयानन्द ने सर्वप्रथम बम्बई में आर्य-समाज की स्थापना की थी, इसीलिए उक्त दिवस की स्मृति के लिए स्थापना-दिवस मनाया जाता है। इस दिन भली-भांति घर-बार साफ करके स्नानादि के बाद प्रत्येक आर्य स्वच्छ स्वदेशी वस्त्र धारण करे और वेद-मन्त्रों से हवन करने के पश्चात सुभीते के अनुसार समाज-मन्दिर में सभा करे। फिर सरस्वती देवी की महिमा के सम्बन्ध में वेद-मन्त्रों का पाठ करे और तत्पश्चात आर्य-समाज की उपयोगिता और उसका पूर्व-इतिहास बताकर उसका प्रचार करना चाहिए।

ऋषि-निर्वाणोत्सव—दीपावली के दिन विक्रमी सम्वत् १९४० में स्वामी दयानन्द का देहान्त हुआ था। अतः उस दिन उनके विचारों के प्रचार के लिए घरों की सफाई आदि करके प्रत्येक आर्य नर-नारी को हवन करना चाहिए और सायंकाल के समय समाज-मन्दिर में एक होकर श्रीमद्दयानन्द-निर्वाण के विषय पर भाषण करके उनके जीवन की महत्ता लोगों को बतानी चाहिए।

□□

जो सर्वमान्य धर्म माना गया है, पर जिसके आचरण की हमें आदत नहीं पड़ी, उसके सम्बन्ध में व्रत होना चाहिए ।...व्रत लेना निर्बलता का सूचक नहीं, वरन् बल का सूचक है । अमुक बात का करना उचित है, तो फिर करनी ही चाहिए, इसका नाम व्रत है और इसमें बल है ।...

जहां हमारे अपने जीवन को गठित करने का प्रश्न उपस्थित हो, ईश्वर-दर्शन करने का प्रश्न हो, वहां व्रत के बिना कैसे काम चल सकता है ? इसलिए व्रत की आवश्यकता के विषय में हमारे मन में कभी शंका उठनी ही नहीं चाहिए ।

—मो० क० गांधी
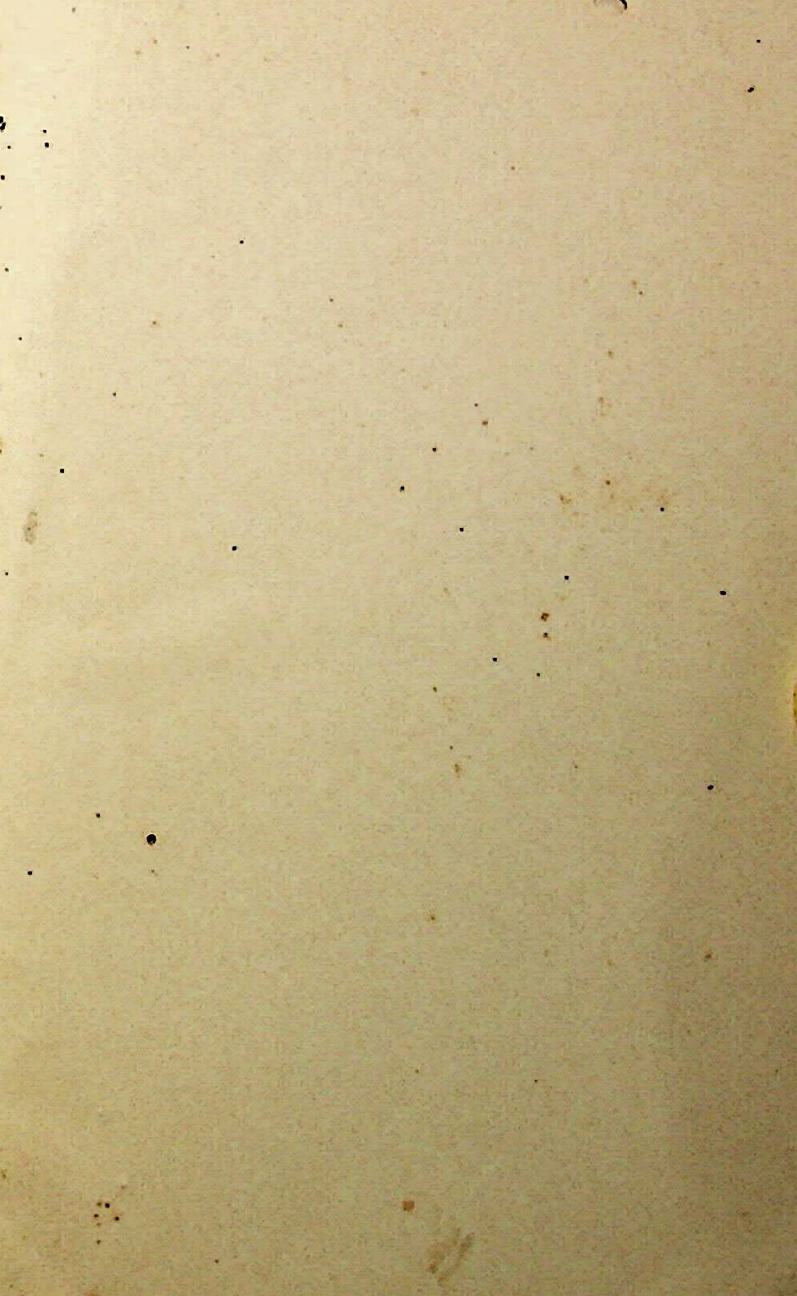
मण्डल का

आचार तथा नीति साहित्य

□

१. आचार विचार

२. सच्चे इंसान बनो

३. जीवन और शिक्षण

४. गांधी शिक्षा, भाग १, २, ३

५. रामतीर्थ संदेश

६. अमृत की बूंदें

७. सर्वोदय

८. कहिये समय विचारि

९. आश्रमवासियों से

१०. मंगल प्रभात

११. सुभाषित सप्तशती

१२. आप भले जग भला

१३. रहीम के सुबोध दोहे

१४. हिन्दुओं के व्रत और त्योहार